वर्ष – 03 अंक – 09 ISSN-2993-4648

Dedicated for Research
Shodh Utkarsh

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly international E– Journal Impact factor-03

जनवरी - मार्च - 2025

https://shodhutkarsh.com

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly international E- Research Journal
वर्ष-03 अंक - 09 जनवरी - मार्च -2025

सलाहकार मण्डल (Advisory Board)

Shri Jai Prakash Pandey
Director-Department of Education And Literacy, Ministery Of Education, Govt.Of India.
Prof. Prabha Shankar Shukla
Vice Chancellor North Eastern Hill University (NEHU) Shillong
डॉ. कन्हैया त्रिपाठी पूर्व (OSD),महामहिम राष्ट्रपति 'भारत'
प्रो. दिनेश कुशवाह,रीवा (म.प्र.)
प्रो. राजेश कुमार गर्ग प्रयागराज (उ.प्र.)
प्रो. अनुराग मिश्रा द्वारका, नई दिल्ली
प्रो. कैं. एस. नेताम सीधी (म.प्र.)
डॉ.एम.जी. एच. जैदी पन्त नगर (उत्तराखण्ड)
डॉ.राजकुमार उपाध्याय 'मणि' बठिंडा (पंजाब)
डॉ. संगीता मसीह शहडोल (म.प्र.)
डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव मोतिहारी विहार
डॉ. अनिल कुमार दीक्षित,भोपाल (म.प्र.)
श्री संकर्षण मिश्रा ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड
प्रो.एम.यू.सिद्दीक़ी सिंगरौली (म.प्र.)
डॉ. बी.पी. बडोला (हिमांचल प्रदेश)
डॉ.अजय चौधरी,नागपुर (महारष्ट्र)
श्री प्रदीप कुमार- मूल्यांकक केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली
डॉ. रेणु सिन्हा,रांची- (झारखंड)
डॉ. निशा मुरलीधरन,वड़पलनी- चेन्नई
डॉ. अंजलि एस. एर्नाकुलम, (केरल)
श्री पांडुरंग एस. जाधव बेंगलुरु, (कर्नाटक)

संपादक मंडल
प्रधान संपादक -डॉ. एन. पी. प्रजापति सह संपादक - प्रो.यूरी बोत्वीकिन तारास शेव्चेंको कीव (युक्रेन), प्रो.सिराजुद्दीन नूर्मतोव (उज़्बेकिस्तान गणराज्य) प्रो. रीनू रानी मिश्रा (उत्तराखंड), डॉ. संतोष कुमार सोनकर अमरकंटक (म.प्र.)प्रो. मोहन लाल 'आर्य' निदेशक एवं डीन IFTM (U.P.) डॉ. बालेन्द्र सिंह यादव, उँचाहार–रायबरेली(उ.प्र.) डॉ.उमाकांत सिंह सिंगरौली (म.प्र.) कैप्टन डॉ.बाबासाहेब माने पुणे (महाराष्ट्र)

लेख भेजने के लिए :– Mail-ID-shodh utkasrsh@gmail.com नोट:- पत्रिका में प्रकाशित लेख / शोध आदि में विवाद की स्थिति में लेखक /शोधार्थी स्वयं जिम्मेदार होंगे. पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें:-
Website:–http:// www.shodhutkarsh.com
प्रकाशक :-
Radha publications
Mail id-radhapub@gmail.com **फोन** -087505 51515, 9350551515 **Website:**-https://radhapublications.com
पता :-4231, 1, Ansari Rd, Delhi Gate, Daryaganj, New Delhi, Delhi, 110002
दलित उत्कर्ष समिति द्वारा प्रकाशित

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly international Research E-Journal
वर्ष-03 अंक - 09 जनवरी - मार्च -2025

Table of Content

S.N.	Title and Name of Author(s)	Page No.
	संपादकीय -	01
1.	हिंदी कविताओं पर वैश्वीकरण का प्रभाव - **डॉ. राजेंद्र घोडे**	2-3
2.	एनसीएफ 2023: स्कूल शिक्षा के उद्देश्य और पाठ्यचर्या क्षेत्र - **विक्की सिंह**	4-7
3.	हिन्दी कहानी लेखन और संजीव - **डॉ. पी.एम.आर. जयंती**	8-9
4.	भारतीय ज्ञान परंपरा में अष्टांग योग के विविध आयाम - **डॉ निकेश कुमार**	10-11
5.	विभूति नारायण राय के उपन्यासों में यथार्थपरकता - **डॉ. सत्य प्रकाश पाण्डेय**	12-14
6.	फादर कामिल बुल्के का हिंदी साहित्य में योगदान - **सौरभ शुभम**	14-15
7.	हिंदी साहित्य में समरसता - **शशि प्रकाश पाठक**	16-18
8.	'श्रृंखला की कड़ियां'निबंध में नारी चेतना - **अंजली कुमारी**	18-20
9.	Comparative Study of Antibacterial Effect of Trigonella Foenum-Graecum, Boswellia Serrata, and Nigella Sativa on Aggregatibacter Actinomycetemcomitans - **Dr. Payal Jaiswal & Dr. Lalita Goyal**	21-22
10.	Exploring the Complex Relationship Between Migration and Wellbeing: Benefits and Challenges - Manish Kumar	23-27
11.	Examine Strategies for Preservation Including Natural Preservatives to Increase the Lifespan of Food - Ashutosh Pathak	27-33
12.	भारतीय जनजातीय जनसँख्या में परिवर्तन का विश्लेषण - **डॉ. सारदा प्रसाद**	33-40
13.	दलित आत्मकथा: चेतना, चिंतन और सौन्दर्यबोध - **राम चन्द्र & प्रवीण कुमार**	41-47
14.	Impact of product price, offers and product display on consumer purchase decision of FMCG in Kathmandu Valley - **Santosh Pokharel,Madan Kumar Luitel, Bhavuk Raj Neupane & Prof. Jaladi Ravi**	47-51
15.	किन्नर बच्चों के लिए संघर्षरत माँ- हिन्दी उपन्यासों के सन्दर्भ में - **अमिता टेटे & डॉ. महेन्द्र कुमार वर्मा**	52-54
16.	हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी नारियों का आर्थिक संघर्ष - **सुमन बारला & डॉ. महेन्द्र कुमार वर्मा**	55-57
17.	राजू शर्मा के कथा साहित्य में आर्थिक स्थिति - **उमा बणिचुल**	58-60
18.	Effect of Industries on Future Animals and Plants in Singrauli District- **Dr.Vishwanath Singh Kushram**	60-62
19.	मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' में चित्रित विभाजन का दर्द - **डॉ. श्रीमाया सी.**	63-64
20.	मरंग गोडा नीलकंठ हुआ उपन्यास में चित्रित विकिरण प्रदूषण - **बिष्टप्पा तलवार**	65-66

****

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 09 जनवरी - मार्च -2025 Impact factor– 03

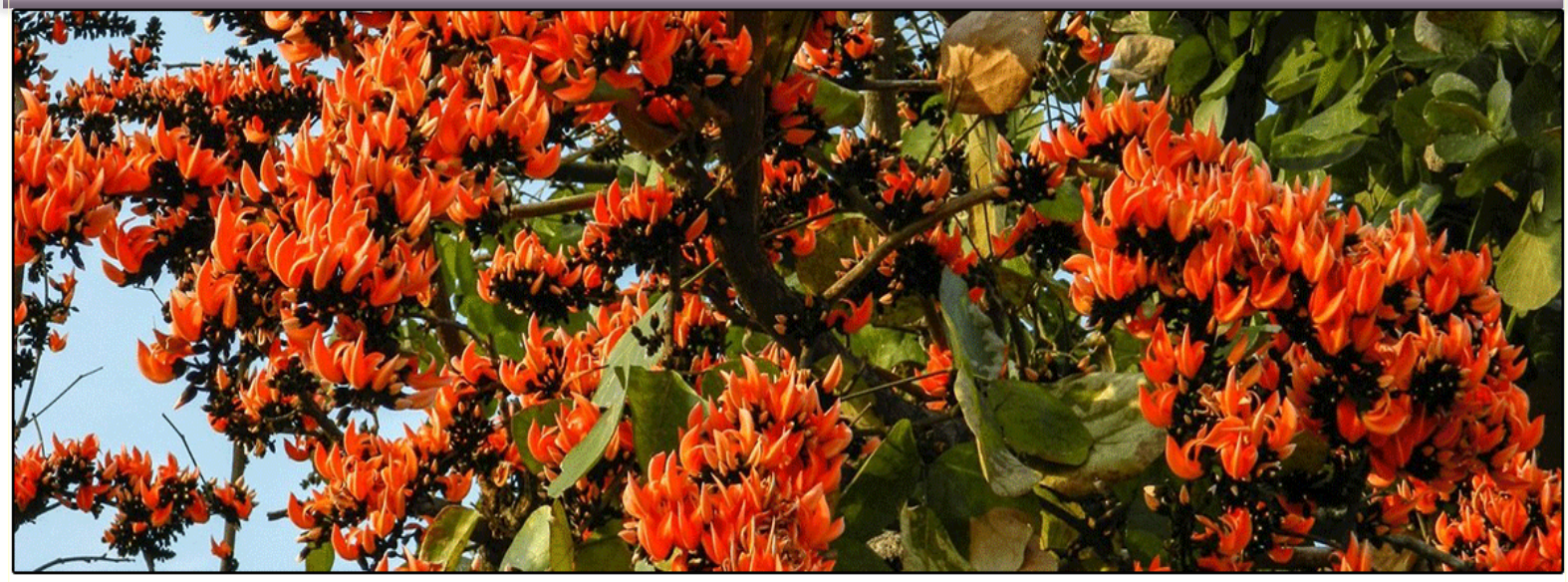

तेहि दुख भए परास निपाते, लोहू बूड़ि उठी परभाते।

संपादकीय.....

वर्तमान समय में ज्ञान और शोध का निरंतर विस्तार हो रहा है। वैश्वीकरण और तकनीकी क्रांति ने न केवल हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को प्रभावित किया है, बल्कि साहित्य, शिक्षा, विज्ञान और चिकित्सा जैसे विविध क्षेत्रों में भी नवीन दृष्टिकोण और शोध की संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। 'शोध उत्कर्ष का यह नया अंक इन्हीं विषयों को समाहित करता हुआ एक समृद्ध बौद्धिक विमर्श प्रस्तुत करता है।

हिंदी साहित्य पर वैश्वीकरण का प्रभाव एक महत्वपूर्ण विषय है। वैश्वीकरण के कारण साहित्य की सीमाएँ विस्तृत हुई हैं और विभिन्न भाषाओं के साहित्य में परस्पर संवाद की संभावना बढ़ी है। हिंदी साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। डॉ. राजेंद्र घोडे का शोध आलेख इस पर विशेष प्रकाश डालता है कि किस प्रकार वैश्वीकरण ने हिंदी कविता की संवेदना, विषय-वस्तु और अभिव्यक्ति के तरीकों को प्रभावित किया है। आधुनिक हिंदी कविताओं में वैश्वीकरण के प्रभाव के चलते सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक बदलावों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

संजीव समकालीन हिंदी कहानी लेखन के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनके लेखन में समाज के उपेक्षित और संघर्षशील वर्गों की पीड़ा का सजीव चित्रण मिलता है। डॉ. पी.एम.आर. जयंती का शोध पत्र इस बात की गहन पड़ताल करता है कि किस प्रकार संजीव ने अपने साहित्य में सामाजिक यथार्थ, अन्याय, शोषण और संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानियाँ पाठकों को न केवल झकझोरती हैं, बल्कि उन्हें समाज की गहराइयों में झांकने के लिए भी प्रेरित करती हैं।

विभूति नारायण राय का उपन्यास साहित्य अपनी यथार्थपरकता के लिए जाना जाता है। डॉ. सत्य प्रकाश पाण्डेय का आलेख इस बात पर केंद्रित है कि किस प्रकार राय के उपन्यास भारतीय समाज की जमीनी सच्चाइयों को उभारते हैं। उनका लेखन पुलिस व्यवस्था, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और आम आदमी की त्रासदी को सटीक रूप में चित्रित करता है। उनके उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न आयामों का चित्रण मिलता है, जो पाठकों को सोचने के लिए विवश करता है।

फादर कामिल बुल्के हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण विद्वान रहे हैं। सौरभ शुभम का शोध पत्र उनके योगदान को विस्तार से रेखांकित करता है। उन्होंने न केवल हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन किया, बल्कि हिंदी के प्रचार-प्रसार में भी अहम भूमिका निभाई। उनकी पुस्तक 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' आज भी हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए संदर्भ ग्रंथ मानी जाती है।

समरसता का तात्पर्य सामाजिक समानता और सौहार्द से है। शशि प्रकाश पाठक का शोध पत्र इस बात को विश्लेषित करता है कि हिंदी साहित्य ने किस प्रकार समरसता के सिद्धांत को अपनाया और समाज में एकता और समानता की भावना को विकसित किया। साहित्य समाज का दर्पण होता है, और इसमें समरसता का भाव दर्शकों को प्रेरित करता है कि वे जाति, धर्म और भाषा की सीमाओं से परे एक समावेशी समाज की रचना करें।

अंजली कुमारी का शोध पत्र अमृतलाल नागर के प्रसिद्ध निबंध 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में नारी चेतना के तत्वों को उद्घाटित करता है। यह निबंध स्त्री स्वाधीनता, उनकी सामाजिक स्थिति और संघर्षों का प्रामाणिक चित्रण करता है। नारीवाद के समकालीन संदर्भ में इस निबंध का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि यह नारी चेतना के विकास की दिशा में मील का पत्थर साबित होता है।

योग भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर है। डॉ. निकेश कुमार विभिन्न अंग किस प्रकार व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उत्थान में सहायक होते हैं। योग केवल साधना नहीं, बल्कि एक संपूर्ण जीवन पद्धति है, जिसे भारतीय ज्ञान परंपरा में अत्यंत महत्व दिया गया है।

चिकित्सा और विज्ञान के क्षेत्र में भी इस अंक में महत्वपूर्ण शोध प्रकाशित किए गए हैं। डॉ. पायल जायसवाल और डॉ. ललिता गोयल का शोध पत्र कुछ प्राकृतिक औषधियों के जीवाणुरोधी प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, आशुतोष पाठक ने खाद्य संरक्षण की प्राकृतिक रणनीतियों पर शोध किया है, जो वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक है।

प्रवासन वैश्विक अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। मनीष कुमार का शोध पत्र इस विषय पर गहराई से विचार करता है कि प्रवासन किस प्रकार लोगों के जीवन स्तर, सामाजिक संबंधों और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। प्रवासन के लाभ और चुनौतियों पर संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।

'शोध उत्कर्ष' का यह अंक विभिन्न विषयों पर गहन अनुसंधान प्रस्तुत करता है। यह अंक साहित्य, समाजशास्त्र, शिक्षा, चिकित्सा और विज्ञान के विविध पहलुओं पर केंद्रित है। शोध उत्कर्ष का उद्देश्य गंभीर और मौलिक शोध को प्रोत्साहित करना है ताकि विद्वानों, शोधार्थियों और पाठकों को नवीन दृष्टिकोण और गहन विश्लेषण प्राप्त हो सके।दलित आत्मकथा, चेतना, चिंतन और सौन्दर्यबोध दलित आत्मकथा एक ऐसा साहित्यिक रूप है जो अनुभव की प्रामाणिकता,सामाजिक यथार्थ और आत्मबोध के संधान से जुड़ा हुआ है। इसमें दलित जीवन की पीड़ा, शोषण, अपमान, संघर्ष और आत्मसम्मान की चेतना जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हम आशा करते हैं कि यह अंक शोध और अकादमिक विमर्श को एक नई दिशा देगा तथा पाठकों को समृद्ध बौद्धिक अनुभव प्रदान करेगा। शोध उत्कर्ष के इस अंक के लिए सभी लेखकों, समीक्षकों और संपादकीय टीम को हार्दिक धन्यवाद।

****

दिनांक –31/03/2025

संपादक मंडल
शोध उत्कर्ष (Shodh Utkarsh)

हिंदी कविताओं पर वैश्वीकरण का प्रभाव

डॉ. राजेंद्र घोडे
सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले
विश्वविद्यालय, पुणे

वर्तमान समय में वैश्वीकरण ने सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक, राजनीतिक शैक्षिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में बदलाव लाए है। यही बदलाव धीरे-धीरे व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक जीवन को बदल रहे हैं। क्योंकि परिवर्तन सृष्टि का नियम है। बहुत से बदलाव चीजो समय, सभ्यता तथा दैनंदिन जीवन में होते रहते हैं। इस बदलाव भरी भूमि को समकालीन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं से अभिव्यक्त किया है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया से सकारात्मक और नकारात्मक बिंदुओं के निर्माण हो रहे हैं उन्हें कवियों ने कविताओं के माध्यम से उजागर किया है। साहित्य से वैश्वीकरण बाजारवाद, उदारीकरण, विश्वग्राम जैसे अनेक विषयों के अंतर्गत भिन्न-भिन्न पारिस्थितियों को भी मुखरित किया है। दरअसल कविता अपने समय की दस्तावेज होती है, जिसमें समय की गूँज सुनाई देती है। इसी को लेकर भगवत रावल कहते हैं- 'कविता काल निरपेक्ष और समाज निरपेक्ष नहीं होती। वह अपने समय में होती है और अपने समय के निशान उस पर मौजूद होते हैं।'1 पूरे विश्व में जिस परिवर्तन या बदलाव को स्वीकृत किया गया है उसी को कवियोंने रेखांकित किया है। बढ़ते हुए वैश्विकरण में आदमी मोबाईल, ई-मेल, कम्प्यूटर, क्रेडिट कार्ड आदि जीवन केंद्रित वस्तुओं से जुड़ा है। हर एक व्यक्ति का जीवन सुबह से लेकर श्याम तक कई वैश्विक वस्तुओं के आकर्षण में बीतते हुए दिखाई देता है। वे घर बैठे-बैठे इन वस्तुओं से रु-ब -रु होकर अत्यंत शीघ्र गती से उपयोग की कामना चाहते हैं। इसी वजह से वर्तमान में मानव के उपभोग के लिए चौबीसों घंटे बाजार अपना कार्य कर रहे हैं।

आज व्यक्ति वस्तुओं के उपयोग में इतना फँसा हुआ है कि जिस चीज की वह चाह रखता है वह उसे कुछ क्षणों में मिल जाती है। इसलीए हम कह सकते हैं कि आज महानगरों में बाजार विकसित हुए हैं, जिससे न घरो में न पंछी, न कुत्ते न बिल्ली मेहमान आते हैं बल्कि जो आते हैं वह तो केवल वस्तु बेचनेवाले एजंट या वस्तुओं के पार्सल। ऐसी बढ़नेवाली वस्तु केंद्रित वृत्ति से कवि चिंतित होते हुए दिखाई देते हैं।

बाजार ने व्यक्ति को खरीदार तो काया ही है लेकिन उसके दिमों-दिमाग पर भी अधिकार बनाया है। व्यक्ति की हर एक जरूरत को किस रूप में पूरा किया जा सकता है, उसके अनेक पर्याय बाजार में उपलब्ध या खुले किए गए है। वर्तमान में हर वस्तु चीज को बाजार मे अपने नियंत्रण में लिया है। बाजार ने आज लुभावने सपनों से व्यक्ति को चीजों का जरूरतमंद बनाया है। इस नई मनोवृत्ति के प्रति कवयित्री रंजना जायसवाल 'बाजार-एक' कविता के माध्यमले कहती है-

'पहले वे
जरूरत पैदा करते हैं
शुरू-शुरू में पूरी भी करते हैं
जरूरतें पर आदी बनते ही
तटस्थ हो जाते हैं
फिर रह जाता है
आदमी
अभाव में छटपटाता।''2

इस प्रकार की विचारधारा को बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने बढ़ाकर नई-नई आवश्यकताओं को जन्म दिया है, जैसे सुबह नहाने के साबुन से लेकर रात सोने के गुड़ नाईट तक भिन्न-किन जरूरतों को निर्माण किया है। इन आवश्यकताओं के कारण व्यक्ति इन चीजों, वस्तुओं को अपने शरीर का अंग समझने लगा है, जिसके न होने से वह निराश, बेचैन हो उठता है। चीजें व्यक्ति की जरूरतों के अनुसार सेवा प्रदान सेवा प्रदान करती है किंतु इन सेवाओं के अभाव में व्यक्ति स्वयं को हताश महसूस करता है।

वर्तमान मानव जीवन के सभी पहलू केवल यंत्रवत साधनों उपकरणों से जुड़े हुए हैं। इस नई सभ्यता हमें नई उद्भावनाओं का सामना करना पड़ रहा है। इस संदर्भ में से कवि भगवत रावत 'बैलगाड़ी' कविता में इसी समस्या को लेकर लिखते हैं-

''एक दिन अपनी ही चमक-दमक की
रफ्तार में परेशान सारे के सारे वाहनों के लिए
पृथ्वी पर जगह नहीं रह जाएगी।''3

मानव जीवन की सुख-सुविधाओं के लिए भिन्न-भिन्न कार्पोरेट कंपनियों इन उपकरणों साधनों को अधिक मात्रा में को निर्मित कर रहे है। आज कई व्यक्तियों के पास एक से अधिक मोटार गाड़ियो की संख्या दृष्टिगत होती है, ये केवल वैश्वीकरण की देन हैं। इनसे आगे चलकर भविष्य में निर्माण घेवा मुसीबतों को लेकर कवि चिंतनशील बने है। लुभावने सपने दिखाकर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अधिक मुनाफा कमाना चाहती हैं। बाजार में कौन-सी चीज ना रूप में आकर उभरकर आ सकती है, इसका कोई अंदाजा नहीं होता। लेकिन सब मनुष्य उन चीजों के प्रति आकर्षित रहते हैं।

वैज्ञानिकता एवं यांत्रिकता से एक नई विश्व क्रांति का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाईल, ई-मेल, जैसे उपकरणों की उपयुक्तता को लेकर आम आदमी भी गुलाम हो गया है। क्योंकि यह सभी उपकरण आधुनिक मनुष्य की जरूरतें बन गई है। वैज्ञानिकता एवं यांत्रिकता ने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में अपना अस्तित्व कायम किया है जैसे कि- व्यापार उद्योग, मनोरंजन, वस्तुएँ, शिक्षा डाक आदि। वैश्वीकरण की वैज्ञानिक एवं यांत्रिक नीतियों से मानव जीवन के लक्ष्य, मूल्य व्यक्तित्व आदि में अभूतपूर्व परिवर्तन होते हुए दिखाई देती है। वैज्ञानिकता एवं यांत्रिकता से नकारात्मक पहलू भी सामने दिखाई देते है। इसको लेकर भी कवि जनता का ध्यान आकर्षित करता चाहते हैं। 'यह भागता शहर' इस कविता के माध्यम से कवयित्री रंजना जायसवाल वास्तविकता प्रकट करती है। वह कहती है-

यहाँ रोमांच है, रोमांस नहीं
देह है, आत्मा नहीं
सब कुछ कृत्रिम
मशीन से संचालित
पेड़-पत्ते और फल-फूल
पशु-पक्षी सब
यहाँ तक कि आदमी
मुश्किल है पहचान असल की
नकल ज्यादा वास्तविकता लगती है यहाँ।''4

मानव की आंतरिक संवेदनाओं की मृत्यु होकर केवल मशीनी जीवन बना है। यांत्रिकला के लाभ में असल की जगह नकल ही वास्तविक लग रही है। विश्व क्रांति के दौर में वैज्ञानिकता और यांत्रिकता के कारण मानव जीवन के लिए जितने लाभ हुए है उतनी हातियाँ भी बढ़ती हुई दिखाई दे रही हैं।

वर्तमान समय में हर एक हर एक क्रिया का काम विज्ञान, तंत्रज्ञान के द्वारा अधिक मात्रा में हो रहा है। हर एक आदमी अपने श्रम, अर्थ, समय की गति पर नियंत्रण करने हेतु इन साधनों का गुलाब बनना पसंद करता है। उसे केवल फल और परिणाम की आवश्यकता है। इसलीए हर पल वह इन तकनीकी साधनों से जुड़ता रहता है। इस स्थिति को लेकर कवि ज्ञानेंद्रपति 'कदम-कदम पर' इस कविता के माध्यम से यंत्रवत स्थिति के दर्शन को व्यक्त करते हुए कहता है-

''कितने कदमों का है यह शहर
इसका पूरा ज्युग्राफिया है मौजूद
चमकते शातिर खस्वाट के भीतर।''[5]

तकनीकी विज्ञानवादी युग में बड़े-बड़े शहरों को भौगोलिकता से अधिक छोटे छोटे नक्शों में रूपांतरित किया है। आज समुचे विश्व को तकनीकीने सीमित किया है।

विज्ञान और तकनीकी से विध्वंसक और भयानक रूप भी प्रस्तुत होते है। आदमी अधिक से अधिक लाभ लेने हेतु स्वयं के जीवन से खेल रहा है। इस बढ़नेवाली अमानवीयता को लेकर कवि ज्ञानेंद्रपति 'बीज-व्यथा' कविता में कहता है-

'रासायनिक खादों और कीटकनाशकों के जहरीले संयत्रों की आयतित तकनीक आती है पीछे-पीछे तुम्हारा घर उजाडकर अपना घर भरनेवाली आयतित तकनीक यहाँ अन्न-जल में जहर भरनेवाली कहर ढानेवाली बगैर कुहराम'[6]

कवि बीज उत्पादन तकनीक के माध्यम से होनेवाले दुष्प्रभाव को अभिव्यक्त करते हैं कि जितनी अधिक मात्रा में हम कृत्रिमता के हथकंडे अपना रहे हैं, उतनी अधिक मात्रा में नई-नई तकनीकों का विस्तार हो रहा है। यह नीति व्यक्ति, समाज और राष्ट्रों को उजाकर अधिक मुनाफे के साथ जुड़ी है। विज्ञान और तकनीक मनुष्य जीवन के सृजनात्मकता और सापेक्षता की पहचान बने हैं लेकिन वर्तमान दौर में बदली हुई मानसिकता में अर्थ, लाभ की शक्ति कार्य कर रही है।

विश्व भर में आज ग्लोबल वार्मिंग की समस्या अधिक तीव्र हुई है। आज हर कोई व्यक्ति स्वार्थ से इतना क्रुर बना है कि वह पृथ्वी और प्रकृति की तमाम चीजों पर अधिकार पाकर उसे प्रदुषित कर रहा है। पर्यावरण के जंगल, पेड़, नदी, पशु, पंछी सभी से मानव अपना खेल खेल रहा है। इस स्थिति को निर्मला पुतुल अपनी कविता 'बूढी पृथ्वी का दुःख' के माध्यम से व्यक्त करती है

'क्यों होती है
तुम्हारे भीतर धमस
कटकर गिरता है
जब कोई पेड़ धरती पर'[7]

विकास का आधार लेकर पृथ्वी पर से पेड़ों की बड़ी मात्रा में कटाई हो रही है। पेड़ों से मनुष्य के जीवन के लिए प्राणवायु मिलता है। इसी सवाल को लेकर कवयित्री कहती है कि क्या खुद के ही जीवन से एक तहर से खेलना यह कैसा व्यवहार है। जब पेड़ कट जाता है तो कोई दुःख नहीं होता।

वैश्वीकरण के युग में भौतिक सभ्यता, शहरीकरण के नामपर प्राकृतिक जीवन को तहस-नहस किया जा रहा है। हमारी प्राकृतिक जरूरतों को मिटाया जा रहा है। हमारा जीवन जिन चीजों पर टिका हुआ है वह वर्तमान युग के भौतिक सभ्यता, सहरीकरण हे द्वारा प्रदुषित हो रहा है। भौतिक औद्योगिक क्रांति का गहरा दुष्प्रभाव पर्यावरण पर हुआ है। आज शहरीकरण और भौतिक सभ्यता के लिए इन मशीनीकृत राक्षसों में प्राकृतिक जीवन के सभी पहलुओं को मिटाया है। पर्वत, पहाड़, पशु, पंछी, पेड को क्रसरों और बारूदों के द्वारा उजाड़ा जा रहा है।

समाज में जिस तरह विकास बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है ठीक उसी प्रकार अपराध, भय, घृणा का प्रतिशत भी बढ़ता जा रहा है। आज आदमी का जीवन तनाव, पीड़ा, नैरास्य से भरा हुआ दिखाई दे रहा है। तनाव भरी जिंदगी में जीवन जीते-जीते व्याकन विस्थापित हो रहा है। किसी भी जगह जाए वहाँ पीड़ा का भाव बना रहता है। इस पीड़ा से अपना संसार उठाकर अन्य जगह डेरा बसाते हैं, लेकिन पुनः उस स्थिति का सामना करते-करते वे अपनी खुद की पहचान भी खोते है। इस स्थिति पर मंगलेश डबराल 'दुःख' कविता में दर्शाते है-

'लोग छोड़कर जाते हैं घर-द्वार
अनजान दुनिया में भटकले निरुद्देश्य
रोटी कैं बदले में बदल देते है
अपने नाम और विचार'[8]

तनाव के बिखराव में आदमी अपनी पहचान खो रहा है। खुदकी पहचान छुपाने के लिए नकली मुखौटे का प्रयोग कर रहा है। इस तनाव भरी जिंदगी में आम आदमी सुख, समाधान के लिए बिखराव भरा जीवन जी रहा है।

अतः हम कह सकते है कि व्यक्ति को वैश्विकरण ने कई सुविधाएँ दी हैं लेकिन उससे व्यक्ति ने जीवन के आनंद को हाशिए पर रख दिया है। भौतिक सुविधाओं की लालसा से वे अपने सेहत स्वास्थ के प्रति उदासीन या लापरवाह दिखाई रहे हैं। व्यक्ति आत्मीय प्रेम के लिए जुझ रहा है। मूल्य परिवर्तित होकर उपभोग के मूल्य बन गए है और सच्ची आत्मीयता, प्रेम, समन्वय के रिश्ते भी अनजान है। शाश्वत होते गए है। वैश्वीकरण की स्थितियों से आम आदमी के अस्तित्व, संघर्ष, वर्तमान दशा और दिशाओं का प्रभाव हिंदी कविताओं में साफ झलकता हुआ दिखाई देता है।

****

संदर्भ सूची -

1.*कवि एकादश*, संपा. लीलाधर मंडलोई एवं अनिल जनविजय, मेघा बुक्स, दिल्ली संस्करण- 2008, पृ.140
2.*जिंदगी के कागज़ पर*, रंजना जायसवाल शिल्पायन प्रकाशन शाहदरा दिल्ली प्रथम संस्करण 2009, पृ.78
3.*ऐसी कैसी नींद*, भगवत रावत, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2004 पृ.12
4.*जिंदगी के कागज पर*, रंजना जायसवाल शिल्पायन प्रकाशन शाहदरा दिल्ली प्रथम संस्करण 2009, पृ.80
5.*संशयात्मा*, ज्ञानेंद्रपति, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2004, पृ.33
6.वही, पृ.170
7.*नगाड़े की तरह बनते शब्द*, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपति इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली युवक संस्करण 2005, पृ.31
8.*आवाज भी एक जगह है*, मंगलेश डबराल, वाणी प्रकाशन शन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2000, पृ.50

एनसीएफ 2023: स्कूल शिक्षा के उद्देश्य और पाठ्यचर्या क्षेत्र

विक्की सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
ओमकारानन्द इन्सटीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट एण्ड टेक्नोलॉजी,
ऋषिकेश. मो0: 7668035320

सारांश -

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क प्रकाशित चार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क ढांचे में से एक है। 1975, 1988, 2000 और 2005 में। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा NCF2023 पूरे भारत में पाठ्यक्रम: पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण प्रथाओं को डिजाइन करने के लिये एक व्यापक दिशा-निर्देश के रूप में कार्य करता है। NCF2023 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का एक अभिन्न अंग है, जिसका उद्देश्य शिक्षा के लिये समग्र समावेशी और बहु-विषयक दृष्टिकोण को बढ़ावा देना है। यह नवीनतम ढांचा NCF 2023 में निर्धारित मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है, जिसका विस्तार 3 से 18 वर्ष की आयु तक स्कूल शिक्षा के सभी चरणों को कवर करने के लिये किया गया है।

मेरा मानना है कि हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शिक्षा सुधार के सिद्धान्तों को पहली बार श्री अरबिन्दो ने 100 साल पहले राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली पर अपने निबन्धों में व्यक्त किया था, जिसकी परिणिति राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा तैयार की गई पद्धति में हुई है, जिसे केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSC) द्वारा अपनाया गया है, और अब राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया जा रहा है। NCF के रूप में जाना जाता है। यह दस्तावेज शिक्षा के सिद्धान्त, जो यह बताते हैं, दुनिया के कई स्कूलों में आज प्रचलित सबसे प्रगतिशील बाल-केन्द्रित शैक्षिक विचारों और रणनीतियों को मूर्त रूप देते हैं और आरम्भिक दशकों में श्री अरबिन्दो द्वारा व्यक्त अन्त दृष्टि की व्यापक प्रकृति का वर्णन करते हैं और 20वीं शताब्दी के 40 और 50 के दशक में माता द्वारा उनके मौलिक विचार प्रगतिशील शिक्षा सुधार के मानदंड बन गये हैं। इस संक्षिप्त निबन्ध का उद्देश्य इस उल्लेखनीय उपलब्धि की संक्षिप्तता को प्रदर्शित करना है।

की वर्ड - एनसीएफ 2023, स्कूल शिक्षा, एनईपी 2020, पाठ्यक्रम ।

बीज शब्द:NCF 2023, स्कूल शिक्षा,पाठ्यचर्या रूपरेखा,बहु-विषयक शिक्षा,समग्र शिक्षा,ज्ञान, क्षमता,मूल्य,शिक्षार्थी-केन्द्रित दृष्टिकोण,आलोचनात्मक सोच,समावेशी शिक्षा,प्रयोगात्मक अधिगम,तकनीकी एकीकरण,मूल्यांकन प्रणाली,शिक्षकों का व्यावसायिक विकास,बोर्ड परीक्षाएँ,व्यावसायिक शिक्षा,शारीरिक शिक्षा,कला एवं संस्कृति,भाषा शिक्षा,

प्रस्तावना -

भारतीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा 06 अप्रैल 2023 को जारी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा NCF 2023 School Education प्रथम ड्राफ्ट जारी किया गया था, जिसे सभी विद्वतजनों के सुझाव लेने के लिये जारी किया गया था। यह दस्तावेज भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में काफी चर्चा एवं कौतूहल का विषय रहा है। इसके पूर्व 2022 में शिक्षा के आधारभूत चरण के लिये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा जारी हुई थी। यह दोनों ही फ्रेमवर्क राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पर आधारित है। NCF 2023 School Education का उद्देश्य स्कूली शिक्षा के छात्रों के सीखने और शिक्षकों के पढ़ाने के तरीके में एक बड़ा बदलाव लाना है ।

NCF 2023 School Education यह फ्रेमवर्क, जो देश में स्कूली शिक्षा के लिये एक दिशा-निर्देश के रूप में कार्य करता है, जिसका उद्देश्य बच्चों में सोच, रचनात्मकता और समस्या को सुलझाने के कौशल को विकसित करने पर जोर देना है। इसे गेम -चेंजर के रूप में सराहा जा रहा है। माना जा रहा है कि यह फ्रेमवर्क भारतीय शिक्षा प्रणाली को बदल सकता है। यह रूपरेखा एक शिक्षार्थी-केन्द्रित दृष्टिकोण की आवश्यकता पर जोर देती है जो छात्रों की विविध आवश्यकताओं और हितों को ध्यान में रखता है। यह शिक्षा में प्रौद्योगिकी को एकीकृत करने और डिजिटल साक्षरत को बढ़ावा देने के महत्व पर भी जोर देता है। हालांकि NCF2023 को लागू करने की व्यवहार्यता और शिक्षकों के लिये पर्याप्त संसाधनों और प्रशिक्षण की आवश्यकता के बारे में भी चिन्ताएँ हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में हम देखेंगे कि भारतीय शिक्षा प्रणाली को उन्नत करने के लिये इस फ्रेमवर्क में क्या-क्या प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही स्कूली शिक्षा पर NCF 2023 के सम्भावित प्रभाव आने वाली चुनौतियों का पता लगाएँगे।

अध्ययन के उद्देश्य -

1.स्कूल शिक्षा के संबंध में NCF 2023 के विजन का अध्ययन करना।
2.विद्यमान स्कूल शिक्षा में पाठ्यचर्या संबंधी दोषों की समीक्षा करना।
3.स्कूल शिक्षा के लिये छब्थ् 2023 द्वारा सुझाए गए पाठ्यचर्या निवेश की समीक्षा और चर्चा करना।
4.NCF 2023 के मार्ग में आने वाली बाधाओं पर चर्चा करना।
5.इन बाधाओं को हल करने के लिये समाधान पर चर्चा करना।
6.NCF 2023 के पहलुओं पर सुझाव देना।

कार्य प्रणाली -

वर्तमान पेपर एक दस्तावेजी अध्ययन और प्रकृति गुणात्मक और सैद्वान्तिक शोध है। शोधार्थी द्वारा सामग्री विश्लेषण विधि का उपयोग किया गया था। यह शोध कार्य मुख्य रूप से आधिकारिक दस्तावेजी साक्ष्यों और पुस्तकों, ई-पुस्तकों, पत्रिकाओं, लेखों, वेबसाइटों, विभिन्न संगठनों की रिपोर्टों, इंटरनेट ब्लॉगों और लिखित दस्तावेजों जैसे सूचना के विभिन्न स्रोतों पर आधारित है।

NCF 2023 का मुख्य उद्देश्य -

इस NCF 2023 का बड़ा उद्देश्य भारत के विद्यालयी शिक्षा प्रणाली को सकारात्मक रूप से संवर्धित करने में सहायता करना है, जैसा कि NCF2020 में कहा गया है, जिसे पाठ्यक्रम में सकारात्मक परिवर्तनों के माध्यम से किया जा सकेगा।

सकारात्मक बदलाव से आशय है कि यह बदलाव केवल विचारों में ही नहीं बल्कि शिक्षा में व्याप्त दोषपूर्ण अभ्यास में बदलाव लाना है। क्योंकि 'पाठ्यक्रम' शब्द विद्यार्थी के विद्यालय में कुल अनुभवों को संक्षेप में बाँधता है और 'अभ्यास' केवल पाठ्यक्रम सामग्री और शिक्षण-प्रणाली के ही सन्दर्भ में नहीं होता, बल्कि विद्यालय के पर्यावरण और संस्कृति को भी शामिल करता है।

समाज का विजन और शिक्षा का विजन राष्ट्रीय शिक्षा नीति का हिस्सा है जबकि इस विजन एवं शिक्षा का विजन राष्ट्रीय शिक्षा नीति का हिस्सा हैं, जबकि इस दूरदर्शिता को प्राप्त करने के लिये हमें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में स्कूली शिक्षा का उद्देश्य, वांछनीय मूल्य और स्वभाव, क्षमताएँ और ज्ञान, पाठ्यचर्या के क्षेत्र, संस्कृति, प्रक्रियाएँ

सभी को NCF में विस्तार से विचार पड़त है। इस लिहाज से NCF 2023 इसे पूरा करता है।

स्कूली शिक्षा का उद्देश्य - NCF 2020 में जो शिक्षा का दृष्टिकोण रखा गया है, उसे स्कूली शिक्षा द्वारा व्यक्तियों में वांछनीय मूल्यों, क्षमताओं और ज्ञान विकसित करके प्राप्त किया जा सकता है पर उसके लिये हमें ज्ञान, क्षमता, मूल्य जैसे शब्दों को समझना होगा।

1.ज्ञान: इस दस्तावेज के अनुसार ज्ञान सिर्फ यह जानना भर नहीं है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है बल्कि इस तथ्यों के सत्य होने के बारे में तर्क करने की क्षमता है। ज्ञान तर्कसंगत विचार करने और उसमें कार्यवाही करने में सक्षम बनाता है।

2.क्षमताएँ: क्षमताएँ जैसे-जांच करना (अवलोकन, साक्ष्यों के संग्रह, विश्लेषण, संश्लेषण), संचार (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना), समस्या -समाधान एवं तार्किक तर्क, सौंदर्य एवं सांस्कृतिक क्षमता, स्वास्थ्य, जीविका एवं कार्य के लिये क्षमताएँ, सामाजिक जुड़ाव के लिये क्षमताएँ जैसे-सहयोग, टीम वर्क।

3.मूल्य स्वभाव: नैतिक मूल्य जैसे-सेवा, अहिंसा, स्वच्छता, सभी के लिये सम्मान, लोकतान्त्रिक मूल्य आदि स्वभाव-सकारात्मक कार्य नीति, जिज्ञासा-आश्चर्य, भारत और गर्व।

NCF 2020 में प्रतिमान बदलाव जो छब्थ् का मार्गदर्शन करते हैं - NCF2020 स्कूली शिक्षा में तीन आदर्श बदलावों की कल्पना करता है जो छब्थ् का मार्गदर्शन करते हैं -

1.अधिक बहु-विषयक और समग्र शिक्षा की ओर परिवर्तन।

2.रटने की बजाय आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक सोच पर जोर देना।

3.एक नई पाठ्यचर्या और शैक्षणिक संरचना में परिवर्तन।

NCF 2023 में प्रमुख नवीनीकरण

1.बहु-विषयक और समग्र शिक्षा: NCF 2023 एक बहु-विषयक दृष्टिकोण पर जोर देता है, जो छात्रों को धाराओं के बीच कठोर अलगाव के बिना विभिन्न विषयों का पता लगाने के लिये प्रोत्साहित करता है।

2.लचीलापन और विकल्प: नया ढाँचा विषय चयन में अधिक लचीलापन और विकल्प प्रदान करता है, विशेष रूप से ग्रेड 11 और 12 के छात्रों के लिये।

3.व्यावसायिक शिक्षा पर बढ़ा हुआ फोकस: प्रारम्भिक चरण से व्यावसायिक शिक्षा के एकीकरण का उद्देश्य छात्रों को व्यावहारिक कौशल से समृद्ध करना है।

4.संशोधित परीक्षा प्रणाली : तनाव को कम करने और सीखने के परिणामों में सुधार के लिये सेमेस्टर प्रणाली और मॉड्यूलर बोर्ड परीक्षाओं की शुरूआत।

5.समग्र शिक्षा: प्रारम्भिक चरण में अनुभवात्मक शिक्षा, कला और व्यवसाय शिक्षा को एकीकृत करने पर ध्यान केन्द्रित करता है।

उपरोक्त को यथार्थ रूप देने के लिये यह फ्रेमवर्क निम्नलिखित महत्वपूर्ण पक्षों को शामिल करने की सिफारिश करता है -

तर्कसंगत विचार और स्वायत्तता

स्वास्थ्य और तंदुरूस्ती

लोकतान्त्रित भागीदारी

आर्थिक भागीदारी

सांस्कृतिक एवं सामाजिक भागीदारी

पाठ्यचर्या के क्षेत्र - NCF2023 स्कूल शिक्षा में मुख्य रूप से 8 क्षेत्रों का उल्लेख करती है, जो इस प्रकार हैं -

1.भाषा: जो प्रभावी संचार को संभव बनाती है तथा इसका उपयोग तर्क और आलोचनात्मक सोच के साथ निकटता से जुड़ी हुई है।

2.गणित: जो समस्या समाधान और तार्किक क्षमता विकसित करे।

3.विज्ञान: जो प्राकृतिक दुनिया को समझने में मदद करती है। तर्कसंगत सोच व वैज्ञानिक सोच का विकास करना।

4.सामाजिक विज्ञान: यह शिक्षा सामाजिक जीवन को समझने में मदद करती है जो छात्रों को प्रभावी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में सक्षम बनाती है।

5.कला: कलाओं के साथ जुड़ने से हमारी रचनात्मक क्षमता में इजाफा होता है तथा सांस्कृतिक संवेदनाओं का विकास होता है।

6.अन्तः विषयक क्षेत्र: इसकी सबसे बड़ी विशेषता सोच एवं समस्या समाधान की क्षमता विकसित होने में है।

7.शारीरिक शिक्षा: इस पाठ्यचर्या के अनुसार खेलों में संलग्नता से महत्वपूर्ण नैतिक मूल्यों और संवैधानिक मूल्यों का विकास होता है।

8.व्यावसायिक शिक्षा: जिसका उद्देश्य जीविका और कार्य और आर्थिक भागीदारी के लिये क्षमता का विकास करना।

NCF2023 का महत्वपूर्ण पक्ष -

1.समग्र विकास:

NCF फ्रेमवर्क छात्रों के शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक एवं मानसिक सम्पन्नता के विकास पर ध्यान केन्द्रित करता है। यह फ्रेमवर्क मान्यता देता है कि शिक्षा केवल अकादमिक सफलता के बारे में ही नहीं होती है, बल्कि यह छात्र के सम्पूर्ण विकास के बारे में भी होती है और इसे प्राप्त करने के लिये यह फ्रेमवर्क सुझाता है कि शारीरिक फिटनेस, मानसिक स्वास्थ्य और भावनात्मक कल्याण को बढ़ावा देने वाली गतिविधियों को स्कूल में शामिल करे।

2.प्रयोगात्मक सीखना:

अनुभवजन्य अधिगम में छात्रों से सीखने के अनुभव शामिल होते हैं जो छात्रों को कक्षाओं में सीखी गई बातों को वास्तविक दुनिया की स्थितियों में लागू करने की अनुमति देते हैं। इस प्रकार की शिक्षा छात्रों को विषयवस्तु की गहरी समझ विकसित करने और जानकारी को लम्बे समय तक बनाये रखने की अनुमति देती है। इसके लिये Project -Base-Learning क्षेत्र भ्रमण तथा अन्य गतिविधियों को कक्षा शिक्षण का अंग बनाना होगा।

3.तकनीकी का समावेश:

NCF 2023 School Education राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 शिक्षा में प्रौद्योगिकी के महत्व को पहचानती है और शिक्षण अधिगम में तकनीकी का समावेश करती है।

4.NCF 2023 का चरण डिजाइन:

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के दिशा-निर्देशों का पालन करती है और स्कूली पाठ्यक्रम को चार चरणों में विभाजित करती हैं। ये चरण हैं -

1.आधारभूत चरण: (3 to 8)

2.प्रारम्भिक चरण ; (8 to 11)

3.मध्य चरण : (11 to 14)

4.माध्यमिक चरण (Phase 1 - 9 and 10 grades, Phase 2 - 11 to 12,
Age 14 to 18 Years)

5.मूल्याँकन और बोर्ड परीक्षाएँ:

छात्रों को सार्थक और चुनौतीपूर्ण मूल्याँकन के माध्यम से उच्च स्तरीय सोच कौशल विकसित करने के अवसर मिलने चाहिए।

निम्नलिखित तीन समूहों में से कम से कम दो से छात्रों को चार विषय (पाँचवा विषय वैकल्पिक के साथ) चुनने होंगे:

समूह-1भाषाएँ
समूह-2कला, शिक्षा, शारीरिक शिक्षा और कल्याण, व्यावसायिक शिक्षा
समूह-3सामाजिक विज्ञान, अंत विषय क्षेत्र
समूह-4गणित, कम्प्यूटेशन सोच, विज्ञान
NCF 2023 के मुख्य सिद्वान्त -
1.शिक्षार्थी-केन्द्रित शिक्षा
2.समग्र विकास
3.समावेशिता
4.रचनावाद
5.आलोचनात्मक सोच और समस्या समाधान
6.आधारभूत शिक्षा पर जोर
7.जीवन कौशल
राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2023 के कार्यान्वयन के लिये प्रमुख 4 रणनीतियों पर आधारित है -
1-शैक्षणिक विकास
2-व्यक्तिगत शिक्षा
3-डिजिटल प्रौद्योगिकी का अनुकूलन
4-शिक्षकों का व्यावसायिक विकास

NCF2023 कैसे बदलेगी शिक्षा प्रणाली -

साल 2020 में नई शिक्षा नीति का प्रस्ताव पास हुआ था, इसे तुरन्त ही स्कूल व कॉलेज शिक्षा में लागू किया जाने लगा। इससे भारतीय शिक्षा प्रणाली में कई बदलाव देखने को मिले। अब NCF यानी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 के ड्राफ्ट में एजुकेशन सिस्टम में बड़े बदलाव की जानकारी दी गई है। अब बच्चों को सिर्फ किताबी ज्ञान नहीं दिया जायेगा। छब्थ् ड्राफ्ट में प्री-प्राइमरी से लेकर 12वीं तक की शिक्षा प्रणाली में बड़े बदलावों का जिक्र है। इसमें स्किल व प्रयोगात्मक शिक्षा पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया गया है।

29 अप्रैल 2022 को श्री धर्मेन्द्र प्रधान (केन्द्रीय शिक्षा मंत्री, भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलुरू में आयोजित एक समारोह में) द्वारा एक दस्तावेज जारी किया गया, जिसमें उन्होंने उल्लेख किया: ''राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 'दर्शन' है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 'मार्ग' है और यह दस्तावेज 21वीं सदी की बदलती मांगों को पूरा करने और भविष्य पर सकारात्मक प्रभाव डालने वाला 'संविधान' है।''

NCF 2023 भारत में शिक्षा के लिये एक नई मार्गदर्शिका की तरह है जो बच्चों को अधिक सीखने का आनंद लेने और सोचने में बेहतर और रचनात्मक होने पर ध्यान केन्द्रित करता है।

प्री प्राइमरी व प्राइमरी स्तर पर क्या बदलाव होंगे ? -

प्री-प्राइमरी स्तर को फाउंडेशनल लेवल भी कहा जाता है। इसमें 3 से 8 साल तक की उम्र के बच्चे होते हैं। नयी शिक्षा प्रणाली में इन बच्चों को पढ़ाने के लिये खेल आधारित शिक्षा पर जोर दिया जायेगा। प्री-स्कूल से दूसरी कक्षा तक इसी विधि से पढ़ाई होगी। बच्चों को पढ़ाने के लिये खिलौने, पहेलियों जैसी विधि पर ध्यान केन्द्रित किया जायेगा। तीसरी, चौथी और पाँचवी कक्षा के बच्चों को पढ़ाने के लिये भाषा और गणित की पुस्तकों का इस्तेमाल किया जायेगा। यहाँ भी गतिविधियों और खोज आधारित शिक्षा पर जोर दिया जायेगा। माध्यमिक स्तर यानि छठी, सातवीं और आठवीं कक्षा के बच्चों के पाठ्यक्रम में सामाजिक विज्ञान को भी शामिल किया जायेगा।

सेकेंडरी स्टेज पर क्या बदलाव किये जायेंगे (9वीं-10वीं) -

9वीं और 10वीं कक्षा के विद्यार्थियों को 8 सह-पाठ्यक्रम क्षेत्र के तहत 16 विषयों की पढ़ाई करनी होगी। सुझाये गये पाठ्यक्रम क्षेत्र में मानविकी विषय (जिसमें भाषायें शामिल हैं) गणित और कम्प्यूटर, वोकेशन शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, कला, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान और अन्तरानुशासनिक विषय शामिल हैं। विद्यार्थियों को आठ बोर्ड पेपर देने होंगे। 10वीं के अन्तिम सर्टिफिकेट हेतु 2 वर्ष का प्रदर्शन देखा जायेगा।

उच्च माध्यमिक शिक्षा (11वीं-12वीं) पर क्या बदलाव किए -

12वीं कक्षा के विद्यार्थी कॉलेज की तरह सेमेस्टर प्रणाली के हिसाब से पढ़ाई करेंगे। विद्यार्थी को 8 पाठ्य-सहगामी क्षेत्र से कोर्स चुनने का विकल्प मिलेगा। फिलहाल 12वीं में पाँच विषय होते हैं। अभी तक विद्यार्थियों के पास कोई अन्य स्ट्रीम के विषय पढ़ने का विकल्प नहीं होता है लेकिन नयी प्रणाली में वह भौतिक विज्ञान के साथ इतिहास की पढ़ाई भी कर सकेंगे।

कब से लागू होगी नयी शिक्षा प्रणाली-

सरकार ने हाल ही में बदले गये छब्थ् के आधार पर नई किताबों का ऐलान किया है। शैक्षिक सत्र 2024-25 में नए पाठ्यक्रम, नई शिक्षा प्रणाली और नई किताबों से पढ़ाई की शुरूआत की जायेगी। हालांकि, अभी तक परीक्षा प्रणाली में बदलाव, मूल्याँकन और विषयों को लेकर नई जानकारी नहीं दी गई है। शिक्षकों, अभिभावकों व छात्र-छात्राओं को सलाह दी जाती है कि वह शिक्षा प्रणाली में हो रहे मुख्य बदलावों पर अपनी दृष्टि रखे।

कक्षा की भी बदलेगी सूरत - मौजूदा दौर में छात्र कक्षा में श्यामपट्ट और शिक्षक की तरफ देखते हुए बैठते हैं। NCF ड्राफ्ट 2023 में सुझाव दिया गया है कि बच्चों को अर्द्धवृत्त (Semi-Circles); यानी आधी गोलाई में बिठाना चाहिए। उन्हें समूह में बिठाने की व्यवस्था भी की जा सकती है। सभी विद्यार्थी पढ़ाई में बराबर का भाग लें।

रचनात्मक होगी स्कूल प्रार्थना सभा या असेंबली -

NCF ड्राफ्ट में स्कूल प्रार्थना सभा के तरीके में बदलाव की बात भी है। इसके अनुसार अगर इस समय का सही तरीके से उपयोग किया जाए तो बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है। स्कूल सभा को विद्यार्थियों के लिये उपयोगी और रचनात्मक होना चाहिए। वहाँ उनका समय खराब नहीं होना चाहिए। सभा या प्रार्थना सभा में कोशिश करनी चाहिए कि बच्चों को कुछ नया सीखने का अवसर मिले।

स्कूल ड्रेस और फर्नीचर में भी होगा बदलाव -

NCFमें कहा गया है कि स्कूल ड्रेस के रंग और डिजाइन को चुनते वक्त कुछ खास बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए। स्कूल अपने हिसाब से पारम्परिक, मॉर्डन या लिंग के प्रति तटस्थ यूनिफार्म चुन सकते हैं। कई स्कूलों में अभी भी बच्चे जमीन पर बैठ कर पढ़ाई करते हैं। बच्चों को चादर पर बिठाने व शिक्षक के कुर्सी पर बैठने की परम्परा को भी खत्म किया जायेगा। साथ ही प्रिंसिपल को किसी खास कप में चाय सर्व करने की परम्परा भी बदली जायेगी।

संस्कृति से भी जुड़ेंगे बच्चे -

छब्थ् में स्पष्ट कहा गया है कि बच्चों को भारत के गौरवशाली अतीत और इसकी समृद्ध विविधता, भौगोलिक स्थिति और संस्कृति से अवगत करवाना होगा। इससे बच्चे देश के इतिहास, कला और संस्कृति से जुड़ाव महसूस कर सकेंगे। विद्यार्थी को भारत के प्राचीन, मध्यकालीन और मॉर्डन समय के लोकतान्त्रिक मूल्यों के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। छब्थ् में त्रि-भाषा सूत्र पर भी जोर दिया गया है।

NCF2023 की मुख्य विशेषतायें -

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2023 की कुछ मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं - NCF2023 प्रारम्भिक बचपन देखभाल और शिक्षा EC-CE पर महत्वपूर्ण जोर देता है। साक्षरता और संख्यात्मकता में एक मजबूत नींव रखता है।

यह फोकस बच्चों की समझ और भविष्य की सीखने की क्षमताओं को बढ़ाने के लिये बनाया गया है।

NCF2023 सभी बच्चों को शीर्ष स्तर की शिक्षा प्रदान करने के महत्व को रेखांकित करता है। यह हमारे देश के संविधान में उल्लिखित समतामूलक, समावेशी और विविधतापूर्ण समाज को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण के अनुरूप है। यह ढाँचा NEP 2020 द्वारा प्रस्तावित 5+ 3 +3 + 4 संरचना के अनुरूप है जो शिक्षा को चार चरणों में व्यवस्थित करता है।

आधारभूत चरण (आयु 3-8) -

इस चरण में आंगनबाड़ी प्री-स्कूल (3 वर्ष) और उसके बाद प्राथमिक विद्यालय (ग्रेड 1-2, आयु 6-8 को कवर करते हुए) शामिल हैं। प्रारम्भिक चरण (आयु 8-11): इसमें ग्रेड 6-8 को कवर किया जाता है। माध्यमिक चरण (आयु 14-18) दो चरणों में विभाजित-पहले चरण में ग्रेड व 10 और दूसरे चरण में ग्रेड 11 व 12

बहु विषयक, समग्र और एकीकृत शिक्षा।

माध्यमिक चरण में लचीलापन और विकल्प।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2023 का उद्देश्य शिक्षण पद्धति सहित पाठ्यक्रम में सकारात्मक बदलावों के माध्यम से भारत की स्कूल शिक्षा प्रणाली को सकारात्मक रूप से बदलाने में मदद करता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2023, योग्यताएँ सीधे पाठ्यक्रम लक्ष्य से प्राप्त होती हैं और प्रत्येक चरण के अंत तक प्राप्त होने की उम्मीद है। स्कूली शिक्षा के प्रत्येक चरण के अंत में योगात्मक मूल्याँकन इन योग्यताओं पर आधारित होना चाहिए।

विभिन्न प्रकार की ऑडियो और लिखित सामग्री के साथ जुड़कर तर्क और कौशल विकसित करने के लिये भाषा का उपयोग करता है।

छात्र पढ़ते व सुनते समय अपने स्वयं के भावनात्मक पूर्वाग्रहों को पहचानते हैं और भाषण तथा लेखन में आधार और निष्कर्षों के बीच तार्किक संबंध बनाते हैं।

अच्छी तरह से डिजाईन की गई कक्षा में चल रहे मूल्याँकन को अवलोकित अनुसूची, बच्चों के पोर्टफोलियो, सरल भाषा, समग्र प्रगति कार्ड और प्रत्येक योग्यता के लिये रूब्रिक्स के माध्यम से विकसित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2023 पर निष्कर्ष -

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2023 भारत में अधिक लचीले, शिक्षार्थी केन्द्रित और समावेशी शैक्षिक प्रतिमान की ओर एक महत्वपूर्ण बदलाव को चिन्हित करता है। इसका उद्देश्य शिक्षार्थियों को आज की दुनिया की पेचीदगियों को प्रभावी ढंग से समझने के लिये आवश्यक कौशल और ज्ञान से सशक्त बनाना है। यह रूपरेखा व्यापक विकास, आलोचनात्मक सोच और समावेशिता को मौलिक शैक्षिक सिद्धान्तों के रूप में बढ़ावा देती है।

NCF 2023 कक्षा-12 के लिये सेमेस्टर प्रणाली का प्रस्ताव करता है जो कि एक उत्तम विचार है। इससे छात्रों में परीक्षा को लेकर तनाव कम होगा। बच्चे अपनी रूचि के अनुसार कोई भी विषय चुन सकते हैं। यह बच्चों के सीखने का दायरा बढ़ायेगा।

NCF2023 भारतीय स्कूली शिक्षा के लिये एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सकता है जो छात्रों को एक रूचिकर और सक्रिय शिक्षा का अनुभव प्रदान करने का प्रयास करता है। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य छात्रों के सम्पूर्ण विकास को बढ़ावा देना है जिससे उनका अकादमिक प्रदर्शन सुधर सकता है और सीखने में उत्साह बढ़ जाता है।

फ्रेमवर्क 2023 शिक्षा प्रणाली को शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक और ज्ञानात्मक क्षेत्रों पर जोर देने के माध्यम से छात्रों के समृद्ध विकास को प्रोत्साहित करने का प्रयास करता है। यह न केवल शिक्षा को एक ज्ञान अर्जित करने का साधन मानता है बल्कि इसे छात्र के सम्पूर्ण विकास के लिये आवश्यक मानता है।

फ्रेमवर्क 2023 का मुख्य उद्देश्य छात्रों को सक्रिय शिक्षा का अनुभव करने में मदद करता है जिससे उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में रूचि पैदा हो सके और उन्हें अपनी व्यावसायिक और व्यक्तिगत रूप से सफलता प्राप्त करने हेतु तैयार कर सके।

NCF2023 के माध्यम से शिक्षा प्रणाली में किया जा रहा बदलाव न केवल छात्रों के समग्र विकास को बढ़ावा देगा बल्कि यह भी तकनीकी प्रगति, नैतिक मूल्यों की समझ और राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करेगा। यह छात्रों को विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी और उच्च शिक्षा के लिये भी तैयार कर सकता है।

अतः इस प्रकार NCF2023 भारत में स्कूल शिक्षा हेतु एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है जो छात्रों को सक्रिय, सहज और सामर्थ्यवान शिक्षा का लाभ पहुँचाने का प्रयास करता है।

****

सन्दर्भ ग्रंथ -

1. hindi.news 18.com *"NCF 2023 Draft"*
2. Pgtprime.com
3. Rajput JS.Waliak. Teacher Education
4. Bernad etle Robinson, Colin Latchem, Teacher Education through Open and Distance Learning, Rout ledge, 2003
5. Singh, Sundaram, Teacher Education in India
6. (2020), *National Education Policy*. New Delhi : Ministry of Education
7. https : // en. wikipiedia.org/wiki/Nati-policy-en-education
8. Arora, G.L. (1984) : Reflection on Curriculum, New Delhi, NCERT
9. Arora, G.L. (1988) : Curriculum and Quality in Education, New Delhi, NCERT
10. Ministry of Education and Social Welfare (1977) : *Report of the Review Committee on the Curriculum for the Ten-Year school,* New Delhi, ME & SW, Govt. of India
11. NCERT (1998) : The Primary years : *Towards a curriculum framework (Part-1),* New Delhi, NCERT
12. NCERT (1999) : The Primary years : *Towards a curriculum framework (Part-II),* New Delhi, NCERT
13. Ministry of Education (2019). *Draft National Education Policy 2019.*https ://www.education.gov.in/sites/upload-files/mhrd/files/draft-NEP-2019-EN-Revised.pdf

हिन्दी कहानी लेखन और संजीव

डॉ. पी.एम.आर. जयंती
हिंदी में प्राध्यापक
एसकेआर और एसकेआर सरकार। महिलाओं के लिए कॉलेज (ए) कडप्पा.

कहानी की कहानी अत्यंत प्राचीन है। कहानी का संबंध मानव के आरंभ के साथ जोड़ा जाता है। मनुष्य के जन्म और विकास के साथ ही कहानी का जन्म और विकास भी होता गया। जब से मनुष्य भाषा का प्रयोग करने लगा तब से कहानी कहने- सुनने की प्रवृत्ति चली आ रही है। कहानी आरंभिक काल से ही मनोरंजन का साधन रही। इसके माध्यम से नैतिक शिक्षा दी जाती थी। उदात्त मानवीय मूल्यों का विकास असानी से किया जा सकता है। कहानी बड़ी सरलता से लोगों की समझ में आती है और उनको विस्तृत रूप से प्रभावित भी करती है। हिन्दी कहानी साहित्य के पूर्व रूप को जातक कथाएँ, पंचतंत्र, हितोपदेश, बृहत्कथा, चौरासीवैष्णवों की वार्ता आदि से जोड़ा जाता है। परंतु आज कहानी का जो रूप देखते हैं वह पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित एक विधा है। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी कहानी का प्राथमिक स्वरूप हम बंगला से अनूदित कहानियों में पाते हैं पश्चिम की अंग्रेजों की कहानियों के अनुकरण पर बंगला में 'गल्प' के रूप में कहानी की रचना आंरभ हुई और फिर बंगला से हिन्दी में इन कहानियों का रूपांतर हुआ।

हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास का आरंभ 1900 ई. के आस-पास माना जाता है। क्योंकि इससे पहले हिन्दी में कहानी जैसी किसी विधा का रूपायन नहीं हुआ था। हिन्दी में प्रथम कहानी को लेकर काफी मतभेद हैं। इंशा अल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' या 'उदयभानुचरित' ही प्रथम कहानी मानी गयी। पर बाद में किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' प्रथम कहानी मानी गयी। वह भी अमान्य सिद्ध हुई तो पं. रामचंद्र शुक्ल जी ने अपनी कहानी "ग्यारह वर्ष का समय" (सन् 1903) को ही प्रथम कहानी माना।

हिन्दी की प्रथम कहानी के अंतर्गत जिन कहानियों का उल्लेख किया गया है, उनके अलावा इस युग में लिखी गई अन्य प्रसिद्ध कहानियाँ हैं माधवप्रसाद मिश्र की 'मन की चंचलता, लाला भगवान दीन की 'प्लेग की चुडैल', वृंदवनलाल वर्मा की 'राखीबंद भाई' तथा 'नकली किला, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'रक्षाबंधन', ज्वालादत्त शर्मा की 'मिलन' आदि हैं। वस्तुतः 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन से हिन्दी में मौलिक कहानियों का विकास परिलक्षित होता है। सरस्वती पत्रिका ने हिन्दी कहानी को नया मोड दिया। इससे हिन्दी कहानी को गति मिली। इसी के साथ साथ सन् 1909 ई में काशी में 'इंदु' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसी पत्रिका के साथ जयशंकर प्रसाद ने कहानी साहित्य में प्रवेश किया। उनकी प्रारंभिक कहानियाँ 'आग' चंदा, गुलाम, चितौर उद्धार; आदि इंदु में प्रकाशित हुई। सन् 1912 ई में इनका पहला कहानी संग्रह 'छाया' नाम से प्रकाशित हुआ। राधिकारमण प्रसाद की कहानी 'कानों में कंगना' भी इंदु में सन् 1913 ई में प्रकाशित हुई।

प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के युगप्रवर्तक कहानीकार माने जाते हैं। प्रारंभ में वे नवाबराय के नाम से उर्द में लिखा करते थे। उर्द में लिखा हुआ उनका कहानी संग्रह "सोजे वतन" 1907 ई में प्रकाशित हुआ था। जिसे ब्रिटीश सरकार ने जब्त कर लिया था इसके पश्चात वे हिन्दी में 'प्रेमचंद' के नाम से लिखने लगे और उनका यह नाम कथा साहित्य में अहम हो गया। उनकी पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् 1916 ई में प्रकाशित हुई और अंतिम कहानी 'कफन' 1936 ई में। मुंशी प्रेमचंद जी ने अपने जीवन काल में लगभग 300 कहानियों की रचना की, जो 'मानसरेवर' के आठ भागों में प्रकाशित हुई हैं। हिन्दी कहानी में प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी कहानी की काया ही पलट गई। "प्रेमचंद का आविर्भाव हिन्दी कहानी साहित्य की एक अपूर्व घटना थी। उन्होंने सामाजिक मानव की सामान्य और विशिष्ट परिस्थितियों, मनोवृत्तियों और समस्याओं का अंकन कर हिन्दी कहानी को एक निश्चित यथार्थवादी दिशा और गति प्रदान की।" जयशंकर प्रसाद इस युग के दूसरे महान कहानीकार हैं। "ग्राम" इनकी सर्वप्रथम मैलिक कहानी है। इस युग में चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने "उसने कहा था", "सुखमय जीवन" और "बुद्ध का कांटा" जैसी कहानियाँ लिखीं। इन कहानियों के द्वारा गुलेरी जीने हिन्दी कहानी में अपना अलग स्थान बनाया। विश्वंभरनाथ शर्मा "कौशिक" तथा सुदर्शन ने प्रेमचंद से प्रभावित होकर कहानियाँ लिखी हैं तो चतुरसेन शास्त्री, राधाकृष्णदास तथा विनोद शंकर व्यास ने प्रसाद जी से प्रभावित होकर कहानियाँ लिखी। कौशिकजी ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी। प्रेमचंद युग के अन्य कहानीकारों में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', जैनेंद्रकुमार तथा अज्ञेय उल्लेखनीय हैं। जैनेंद्र मनोवैज्ञानिक कहानीकार हैं। इन पर गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव भी है। "अपना अपना भाग्य", "पत्नी", "हत्या", "खेल", "जाह्नवि", "पाजेब", "एकदिन" आदि जैनेंद्र की प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। अज्ञेय भी मनोवैज्ञानिक कहानीकार हैं। "रोज", "कडियाँ", "अमलवल्लरी", "मैन", "हार सिंगार" आदि उनकी बहु चर्चित कहानियाँ हैं। इस संदर्भ में डॉ. नगेंद्र का मंतव्य है "प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को महबूत नींव ही नहीं दी, उसे कलात्मक ऊंचाई भी प्रदान की। कौशिक, सुदर्शन, उग्र, राहुल आदि ने कहानी को सामाजिक पीडा की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनाया। जैनेंद्र और अज्ञेय ने मनोविश्लेषण को आधार बनाकर नवीन प्रयोग किए, जहाँ से हिन्दी कहानी की एक नवीन धारा का सूत्रपात हुआ। तात्पर्य यह कि इस युग में हिन्दी कहानी अपने विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं को पार कर वहाँ पहँची जहाँ से हमें इसके श्रेष्ठ रूप के दर्शन होने लगते हैं।

प्रेमचंदोत्तर युग में हिन्दी कहानी का बहुमुखी विकास हुआ है। इसी युग में भारत को आजादी मिली। जीवन तेज गति से बदलने लगा। इस परिवर्तन का प्रभाव कहानी पर भी पड़ा। वैसे तो कहानी इस काल की केंद्रीय विधा रही। अतः कहानी ने जीवन और जगत के विविध पक्षों को अपनी परिधि में समेटने का प्रयास किया। प्रेमचंदोत्तर युग के कहानीकारों में सब से ज्यादा उल्लेखनीय कहानीकार यशपाल और उपेंद्रनाथ 'अश्क' हैं। ये दोनों कहानीकार प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ानेवाले भी हैं। हिन्दी कहानी आंदोलनों में नई कहानी सब से प्रमुख आंदोलन है। यह आंदोलन सन् 1950 के आस-पास विकसित हुआ है। जीवन यथार्थ को नई कहानी एक विलक्षण ढंग से प्रस्तुत करती है। नई कहानी में भोगे हुए यथार्थ को अधिक महत्व दिया गया। सर्वप्रथम दुष्यंतकुमार ने 'कल्पना' पत्रिका में एक लेख में नई नाम से कहानी आंदोलन का नामकरण किया। "कहानी" पत्रिका ने भी इसमें अपना योगदान दिया। इसके संपादक भौरव प्रसाद गुप्त के संपादन में 1956 के नव-वर्षांक में इस आंदोलन को प्रतिष्ठा मिली। नई कहानी में यथार्थ के प्रति नया दृष्टिकोण रहा।नई कहानी के समर्थकों के लिए आधुनिकता प्रतिपल परिवर्तित जीवन की यथार्थता है। नई कहानी बड़े महत्वपूर्ण सामाजिक स्थाईत्व को स्वीकार करती है। नई कहानी अपने अपने

मनुष्य केंद्रित के कारण उसे मानव के व्यवहार क्षेत्र के रूप में ही देखती है। नई कहानी ने अपने संवेदनाओं को मानवीय संबंधों के क्षेत्र में संबंध रखा। इसमें आधुनिकता, महानगर बोध, अंचलिकता सभी का समोवेश है। नई कहानी पुरानी कहानी से अलग है। नई अपने परिवेश के प्रति अत्यंत संवेदनाशील है। नई कहानी में धर्म और ईश्वर का एक अलग ही संदर्भ मिल जाता है। इसी प्रकार परिवार और समाज स्त्री पुरुष संबंध और व्यक्तिगत कुंठा इन कहानीकारों में नया अर्थ लेकर आती है। इस संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं - "नई कहानी आंदोलन के दौरान इस बात पर अत्यधिक जोर दिया गया कि स्वानुभूत संवेदना या विचार ही 'प्रामाणिक' और कहानी का आधार बन सकते हैं। नई कहानी में मूल्यों एवं मान्यताओं में परिवर्तन के साथ-साथ विद्रोह भावना के लिए भी अभिव्यक्ति मिली है। महानगरीय जीवन तथा मध्यवर्गीय जीवन का बखूबी चित्रण किया गया। वातावरण सृष्टि की प्रधानता, पात्रों के नामों, वर्गों का सामान्यतया लोप पाया जाता है। भाषा में स्वाभाविकता, बिंबात्मकता, प्रतीकात्मक प्रयोग आदि नई कहानी की शिल्पगत विशेषताएँ हैं। कहानी की परंपरागत धारणाओं को अस्वीकार करके लिखी गई कहानी को 'अकहानी' का नाम दिया गया है। अकहानी के शीर्षक से श्याममोहन श्रीवात्सव तथा सुरेंद्र सन् 1970 के आस पास लिखी गई कहानी को समकालीन कहानी के नाम से जानी जाती है। 'समकालीन' शब्द अंग्रेजी के 'कांटेपररी' का समानार्थी है। इस शब्द को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढंग से व्याख्यायित करने की चेष्टा की। समकालीनता के संदर्भ में डॉ. नरेंद्र मोहन के विचार हैं "समकालीन एक ठहरी हुई गतिहीन और जड़ स्थिति नहीं है बल्कि ठहरात, गतिहीनता ऐतिहासिक प्रक्रिया और जड़ता को सख्ती और निर्ममता से जोड़ने वाली यह गतिमान ऐतिहासिक प्रक्रिया और चेतना है। समकालीन कहानी का अर्थ जो उस काल में लिसी गयी कहानियों से है जिनमें समय, समाज और जीवन की आत्मा तथा मानसिकता का संपूर्ण साक्षात्कार होता है। वास्तव में समकालीन कहानी का अनुशीलन अपने समय व समाज का अनुशीलन है।

समकालीन कहानी का क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह पुरानी कहानियों से भिन्न हैं। पुरानी कहानी में अलौकिक एवं प्राकृतिक तत्वों की प्रधानता पायी जाती है, किंतु समकालीन कहानी में लौकिक एवं जीवन यथार्थ का चित्रण होता है। समकालीन कहानी भावनात्मक संबंधों की अपेक्षा संबंधों की विसंगति, विडंबना, जटिलता, संघर्ष, तनाव, कुंठा, घुटन आदि का सजीव चित्रण करती नजर आती है। समकालीन महत्वपूर्ण कहानीकारों में संजीव, सृजय, स्वयंप्रकाश, अखिलेश, संजय खाती, उदय प्रकाश, शैलेंद्र सागर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जनवादी कहानी का व्यवस्थित आरंभ आठवें दशक से माना जाता है। वस्तुतः यह कहानी आंदोलन समूचे जनवादी आंदोलन से जुड़ा हुआ है। "सन् 1977 ई. में 'दिल्ली विश्व विद्यालय' में 'जनवादी विचारमंच' की स्थापना हुई।

सक्रिया कहानी आंदोलन के प्रवर्तक राकेश वत्स माने जाते है। इन्होंने 'मंच' नामक पत्रिका के द्वारा सक्रिया कहानी का सूत्रपात किया है। सक्रिय कहानी व्यक्तिवादी दानवीय प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल देती है। वह शोषण का विरोध करती है और साधारण आदमी के हित के लिए प्रयत्नशील है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संजीव एक जिंदादिल कथाकार हैं। उनकी जिंदादिली, प्रतिबद्धता हर कहानी में परिलक्षित होती है। इसी प्रतिबद्धता के कारण हिन्दी कहानी के विकास एवं कहानी कला के योगदान में श्री 'संजीव' का सुनिश्चित एवं प्रतिष्ठित स्थान है। कहानी की परंपरा अत्यंत प्राचीन होते हुए भी आज यह साहित्य की एक लोकप्रिय, सशक्त एवं जीवंत, विधा मानी जाती है। हिन्दी कहानी की विकास यात्रा हिन्दी गद्य के विकास साथ साथ आरंभ होती है। हिन्दी में कहानी विधा आधुनिक युग की देन है। कहानी की सृजन - प्रेरणा और रचना प्रक्रिया समय के साथ निरंतर बदलती और परिवर्तित होती रहती है। हिन्दी कहानी ने अपने अल्प समय में ही विकास से कई चरण तय किये हैं। यह हमेशा से संभावना भरी महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा विशेष के लिए रूढ़ हो गया है। कथ्य और शिल्प के धरातल पर भी यह विधा अत्यंत रोचक एवं प्रभावशाली बनी हुई है। इस के माध्यम से सम-सामयिक जीवन की कतिपय समस्याओं एवं प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

****

भारतीय ज्ञान परंपरा में अष्टांग योग के विविध आयाम

डॉ निकेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर,दर्शनशास्त्र विभाग एस एस वी कॉलेज, कहलगाँव।
तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, (बिहार)
ईमेल: nikesh2012@gmail.com

प्रस्तावना: भारतीय ज्ञान परंपरा में योग का स्थान अद्वितीय है। ज्ञान की इस परंपरा में योग को भारत की सबसे बड़ी देन के रूप में विश्व भर में स्वीकार किया जा रहा है। विश्व पटल पर बढ़ता हुआ योग भारतीय ज्ञान परंपरा की विजय है। निश्चित रूप से इसका श्रेय योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि को जाता है। उन्होंने योगसूत्र की रचना कर योग के आठ अंग अर्थात योग के आठ आयाम वाले अष्टांग योग के मार्ग से सम्पूर्ण विश्व को लाभान्वित किया है। अतः इस शोध-पत्र का उद्देश्य महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में वर्णित अष्टांग योग के आठ आयामों से परिचित होना है।

मुख्य शब्द: अष्टांग योग, चित्त, यम, नियम, आसान, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि, बहिरंग, अंतरंग।

महर्षि पतंजलि को योग दर्शन का प्रवर्त्तक माना जाता है। उन्होंने योग को 'चित्त की वृत्तियों के निरोध' (**योगः चित्तवृत्तिनिरोधः**)[1] के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने 'योगसूत्र' नाम से योगसूत्रों का एक संकलन किया जिसमें उन्होंने पूर्ण कल्याण तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शुद्धि के लिए अष्टांग योग (आठ अंगों वाले योग) का एक मार्ग विस्तार से बताया है। अष्टांग योग को आठ अलग-अलग चरणों वाला मार्ग नहीं समझना चाहिए; यह आठ आयामों वाला मार्ग है जिसमें आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है। इनके संबंध में महर्षि पतंजलि लिखते हैं-**यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।**[2] ये आठ अंग हैं: (1) यम, (2)नियम, (3)आसन, (4)प्राणायाम, (5)प्रत्याहार, (6)धारणा, (7) ध्यान, (8)समाधि। इन आठ अंगों के अनुष्ठान से अविद्या का नाश तथा यथार्थ ज्ञान का उदय होता है। जैसे-जैसे साधक योगाभ्यास में अग्रतार होता है वैसे-वैसे उसकी अविद्या क्षीण होती जाती है और प्रज्ञा प्रस्फुटित होती जाती है। योग की पूर्ण सिद्धि से विवेकख्याति की उत्पत्ति होती है। इन योगों का प्रयोजन है- विवेक ज्ञान की प्राप्ति एवं अशुद्धि तथा अविद्या का नाश। विवेक ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है।

महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग को दो भागों में बाँटा है – बहिरंग योग एवं अंतरंग योग। इसके अंतर्गत प्रथम पांच अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार) 'बहिरंग' और शेष तीन अंग (धारणा, ध्यान, समाधि) 'अंतरंग' नाम से प्रशिद्ध हैं। आठ अंगों का निम्नलिखित विश्लेषण हम क्रमशः उपस्थित कर रहे हैं:

1. यम – यम का अर्थ होता है- उपरम या अभाव। **अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्याउपरिग्रहा यमाः।**[3] अर्थात अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पांच यम कहलाते है। सभी यम धर्म के रक्षक है, परंतु जहाँ यम धर्म का विरोधी हो जाये वहाँ धर्म को प्रधानता दी जाती है। ये निम्नलिखित हैं -अहिंसा – मन, वाणी और कर्म से कभी भी किसी भी प्रकार के प्राणी को दःख नहीं देना अहिंसा है। दुसरे शब्दों में प्राणीमात्र से प्रेम अहिंसा है। विरोधी भाव – देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए की गई हिंसा भी अहिंसा है, क्योंकि वह धर्म की रक्षक है।
सत्य – इन्द्रियों और मन के द्वारा जो ज्ञान हो उसे वैसा का वैसा व्यक्त करना सत्य है। विरोधी भाव – लंगड़े को लंगड़ा कहना सत्य है, गूंगे को गूंगा कहना भी सत्य है, किन्तु अहिंसा का विरोधी होने से अधर्म है। अतः व्यर्थ का कटु सत्य कभी नहीं बोलनी चाहिए।
अस्तेय – दूसरों के विचारों, अधिकारों या वस्तुओं का अपहरण करना चोरी (स्तेय) है, इसके विपरीत अस्तेय है।
ब्रह्मचर्य – मन, वचन और कर्म से सभी अवस्थाओं में सभी प्रकार के मिथुनों का त्याग ब्रह्मचर्य है।
अपरिग्रह – व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए धन – संम्पति का संग्रह परिग्रह और इसके विपरीत इसके अभाव का नाम अपरिग्रह है।

2. नियम – शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।4 अर्थात शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह पांच नियम कहलाते है। सभी नियम आत्मा, मन और इन्द्रियों की स्वच्छता व पवित्रता के पोषक और शोधक है। ये पांच नियम हैं-
शौच – जल से बाहर के अंगो यथा हाथ, पैर आदि शारीरिक अंग को शुद्ध रखे, सत्य के पालन से मन को शुद्ध रखे, विद्या और तप से जीवात्मा का शुद्धिकरण करें, ज्ञान से बुद्धि का शुद्धिकरण करें। शौच स्वयं पवित्रता का प्रतीक है।
संतोष – अपने किये गये प्रयत्न के अनुसार जो फल मिले उसमें प्रसन्न रहना संतोष है। कहा भी गया है 'संतोषी सदा सुखी' जिसे अपने किये गये कर्म में संतोष तथा कर्मफल में विश्वास रहता है वह हमेशा सुखी रहता है। इसलिए आप जो भी करें ईश्वर का कार्य समझ कर करें जिससे आपको असंतोष ना हो।
तप – धर्म और कर्तव्य कर्म के लिए कष्ट सहन को तप कहते है। हमारा धर्म है कि आत्मा को अविद्या की राह से हटाकर विद्या के प्रकाशमय पथ का अनुसरण कराये। इसके निमित्त जो सर्दी – गर्मी, भूख – प्यास आदि कष्ट सहन किया जाता है, वह सभी तप की श्रेणी में आते है। तप संकल्प से किये जाते है, नकल से नहीं। अधिकांश लोग दूसरों का अनुकरण करके व्रत – उपवास आदि रखना शुरू कर देते है किन्तु यह मुर्खता है। आप जो भी तप का अभ्यास करों, उसके पीछे संकल्प होना चाहिए। आपके पास अपने तप का स्पष्ट कारण होना चाहिए कि आप ऐसा क्यों कर रहे है। कोई भी ऐसा तप ना करे, जिससे लाभ के बजाय हानि की सम्भावना अधिक हो। जैसे बहुत से लोग निर्जला एकादशी का व्रत करते है जो कि स्वास्थ्य की दृष्टि से एकदम अनुचित है। उपवास कोई भी क्यों ना हो, जल का तो भरपूर उपयोग होना चाहिए।
स्वाध्याय – स्वाध्याय के दो अर्थ लिए जाते है, पहला – स्वयं का अध्यनन करना और दूसरा सद्ग्रंथो का अध्यनन करना। जिस तरह हमें प्रतिदिन भोजन की आवश्यकता होती है उसी तरह आत्मा को भी प्रतिदिन स्वाध्याय रूपी भोजन की आवश्यकता होती है। स्वाध्याय स्वयं को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया का नाम है। आज का वातावरण बहुत ही कलुषित हो चूका है, तथा प्रतिदिन मार्गदर्शन प्रदान करने वाले गुरु का सुयोग आज के समय में संभव नहीं। इसलिए विद्वान मनुष्य को चाहिए कि सदग्रंथ को अपना मार्गदर्शक मानकर अपने जीवन को ईश्वरीय मार्ग के लिए प्रशिक्षित करें।
ईश्वर प्रणिधान – ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है कि जो भी करें, ईश्वर को समर्पित कर दें। इससे कर्ता होने का अहंकार नहीं होगा। ईश्वर को हर समय अपने साथ अनुभव करें।

3. आसन – आसन शब्द संस्कृत भाषा के अस धातु से बना है जिनका दो अर्थ है- बैठने का स्थान तथा दूसरा शारीरिक अवस्था। शरीर

मन और आत्मा जब एक संग और स्थिर हो जाता है, उससे जो सुख की अनुभूति होती है वह स्थिति आसन कहलाती है। तेजोबिन्दु उपनिषद में आसन के विषय में कहा है- सुखेनैव भवेत् यस्मिन्न जस्रं ब्रहमचिन्तम। अर्थात जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रहम का चिन्तन किया जा सके उसे ही आसन समझना चाहिए। योगसूत्र के अनुसार- **संतोषादनुत्तमसुखलाभ:।**[5] अर्थात – स्थिर और सुखे पूर्वक बैठना आसन कहलाता है। सुखपूर्वक बैठने की अवस्था का नाम आसन है। हठयोग में कई आसनों का वर्णन है जिनमें जो आसन साधना के लिए उपयुक्त है उनमें सुखासन, पद्मासन, वज्रासन, बद्ध – पद्मासन और सिद्धासन है। जब लम्बे समय तक योगी साधक को इन आसनों में बैठने का अभ्यास हो जाता है तो उसे आसन सिद्धि कहते है। इनके अतिरिक्त कई आसन हैं जो स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

4. प्राणायाम – प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है। प्राण + आयाम। 'प्राण' का अर्थ होता है- 'जीवन-शक्ति'। 'आयाम' के दो अर्थ हैं। पहला- नियन्त्रण करना या रोकना तथा दूसरा लम्बा या विस्तार करना। प्राणवायु का निरोध करना 'प्राणायाम' कहलाता है। योग सूत्र में प्राणायाम को इस प्रकार प्रतिपादित किया है – **तस्मिन् सति श्वासप्रश्वापसयोर्गतिविच्छेलद प्राणायाम:।**[6] अर्थात – उसकी (आसनों की) स्थिरता होने पर श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति के नियमन करना ''प्राणायाम है। प्राणवायु को भीतर लेना श्वास है, बाहर निकालना प्रश्वास है। जब इन दोनों की गति को विच्छेद किया जाता है तो इसे प्राणायाम कहते है। प्राणायाम का अविष्कार प्राण नाड़ियों के शुद्धिकरण के लिए किया गया है। इनके शुद्धिकरण के पश्चात् योगी का प्राण पर अधिकार हो जाता है। जब प्राण पर अधिकार हो जाता है तो वह प्राण को जहाँ चाहे लगा सकता है ।असल में प्राणायाम प्राणशक्ति है जिसके सही उपयोग के कई लाभ है।

5. प्रत्याहार – योग दर्शन में प्राणायाम के पश्चात प्रत्याहार का कथन एवं विवेचन उसकी उपयोगिता की दृष्टि से किया गया है। **स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्यस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार:।**[7] प्रत्याहार का सामान्य अर्थ होता है, पीछे हटना, उल्टा होना, विषयों से विमुख होना। इसमें इन्द्रिया अपने बहिर्मुख विषयों से अलग होकर अन्तर्मुख हो जाती है, इसलिए इसे प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियों के संयम को भी प्राणायाम कहते है। प्राण और चित्त दोनों एक दूसरे से बंधे हुए है। यदि मन नियंत्रण में हो जाये तो प्राण स्वतः नियंत्रण में आ जाता हैं। इसके विपरीत यदि प्राण नियंत्रण में आ जाये तो मन स्वतः नियंत्रण में हो जाता है। ''जहाँ चित्त वहाँ प्राण''-इस उक्ति के अनुसार मन और प्राण का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जब प्राणायाम करते – करते प्राण नियंत्रण में आ जाता है तो मन स्वतः नियंत्रण में आ जाता है। और जब मन नियंत्रण में आकर इन्द्रियों के बाहरी विषयों से अंतर्मुख होना है उसी अवस्था को प्रत्याहार कहते है।

6. धारणा – महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग के अन्तरंग यह योग का छठा अंग है। **देशवन्धप्चित्तस्थ धारणा।**[8] मन (चित्त) को एक विशेष स्थान पर स्थिर करने का नाम 'धारणा' है। यह वस्तुत: मन की स्थिरता का घोतक है। हमारे सामान्य दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के विचार आते जाते रहते है। दीर्घकाल तक स्थिर रूप से वे नहीं टिक पाते और मन की सामान्य एकाग्रता केवल अल्प समय के लिए ही अपनी पूर्णता में रहती है। इसके विपरीत धारणा में सम्पूर्णत: चित्त की एकाग्रता की पूर्णता रहती है। जब मन प्रत्याहार से अंतर्मुख होने लगता है तो उसे किसी ध्येय पर लगाया जाता है। प्रवृति से मन चंचल होने से ध्येय वस्तु पर टिकता नहीं है किन्तु बार – बार उसे ध्येय वस्तु पर लाया जाता है। ध्येय के निरंतर प्रवाह की इस प्रक्रिया को धारणा कहते है।

7. ध्यान – धारणा की उच्च अवस्था ध्यान है। ध्यान शब्द की उत्पत्ति ध्येचित्तायाम् धातु से होती है जिसका अर्थ होता है- चिन्तन करना। किन्तु यहाँ पर ध्यान का अर्थ चिन्तन करना नहीं अपितु चिन्तन का एकाग्रीकरण अर्थात् चित्त को एक ही लक्ष्य पर स्थिर करना है। **तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम्।**[9]

सामान्यत: ईश्वर या परमात्मा में ही अपना मनोनियोग इस प्रकार करना कि केवल उसमें ही साधक निगमन हो और किसी अन्य विषय की ओर उसकी वृत्ति आकर्षित न हो 'ध्यान' कहलाता है। योग शास्त्रो के अनुसार जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाये उसी में चित्त का एकाग्र से जाना अर्थात् केवल ध्येय मात्र में एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी दूसरी वृत्ति का नहीं उठना 'ध्यान' कहलाता है। जब निरंतर धारणा के अभ्यास से मन की प्रवृति किसी वस्तु पर लम्बे समय तक ठहरने लगे तो ध्येय के उस सतत प्रवाह को ध्यान कहते है। इसमें ध्येय और ध्याता का अंतर बना रहता है।

8. समाधि – अष्टांग योग में समाधि का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। साधना की यह चरम अवस्था है, जिसमें समाधि स्वयं योगी का बाह्य जगत् के साथ संबंध टूट जाता है। यह योग की एक ऐसी दशा है, जिसमें योगी चरमोत्कर्ष की प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। और यही योग साधना का लक्ष्य है। अत: मोक्ष्य प्राप्ति से पूर्व योगी को समाधि की अवस्था से गुजरना पड़ता है। योग शास्त्र में समाधि को मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन बताया गया है, योग भाष्य में संभवतः इसलिए योग को समाधि कहा गया है। यथा ''योग: समाधि'' पातंजलि योगसूत्र में चित्त की वृतियो के निरोध को योग कहा गया है। समाधि अवस्था में भी योगी की समस्त प्रकार की चित्त वृत्तियॉ निरूद्ध हो जाती है। महर्षि पतंजलि ने समाधि का स्वरूप निम्न प्रकार से बताया है- **तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यनमिव समाधि:।**[10] अर्थात् – जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीती होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वह (ध्यान ही) समाधि हो जाता है। अतः जब ध्येय और ध्याता का अंतर समाप्त होकर केवल ध्येय रह जाये तो उस अवस्था को समाधि कहते है। समाधी की दो श्रेणियाँ होती है- सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधि का मतलब वितर्क, विचार, आनंद से है जबकि, असम्प्रज्ञात में सात्विक, राजस और तमस सभी प्रकार की वृतियों की रोकधाम हो जाती है।

उपरोक्त अष्टांग मार्ग के अनुपालन से मनुष्य के चित्त की वृतियों का निरोध होता है और मनुष्य में एकाग्रता आती है। मन स्थिर और शांत हो जाता है।

****

संदर्भ सूची:

पातंजल योग सूत्र, 1/2
वहीं, 2/29
वहीं, 2/30
वहीं, 2/32
वहीं, 2/42
वहीं, 2/49
वहीं 2/54
वहीं 3/1
वहीं 3/2
वहीं 3/3

विभूति नारायण राय के उपन्यासों में यथार्थपरकता

डॉ. सत्य प्रकाश पाण्डेय
सहायक आचार्य (हिंदी)
के. पी. उच्च शिक्षा संस्थान झलवा, इलाहाबाद (उ.प्र.)
ईमेल - sppandeya340@gmail.com

आधुनिक साहित्य अपने वैचारिक भाव बोध और मानवीयता के विशेष संदर्भों के कारण कल्पना की परलौकिकता से परे हटकर यथार्थ की इहलौकिकता को केंद्र में रखता है। इसी संदर्भ में समकालीन साहित्य भी है। वर्तमान में समकालीन साहित्य का आशय 90 के बाद के समय के साहित्य से है। अपने समय से साक्षात्कार कराने वाली रचना ही समकालीन साहित्य है। रचनाकार अपने आलोचनात्मक दृष्टि से समाज में निहित विसंगतियों एवं अंतर्विरोधों का पड़ताल करता है और उसे रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है। इस संदर्भ में कथा आलोचक शंभु कहते हैं- ‘‘समकालीनता न केवल एक विषय वस्तु या थीम है बल्कि इसमें रचनात्मक रूप देने वाली एक दृष्टि भी है। ‘‘समकालीनता अपने समय में रहते हुए उसके साथ-साथ चलते हुए उसमें आगे जाती है। काल या समय की अपनी एक सीमा का सामर्थ्य होती है। अपना एक तात्कालिक यथार्थ होता है। एक लेखक जब इस तत्काल्वाद को लांघकर आने वाले समय की सच्ची और सही और संभावित तस्वीर उकेरने लगता है, दरअसल तभी वह समकालीन कहलाए जाने योग्य होता है।’’ समकालीनता के संदर्भ में शंभु गुप्त का यह कथन कथाकार विभूति नारायण राय के ऊपर बहुत ही सटीक बैठता है। 1981 में 'घर' उपन्यास से साहित्य की दुनिया में विधिवत कदम रखने वाले विभूति जी ने अपने समय का यथार्थपरक सृजन उपन्यास के रूप में किया है। यद्यपि विभूति जी इसके पहले भी छिटफुट रूप में व्यंग्य एवं छात्र जीवन में कविताएं लिखते थे लेकिन साहित्यिक दुनिया में कोई पहचान नहीं था। विभूति नारायण राय ने जब लिखना शुरू किया तो वह संक्रमण का दौर था। इस दौर में कथ्य एवं शिल्प दोनों में बदलाव शुरू हो गया था। एक तरफ जहाँ साहित्य में अति यथार्थ के प्रति मोह था तो वहीं दूसरी ओर इससे मुक्त होने की बेचैनी भी थी। अतीत का अति यथार्थ और वर्तमान का कल्पना और यथार्थ का मिश्रण एक नए तरह के कथ्य और शिल्प को गढ़ रहा था।

इस दौर में उदय प्रकाश, संजय, विनोद कुमार शुक्ल, मनोहर श्याम जोशी के कथा साहित्य में बदलाव की पृष्टभूमि दिखती है। बाद के कहानीकारों ने इस बदलाव को अपने साहित्य नए ढंग से दर्ज किया। विभूति नारायण राय इसी संक्रमण काल के उपन्यासकार हैं जिन्होंने यथार्थ की जड़ता को तोड़ते हुए एक नए फ़लक पर यथार्थवादी साहित्य रचा। जनवादी दृष्टिकोण और संवेदनात्मक अनुभूति के कारण राय साहब ने उपन्यासों में अपने समय और समाज को वास्तविक रूप में चित्रित किया है। सर्वेश जैन ने विभूति नारायण राय के साहित्य पर लिखते हुए एक शीर्षक लिखती हैं- ‘‘विभूति नारायण राय अर्थात गत तीस वर्षों का भारतीय इतिहास’’ इस शीर्षक से ही स्पष्ट है कि विभूति जी ने जो साहित्य रचा है उसमें भारतीय जीवन का विगत तीस वर्षों का यथार्थ है। यह यथार्थ की भाव भूमि बदलते एवं नए बनते सामाजिक, राजनीतिक यथार्थ को बयां करते हैं। विभूति नारायण राय ने अब तक कुल पाँच उपन्यास 'घर' (1981), 'शहर में कर्फ्यू' (1986), ‘किस्सा लोकतंत्र'(1993), ' तबादला' (2001), 'प्रेम की भूतकथा' (2010) है। पहला उपन्यास ‘घर’ और अभी तक का अंतिम उपन्यास 'प्रेम की भूत कथा' को छोड़कर शेष उपन्यासों की पृष्टभूमि में एक तरह की साम्यता 1986 में प्रकाशित 'शहर में कर्फ्यू' इनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास के प्रसिद्धि को इसी बात से समझा जा सकता है कि यह लगभग सभी भारतीय भाषाओं एवं भारत के बाहर भी अन्य भाषाओं में भी अनुदित हो चुका है । विभूति जी ने यह उपन्यास पुलिस महकमे में उच्च अधिकारी रहते हुए सांप्रदायिक दंगों में पुलिसिया कार्यवाही किस तरह से होती है और दंगों के संदर्भ में पुलिस की स्थिति, पुलिस का सांप्रदायिकता के खिलाफ किसी विशेष तरह का प्रशिक्षण न होना और किसी खास धर्म के प्रति घृणा के भाव को बहुत सी महीन मानवीय पक्षों के साथ चित्रित किया है। इस उपन्यास के संदर्भ में लेखक की आत्म स्वीकारोक्ति है कि- “शहर में कर्फ्यू लिखना मेरे लिए एक त्रासदी से गुजरने जैसा था। उन दिनों मैं इलाहाबाद में नियुक्त था और शहर का पुराना हिस्सा दंगों की चपेट में था। हर दूसरे तीसरे साल होने वाले दंगों से यह दंगा मेरे लिए कुछ था। इस बार हिंसा और दरिंदगी अखबारी पन्नों से निकलकर मेरे अनुभव संसार का हिस्सा बनने जा रही थी - एक ऐसा हिस्सा जो अगले कई सालों तक दु:स्वप्न की तरह मेरा पीछा नहीं छोड़ने वाला था। मुझे लगा कि इस दु:स्वप्न से मुक्ति का सिर्फ एक उपाय है इन अनुभवों को लिख डाला जाय।” विभूति जी के इस वक्तव्य से उनकी रचना प्रक्रिया को समझना आसान हो जाता है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों से विषय वैविध्यता खूब है। एक ही उपन्यास में कहने का ढंग भी भिन्न भिन्न है। यथार्थ को चित्रित करने में कोई दुहराव नजर नहीं आता। 'शहर में कर्फ्यू' उपन्यास के केंद्र में सांप्रदायिकता की मानसिकता, राजनीति के लिए सांप्रदायिक ध्रुवीकरण, किसी खास संप्रदाय का विरोध, पुलिस का चरित्र आदि मन:स्थितियों में व्यक्तियों के अलग-अलग व्यवहार का रेखांकन है। इलाहाबाद शहर के मुस्लिम बाहुल्य हिस्से में दंगे भड़कने के बाद कर्फ्यू लगने एवं गरीब मजदूर मुस्लिम परिवारों में भूखमरी की स्थिति, मौत का स्याह सन्नाटे की बहुत ही मार्मिक अंकन है। इस सन्नाटे को पुलिस की गाड़ियाँ तोड़ती हैं। आजादी के समय से ही दंगे इस देश का अनिवार्य हिस्सा बन गया था। आजादी के समय से ही दंगे नेताओं के राजनीतिक स्वार्थ और उनके दांव पेंच पर टिकती थी। जिसे अंग्रेजों ने भी समय-समय हवा दी। सांप्रदायिकता के संदर्भ में जवाहर लाल नेहरू 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया में लिखते हैं- “भारत के अल्पसंख्यक यूरोप के अल्पसंख्यकों की भांति नस्ली या राष्ट्रीय अल्पसंख्यक नहीं हैं, ये धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। नस्ली तौर पर भारत एक मिश्रित प्रजातियों का देश है पर यहाँ नस्ल को लेकर कभी कोई प्रश्न नहीं उठे।’’
राजनीति ने यहाँ धार्मिक अलगाव को सांप्रदायिक अलगाव में बदल दिया और दंगों के सारे आरोप मुस्लिमों पर थोप दिया। इस संदर्भ में लेखन का कहना है कि दंगे चाहे जो शुरू करता हो लेकिन मरते उसमें सबसे अधिक मुस्लिम ही हैं। सांप्रदायिकता के संदर्भ हमारे बीच यह भ्रम बरकरार है सांप्रदायिक दंगों की शुरूआत मुस्लिम करते हैं। इस भ्रम को लेखन ने थोड़ा है और उपन्यास का यथार्थ परक तथ्यों से कथा यात्रा को तय किया है। इस संदर्भ में आलोचक शंभु लिखते हैं- “यह उपन्यास बड़ी

ताकत के साथ हमारे इस भ्रम और हिन्दू-फासिस्टों के इस षड्यंत्रपूर्ण दुष्प्रचार को तोड़ता है कि इस देश में मुसलमान ज्यादा आक्रामक हैं और दंगे वही भड़काते हैं।"

यह एक ऐसी धारणा है जिसका कोई आधार नहीं है। सारे आंकड़ें इसके विरुद्ध जाते हैं फिर यह धारणा बनी हुई है। बात-बात में मुस्लिम समुदाय को पाकिस्तान भेजने या चले जाने की धमकियाँ दी जाती है। जबकि धर्म के नाम पर एक अलग देश की मांग आम मुसलमानों ने की थी। कुछ राजनेताओं के लिए ही सत्ता सबसे बड़ी चीज थी। यही कारण था कि पाकिस्तान बनने के बाद भी बड़ी संख्या में मुसलमान वहां जाने के लिए तैयार नहीं हुए। इस संदर्भ में रिजवान कैसर का यह कथन विचारणीय है- "1946 के चुनावों में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तानी एजेंडे को मुसलमानों के लिए हर मर्ज की दवा के रूप में प्रायोजित किया था जिसने उन्हें वोट देने वाले उन मुसलमानों का समर्थन दिला दिया जो औसतन 15 प्रतिशत थे जबकि 11 प्रतिशत ने ही मुस्लिम लीग को वोट दिया। ऐतिहासिक सन्दर्भों में बात करें तो मुसलमानों के एक बटे दसवें हिस्से, वह भी ज्यादातर उच्च वर्ग की राय मुसलमानों पर थोप दी गई और उसे पूरे समुदाय का सामूहिक निर्णय बताया गया।" अधिक समर्थन न होने के बावजूद भी पाकिस्तान का निर्माण हुआ और भारत में मुसलमान शक के रूप देखे जाने लगे। शक और भय ने भारत के दो बड़े समुदाय के भीतर एक दूसरे के प्रति वैमनस्य बढ़ता चला गया। धार्मिक भिन्नता ने नस्लीय भिन्नता का रूप ले लिया । इसके फलस्वरूप सरकारी मिशनरी जिसे संवैधानिक मूल्यों की रक्षा के लिए काम करना होता है वह भी बहुसंख्यकवाद की शिकार हो गई और सांप्रदायिक दंगों में संवैधानिक मूल्यों की रक्षा न कर किसी खास समुदाय की तरफदारी करती नजर आने लगी।

लेखक विभूति नारायण राय ने वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के रूप में इलाहाबाद में में दंगों को जैसा देखा, महसूस किया उसे यथार्थ रूप में उपन्यास के रूप में सृजित किया। यह उपन्यास आँखों देखी रिपोर्ट की तरह लगता है। शायद इसलिए इस उपन्यास को विजेंद्र नारायण सिंह ने रिपोर्ताज शैली का उपन्यास कहा है। 'शहर में कर्फ्यू' यथार्थ का अतिरेक नहीं है बल्कि यथार्थ के चरम को कथा में व्यक्त किया है। साईदा के मार्फत गरीबी, भूखमरी, बेबसी, लाचारी का जो चित्रण लेखन ने किया है वह अन्यत्र मिलना मुश्किल है। सईदा की बीमार बच्ची दवा के अभाव में मर जाती है, साईदा उसे अस्पताल भी नहीं ले जा पाती। यह कथ्य तमाम निम्न वर्गीय, गरीब और वंचित मुस्लिम लोगों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत होती है जिन पर सांप्रदायिकता का कहर सबसे अधिक टूटता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दंगों में ऐसे ही लोग सबसे ज्यादा यातना के शिकार होते हैं।

'किस्सा लोकतंत्र' लोकतंत्र के पतन की कथा है। जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन की व्यवस्था अब चंद घरानों की व्यवस्था हो गई है। भाई-भतीजावाद, जातिवाद, सत्ता सुख की शिकार हो गई है। संसदीय राजनीति में अपराधियों का बोलबाला हो गया है। आज राजनीति में अपराधी, माफिया और दलालों के गठजोड़ में परिणत हो गया है। इस उपन्यास के केंद्र में लोकतंत्र का अपराधीकरण मुख्य रूप से है। इस उपन्यास की कथा की शुरुआत पुलिस के द्वारा अपराधी तत्वों के पनपने से होती है और अंत इन अपराधियों के माफिया तत्वों के गठजोड़ द्वारा एक इतर सत्ता तंत्र को विकसित करने के साथ होता है। वर्तमान में राजनीतिक मूल्य का जो ह्रास हुआ है अपराधी, राजनेता एवं सरकारी तंत्र का जिस तरीके से गठजोड़ है उसका यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। यह उपन्यास वर्तमान राजनीति के चेहरे से पर्दा हटाता है जो अपराधियों द्वारा संचालित होता है।

इस उपन्यास का अंतर्वस्तु लोकतंत्र का अपराधीकरण है। उपन्यास का नायक पीपी (प्रेमपाल यादव) है जो अपने इलाके का कुख्यात अपराधी है। शराब एवं भू माफिया के रूप में यह अपराधी राजनीति में कदम रखता है। इसे उस समय के राजनेताओं का साथ मिलता है जिसके लिए इसने पहले चंदा देता था और उनके लिए काम करता था। इस उपन्यास में लेखक ने फ्लैश बैक शैली का सहारा लेते हुए पीपी के अतीत के साथ कथा को विस्तार देता है। कथा आलोचक इस उपन्यास में फ्लैश बैक शैली के संदर्भ में कहते हैं कि- "राय पी. पी. की किशोरावस्था के प्रसंगों का सविस्तार विवरण प्रस्तुत कराते हुए उस मनोवैज्ञानिक आधार को समझा देते हैं जो व्यवहार का नियमन करते हैं। यह उपन्यास लोकतंत्र के अपराधीकरण को बेपर्दा करता है।

'किस्सा लोकतंत्र' की तरह ही 'तबादला' भी सामान्य किस्म का उपन्यास है। इसे 'किस्सा लोकतंत्र' का विस्तार भी कहा जा सकता है। जिस जन विरोधी भ्रष्ट सत्ता की चर्चा वहां हुई है उसी का और अधिक विद्रूप यहाँ प्रस्तुत किया गया है। भ्रष्टाचार, कार्य संस्कृति के पतन की बानगी के तौर पर इसमें कार्यालय के वातावरण का चित्रण किया गया है।

'तबादला' 2001 में प्रकाशित विभूति जी का चौथा उपन्यास है। इसके केंद्र में भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार लोकतंत्र को घुन के माफिक चाट जाता है। इलाहाबाद में 12 वर्षों में एक बार लगाने वाले कुम्भ मेले को लेकर सरकारी तंत्र में जो भ्रष्टाचार व्याप्त है उसकी कथा कहता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस उपन्यास में तबादला उद्योग और भ्रष्टाचार की कथा है। अधिशासी अभियंता कमलाकांत और दूसरे अधिशासी अभियंता बटुकचंद उपाध्याय का तबादला सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार की कहानी कहता है। कमलाकांत बर्मा के तबादले और उनके

स्थान पर बटुकचंद्र उपाध्याय अधिशासी अभियंता के पद स्थापित होने, तत्पश्चात कमलाकांत बर्मा के उसी पद पर पुनः स्थानांतरण होने और एक बार फिर बटुक चंद उपाध्याय के उन्हीं दांव पेचों का इस्तेमाल करके कमलाकांत वर्मा को हटाकर अपनी पुरानी जगह पर आ जाने का वर्णन है। इस तरह तबादला करवाने और रुकवाने के लिए दोनों अधिशासी अभियंता तरह-तरह के हथकंडे अपनाते हैं। पैसे देकर अपना तबादला करवाते हैं और फिर पैसे देकर तबादला रुकवाते हैं। तबादले के माध्यम से भ्रष्टाचार की लूट किस तरह मची हुई है और जनता का पैसा किस तरह से लूट की भेट चढ़ जाता है, इसका चित्रण इस उपन्यास में बखूबी हुआ है। भ्रष्टाचार की जो कार्य संस्कृति सरकारी दफ्तरों में व्याप्त है यह उपन्यास उसकी एक बानगी प्रस्तुत करता है।

विभूति नारायण राय के रचनाओं के पात्र किसी काल्पनिक दुनिया से नहीं होते हैं, बल्कि हमारे आस-पास के घर-परिवार व जीवन के हिस्से लगते हैं। राय के पात्र अपने संपूर्ण अस्तित्व के साथ कथा पटल पर उपस्थित होते हैं। इन पत्रों की भूमिका एक पक्षीय नहीं होती है वरन बहुआयामी जीवन चरित्रों के साथ प्रस्तुत होते हैं। इनके तीन उपन्यास 'शहर में कर्फ्यू', 'किस्सा लोकतंत्र' और 'तबादला' की पृष्टभूमि में लोकतंत्र है। लोकतंत्र का अपहरण किस तरह से राजनेता, अपराधी और प्रशासन के आला अधिकारी मिलकर करते हैं उपन्यासों की केंद्रीय अंतर्वस्तु है।

****

संदर्भ :-

1. सिंह, पुष्पपाल,(2015). समकालीन हिन्दी कहानी: युगबोध का संदर्भ.
2. राय, विभूति नारायण. (2003). शहर में कर्फ्यू, भूमिका से, इलाहाबाद : इतिहास बोध प्रकाशन.
3. गुप्त, शंभु और जैन सर्वेश . (2012). अनहद गरजै. दिल्ली: शिल्पायन प्रकाशन.
4. नेहरू, जवाहरलाल.(198). डिस्कवरी ऑफ इंडिया, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. सिंह, विजेंद्र नारायण एवं सिंह, कृष्णकुमार. (2015). इलाहाबाद: साहित्य भंडार.
6. यादव, राजेन्द्र. (अगस्त, 2003). हंस अक्षर प्रकाशन: दिल्ली.

फादर कामिल बुल्के का हिंदी साहित्य में योगदान

सौरभ शुभम
(पीएचडी स्कॉलर)
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

फादर कामिल बुल्के (1909–1982) हिंदी साहित्य के क्षेत्र में सबसे प्रतिष्ठित नामों में से एक हैं, जिन्हें अक्सर अंतरसांस्कृतिक समझ और विद्वता का प्रतीक माना जाता है। एक बेल्जियन जेसुइट पादरी, जिन्होंने अपना जीवन भारत को समर्पित किया, बुल्के ने न केवल हिंदी भाषा में महारत हासिल की बल्कि इसके प्रमुख समर्थकों में से एक बन गए। उनकी यात्रा केवल उनकी भाषाई विशेषज्ञता की गहराई के लिए ही नहीं, बल्कि हिंदी साहित्य के सांस्कृतिक और बौद्धिक ताने-बाने में उनके योगदान के लिए भी उल्लेखनीय है। बुल्के का कार्य इस बात का शानदार उदाहरण है कि कैसे विभिन्न सांस्कृतिक और भाषाई पृष्ठभूमि से आने वाले व्यक्ति किसी भाषा और उसके साहित्यिक परंपराओं में गहरा योगदान दे सकते हैं। उनके कार्यों में अनुवाद, शब्दकोश निर्माण, और विद्वतापूर्ण विश्लेषण शामिल हैं, विशेष रूप से धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर। उनकी प्रमुख कृति, राम कथा: उत्पत्ति और विकास, हिंदू धार्मिक अध्ययन का एक आधारभूत ग्रंथ मानी जाती है और रामायण की व्याख्याओं को गहराई से प्रभावित करती है। यह लेख बुल्के के जीवन, हिंदी के प्रति उनके प्रेम, और हिंदी साहित्य एवं भारतीय बौद्धिक धरोहर को समृद्ध बनाने के उनके प्रमुख योगदानों पर प्रकाश डालता है।

हिंदी और शैक्षणिक उपलब्धियों में प्रवीणता-

विदेशी होते हुए भी, बुल्के ने हिंदी भाषा में असाधारण निपुणता प्राप्त की, चाहे वह बोलने में हो या लिखने में। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी साहित्य का गहन अध्ययन किया, जहां उन्होंने रामायण पर अपने अद्वितीय शोध के लिए डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। उनकी डॉक्टरेट थीसिस, "राम कथा: उत्पत्ति और विकास", में रामायण की उत्पत्ति, विकास और विभिन्न संस्कृतियों और भाषाओं में इसके विविध अर्थों का विश्लेषण किया गया। यह कार्य भारतीय महाकाव्यों और उनकी सांस्कृतिक महत्ता के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण योगदान बना हुआ है।

बुल्के की जटिल भारतीय ग्रंथों की सटीक और संवेदनशील व्याख्या करने की क्षमता ने भारतीय विद्वानों के बीच उन्हें व्यापक प्रशंसा दिलाई। संस्कृत में उनकी दक्षता ने हिंदू शास्त्रों और दार्शनिक परंपराओं की उनकी समझ को और अधिक समृद्ध किया, जिससे वे इन ग्रंथों का मूल रूप में अध्ययन कर सके।राम कथा: प्रारंभ और विकास फादर द्वारा किए गए अध्ययन "राम कथा: प्रारंभ और विकास" में रामायण की गहरी और विस्तृत जांच की गई है। इस विद्वतापूर्ण अध्ययन में, उन्होंने रामायण की कथा के ऐतिहासिक, सामाजिक और शैक्षिक विकास का विश्लेषण किया है। फादर ने रामायण के विभिन्न संस्करणों की तुलना की है, जिसमें वाल्मीकि द्वारा रचित प्रारंभिक संस्कृत पाठ के साथ-साथ तमिल, तेलुगु, बांग्ला, ओडिया, मलयालम और अन्य भाषाओं में क्षेत्रीय संस्करणों को भी शामिल किया है। उनका शोध यह स्पष्ट करता है कि रामायण केवल एक धार्मिक पाठ नहीं है; यह एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और सामाजिक धरोहर बन चुकी है, जो भारत और दक्षिण एशिया के विभिन्न समुदायों को प्रभावित करती है। बुल्के ने यह भी अध्ययन

किया है कि रामायण की कथा को प्राचीन कथाओं, नृत्य-नाटकों और पारंपरिक गीतों के माध्यम से कैसे आगे बढ़ाया गया है। इस शोध में तुलसीदास के रामचरितमानस और कंबन के कंब रामायण जैसे कार्यों का महत्व भी उजागर किया गया है। इसके अलावा, , बुल्के ने रामायण पर विदेशी शैक्षिक परंपराओं के प्रभाव का भी विश्लेषण किया है, और दिखाया है कि इसका प्रभाव न केवल भारतीय उपमहाद्वीप में, बल्कि दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों जैसे इंडोनेशिया, थाईलैंड और कंबोडिया में भी महत्वपूर्ण है। बुल्के का शोध धार्मिक व्याख्याओं से परे जाता है, और रामायण को महत्वपूर्ण मानवीय मूल्यों जैसे न्याय, धर्म, वफादारी और सहानुभूति का प्रतीक मानते हुए प्रस्तुत करता है। उन्होंने यह भी रेखांकित किया है कि कैसे इस महाकाव्य ने भारतीय कला, संगीत और रंगमंच को आकार दिया है। यह अध्ययन भारतीय शैक्षिक अनुसंधान के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ के रूप में कार्य करता है और रामायण के वैश्विक महत्व पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। बुल्के का कार्य यह सिद्ध करता है कि रामायण केवल एक कथा नहीं है, बल्कि एक सामाजिक और नैतिक धरोहर है जो समय और
भौगोलिक सीमाओं से परे है।बुल्के का इंग्लिश-हिंदी शब्दकोश द्विभाषी शब्दकोशविज्ञान में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और यह भाषा और संस्कृति के संरक्षण और समझ में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उन्हें अपने अनुसंधान की गंभीरता और गहराई के लिए जाना जाता है। बुल्के, एक बेल्जियन जेसुइट पादरी, भाषाविद और विद्वान, ने हिंदी और इसकी बोलियों का अध्ययन करने में कई वर्ष समर्पित किए। उनका कार्य उन अंग्रेजी बोलने वालों के लिए महत्वपूर्ण जानकारी का स्रोत है जो हिंदी सीखना या उपयोग करना चाहते हैं। संस्कृति और भाषा के आदान-प्रदान में भूमिका बुल्के के शब्दकोश की एक खासियत यह है कि यह अंग्रेजी और हिंदी जैसी दो अलग- अलग संस्कृतियों के बीच एक सेतु का काम करता है। हिंदी, जिसे दुनियाभर में लाखों लोग बोलते हैं, एक समृद्ध सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपरा से जुड़ी हुई है, जिसकी जटिलताओं को अंग्रेजी बोलने वालों के लिए समझना कठिन हो सकता है।
1949 में, रांची के सेंट जेवियर कॉलेज में संस्कृत और हिंदी विभाग के प्रमुख के रूप मेंकार्यभार संभाला। हालांकि, शुरुआती समस्याओं के कारण उन्होंने प्रोफेसर बनने की बजायएक विद्वान के रूप में अपने करियर पर अधिक ध्यान केंद्रित किया। उन्हें 17वीं सदी के हिंदीकवि तुलसीदास में गहरी रुचि थी, जिनकी रचनाओं पर उन्होंने अपनी डॉक्टोरल थीसिस लिखी। बुल्के ने प्रसिद्ध नाटक ब्लू बर्ड को हिंदी में रूपांतरित किया और उसे नील पंची के नाम से प्रस्तुत किया। उन्हें तुलसीदास और उनके भक्ति रचनाओं पर बोलने के लिए अक्सर आमंत्रित किया जाता था, और वह इस कार्य को बहुत उत्साह के साथ करते थे। अपने कार्यों के माध्यम से उन्होंने लोगों को उनके आध्यात्मिक धरोहरों के गहरे मूल्यों से जोड़ा, और उनकामानना था कि तुलसीदास का साहित्य सुसमाचार की शिक्षाओं के लिए एक बेहतरीन परिचय है। 1951 में, उन्होंने भारतीय नागरिकता प्राप्त की और भारत सरकार द्वारा उन्हें हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय आयोग का सदस्य बनाया गया। बिहार में
रहते हुए उन्होंने दरभंगा के चर्च का दौरा किया और "दिव्यात्माओं और माता सीता की महान भूमि – मिथिला" की सराहना की, और भारतीय नागरिकता प्राप्त करने के बाद उन्होंने "बिहारी" नाम अपनाया। , बुल्के का निधन 17 अगस्त 1982 को दिल्ली में गैंगरीन के कारण हुआ।
बुल्के का हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण योगदान- एक नया दृष्टिकोण
बुल्के का हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण योगदान उनके अनुवादक और शब्दकोशकार के रूप मे कार्य था। उनका मानना था कि अनुवाद एक शक्तिशाली उपकरण है जो सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा देता है और साहित्यिक धरोहरों को एक व्यापक दर्शक वर्ग के लिए सुलभ बनाता है। बुल्के का हिंदी-इंग्लिश शब्दकोश, "अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश", छात्रों, शोधकर्ताओं और
लेखकों के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन बन गया। इसकी स्पष्टता, व्यापकता और सटीकता ने इसे दशकों तक एक भरोसेमंद संदर्भ बना दिया। यह शब्दकोश उनकी भाषाई सटीकता और दोनों भाषाओं की गहरी समझ का प्रतीक है। अपने शब्दकोशीय कार्य के अतिरिक्त, बुल्के ने कई ईसाई ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया, जिनमें बाइबिल भी शामिल है। उनके अनुवाद सांस्कृतिक और भाषाई सूक्ष्मताओं के प्रति संवेदनशील थे, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि पाठ भारतीय पाठकों के साथ गूंजे और उनका मूल अर्थ बरकरार रहे।

हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में समर्थन-

बुल्के हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में समर्थन देने के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने हिंदी को भारत के विविध भाषाई परिप्रेक्ष्य में एक एकता की ताकत के रूप में देखा और इसके अपनाने और विकास को सक्रिय रूप से बढ़ावा दिया। उनके प्रयास उस व्यापक आंदोलन के साथ मेल खाते थे जो हिंदी को एक संपर्क भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए था, जो क्षेत्रीय विभाजन को पाट सके और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दे सके। सेंट जेवियर्स कॉलेज, रांची में हिंदी के प्रोफेसर के रूप में, बुल्के ने अनगिनत छात्रों को मार्गदर्शन दिया और उन्हें भाषा के प्रति अपनी दीवानगी से प्रेरित किया। उनकी शिक्षा हिंदी साहित्य की सांस्कृतिक और दार्शनिक समृद्धि पर आधारित थी, जिससे छात्रों को इसकी भूमिका को समझने और भारत की पहचान को आकार देने में इसके महत्व को सराहने के लिए प्रेरित किया।

आध्यात्मिक और अंतरधार्मिक जुड़ाव-बुल्के का हिंदी साहित्य से जुड़ाव उनके आध्यात्मिक खोज और अंतरधार्मिक संवाद के प्रति प्रतिबद्धता में गहरे रूप से निहित था। उनका मानना था कि साहित्य सार्वभौमिक सत्य की खोज करने और विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच आपसी सम्मान को बढ़ावा देने का एक माध्यम हो सकता है। उनकी रचनाएँ अक्सर ईसाई और भारतीय दार्शनिक विचारों का एक सामंजस्यपूर्ण मिश्रण प्रस्तुत करती थीं, जो करुणा, विनम्रता और सत्य की खोज जैसे साझा मूल्यों पर बल देती थीं। भारतीय महाकाव्यों और शास्त्रों के साथ जुड़कर, बुल्के ने यह दिखाया कि कैसे आध्यात्मिकपरंपराएँ एक-दसरे को समृद्ध और पूरक बना सकती हैं।

विरासत और प्रभाव -फादेर बुल्के का हिंदी साहित्य में योगदान भारतीय बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन पर एक अमिट छाप छोड़ गया है। उन्हें एक विद्वान, शिक्षक और सांस्कृतिक दूत के रूप में याद किया जाता है, जिन्होंने हिंदी और भारतीय परंपराओं के प्रति अपनी प्रेमभावना केमाध्यम से पूर्व और पश्चिम के बीच पुल का काम किया। बुल्के का कार्य हिंदी साहित्य के शोधकर्ताओं और छात्रों, साथ ही अंतरसांस्कृतिक अध्ययन में रुचि रखने वालों को प्रेरित करता है। उनका जीवन भाषा की परिवर्तनकारी शक्ति और साहित्यिक शोध के स्थायी महत्व का प्रतीक है, जो समझ और एकता को बढ़ावा देने में सहायक हैI

****

हिंदी साहित्य में समरसता

शशि प्रकाश पाठक
शोधार्थी, हिंदी विभाग
बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर केंद्रीय विश्वविद्यालय लखनऊ
ईमेल--shashiqwer177@gmail.com मो. नं-- 7905394161

काल के प्रवाह में विचलन स्वाभाविक है। आज हमें समता, समानता ,समरसता और अधिकारों की बात करनी पड़ रही है। सुधारों की बात करनी पड़ रही है, क्योंकि विचलन ने हमें उन मूल्यों से विरत कर दिया, जहां एक आदमी को ईश्वर बन जाने की स्वतंत्रता थी। आदमी का मनुष्य बनना और फिर देवत्व की तरफ बढ़ना साधारण नहीं है। उसके मूल्यनिष्ठ होते जाते की मुनादी है, घोषणा है। ऋषि कहते हैं-'मर्नु भवः' यानि मनुष्य बनो। यही बात बाद में गालिब के मुंह से निकलती है -

यूं तो मुश्किल है हर काम का आसां होना
आदमी को मयस्सर नहीं इंसा होना।

यानि जन्म से आप 'आदमी' हो सकते हैं किंतु 'मनुष्य' या 'इंसान' एक प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही आप बनते हैं।वेदों में कहा गया है _'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या' अर्थात् भूमि मेरी माता है और हम सभी उसके पुत्र हैं। आदिकाल से ही पृथ्वी को मातृभूमि की संज्ञा दी गई है। भारत के राष्ट्र जीवन का आधार सदा आध्यात्मिकता रहा है। सर्वजन में एक ही तत्व को देखने वाली यह संस्कृति बेजोड़ हैं। इस संस्कृति के समाज विकास में हरेक का अपना महत्व लक्षित है। इसी विश्वास के आधार पर यहां युगानुकुल समाज रचना का विकास हुआ। समता, ममता और समरसता हमारे भारतीय लोकजीवन का अभिन्न अंग है। हम जिस देश में रहते हैं उसके ऋषि कहते हैं- 'सर्वभूतहिते रताः।' प्रकृति से साथ हमारा संवाद बहुत पुराना है। इसलिए हमने अपनी समूची सृष्टि को स्वीकारा। किसी को विरोधी नहीं माना। पेड़,पहाड़, नदियां, समुद्र, वनस्पतियां, जलचर,नभचर, जीव-जंतु, मनुष्य सबमें ईश्वर का वास मानने वाले हम ही हैं। हम ही कह पाए जो जड़ में है वही चेतन में है। कण-कण में ईश्वर का वास मानने वाली संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है। सामाजिक समरसता, समानता व सामासिकता, न्याय और बंधुत्व आदियुग से मानव की आकांक्षा रहे हैं । आज भी उनके लिए मनुष्य हिंसक- अहिंसक तरीकों से जूझता रहता है, बावजूद इसके आज भी वे समाज के लिए स्वप्न ही बने हुए हैं।विश्व-भर के साहित्य को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि सभी महान साहित्यकारों के साहित्य में उनके अपने समय का समाज प्रतिबिम्बित होता है। साहित्य एक ऐसा महत्त्वपूर्ण साधन है जिसमें समाज विशेष की प्रगति तथा पतन की मनोस्थिति सभी कुछ देखी जा सकती है। जिन्सवर्ग के अनुसार -"समाज व्यक्तियों का वह समूह है जो किन्ही सम्बन्धों या तरीकों द्वारा संगठित है और जो कि उन्हें उन दूसरे लोगों से अलग करता है जो इन सम्बन्धों में शामिल नहीं होते अथवा जो उनसे व्यवहार में भिन्न हों।" हिंदी साहित्य की भी आधारभूमि तत्कालीन मानव समाज ही है। इनके गद्य व पद्य में मानव और समाज का चित्रण पूर्ण रूप से रचनात्मक और कलात्मक भाषा में हुआ है।

साहित्य में भी समानता और न्याय की अभिव्यंजना सनातन से ही रही है। हर युग में, हर भाषा के साहित्य ने इन्हें संवेदना के केंद्र में रखा है। हिंदी साहित्य के आरंभिक काल में ही हम इसकी गंभीर अभिव्यंजना को देख पाते हैं। हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति की प्रकृति सामासिक रही है, क्योंकि यहां कई बोलियां, उपबोलियां और क्षेत्रीय विशेषताएं समरस हुई हैं। वैविध्य और समरसता ही इस सांस्कृतिक विकास प्रक्रिया का मूलकेंद्र हैं। हिंदी साहित्य का आदिकालीन साहित्य इसी सामासिक समरूपता के आरंभिक दौर का उत्कृष्ट उदाहरण हैं । डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ' हिंदी साहित्य और संवेदना के विकास' में कहते हैं -'वस्तुत: किसी साहित्य के आरंभ की पहचान वहां से की जा सकती है जहां वह धार्मिक कर्मकांड और रहस्य भावना से क्रमशः उन्मुक्त हो रहा हो।

इस दृष्टि से हिंदी में सिद्धो- नाथों से लेकर कबीरदास तक यह प्रक्रिया देखी जा सकती हैं। वैदिक साहित्य में एक ओर, और नाथ-सिद्धों की बानियों में दूसरी ओर, धर्म और साहित्य एक दूसरे में घुले-मिले दिखाई देते हैं। सिद्धों-नाथों के युग से निकल कर हिंदी संतों में साहित्य का प्रथम उन्मीलन उत्तर में दिखाई देता है, जिसका प्रतिरूप दकनी में पुरानी खड़ी बोली का सूफ़ी साहित्य है। संतो के यहां या तो रहस्यानुभूति के गूढ़ स्वर हैं,या फिर नए व्यवहारिक जगत में प्रवेश करने पर हिंदू- मुस्लिम और ऊंच-नीच के विद्वेष को मिटाने का यत्न है,जो विरोधों के शमन का बड़ा गहरा रचनात्मक उपक्रम है।'

जाहिर है कि यह असांप्रदायिक सामासिकता आदिकाल के मूल में है। राहुल सांकृत्यायन जी के अनुसार हिंदी परंपरा के पहले कवि सिद्ध सरहपा जी -भोग में निर्वाण और काया में तीर्थ देखते है। चंद और विद्यापति क्रमशः वीर और श्रृंगार तथा भक्ति और श्रृंगार को समरस करते हैं। नाथ परम्परा राजाओं को योगी बनाती चलती है चटपटनाथ की सबदी है 'तांबा-तुंबा ये दुई सूचा! राजा ही तैं जोगी ऊंचा।' यह सामासिकता जैन कवियों में कम दिखाई पड़ती है क्योंकि वे अधिकतर धार्मिक रहे हैं। इस संदर्भ में भारतीय साहित्य के भक्ति परम्परा के प्रमुख स्तंभों में से एक मैथिली के सर्वोपरि कवि विद्यापति का उल्लेख गंभीरतापूर्वक किया जा सकता है। इन्हें वैष्णव और शैव भक्ति के सेतु के रूप में भी स्वीकार किया गया है। मिथिला के लोगों को 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' का पाठ पढाके जन चेतना को उभारा है।

उधर दूसरी तरफ अमीर ख़ुसरो जी के रचनाकर्म से यह आभाष होता है कि हिंदी साहित्य का चरित्र आरम्भ से ही एकदम असांप्रदायिक रहा है। हिंदू मुस्लिम का जहां सीधा द्वंद चित्रित किया है वहां भी वह वीरों का युद्ध रूप में ही आता है। उनके कृतित्व में किसी एक पक्ष के प्रति घृणा भाव नहीं है। साहित्य और संगीत की जरूरतें भी खुसरो के यहां घुल-मिल सी गई हैं।

भारतीय जीवन में एक काल ऐसा आया जब भारतीय उपमहाद्वीप पर इस्लाम के कट्टर अनुयायियों का आक्रमण हुआ और भारत की सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था में उथल-पुथल हो गयी।काल-प्रवाह में हमारी एकात्म भावना, सामाजिक समरसता में आततायियों के प्रहारों की धुल जम गयी। तब भारतीय संत परम्परा ने पुनः इसे जीवतं करने का कार्य किया काल के प्रवाह में उत्पन्न मनुष्य–मनुष्य के मध्य भेदभाव को मिटा कर समरस सामाज स्थापना का प्रयास किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में – "इस्लाम के प्रवेश ने धर्मगत एवं समाज व्यवस्था को पुरी तरह से झकझोर दिया था। उस समय भक्त कवियों की भक्ति ने दो रूपों में आत्म प्रकाश किया। एक सगुण साधना, दूसरी निर्गुण साधना। पहली साधना ने हिन्दू जाति की बाह्याचार एवं शुष्कता

को आन्तरिक प्रेम में सींचकर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को दूर करने का प्रयत्न किया।"इसे काल खंड में अनेक प्रकार के सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तन के कारण समाज में विघटन और विभाजन ने जोर पकड़ा, इसी से जातियों औ उपजातियों की संख्या में वृद्धि हो गई। संत कवियों ने जन–जन में छुपे एकात्म भाव को जगाने का प्रयास किया,लोक साहित्य की रचना की। सन्त साहित्य का उद्देश्य "लोक" में फैले अविश्वास, अनास्था एवं कुरीतियों को दुर करना था। संतो ने मानवीय भावनाओं को उजागर करने का कार्य किया। भारतीय जीवन में निहित सद्भावना, समरसता को पुनः स्थापित करने का महती प्रयास किया।

संत नामदेव दर्जी जाति के थे। इन्होंने सभी प्राणियों के अंदर एक ही आत्मा का दर्शन किया और सामाज में जाति – पाँति से ऊपर उठ समरस सामाज निर्माण की प्रेरणा दी वे कहते हैं :

सर्वभूतों में हरि यही एक सत्य।
सर्व नारायण देखते हरि।।

अर्थात 'सभी जीवों में ईश्वर ही सत्य हैं। प्रभु सभी को देख रहे हैं। संत शिरोमणि कबीरदास ने जन्म से ऊँच–नीच माने जाने वाली परम्परा पर पुर-जोर प्रहार किया और इसका उपहास भी उड़ाया। सभी मनुष्यों के जन्म की विधी एक ही हैं, चाहे वे किसी भी वर्ण के क्यों न हों। एक ही रक्त एवं शरीर के अंग सब एक ही समान हैं। एक ही बूँद से समस्त मानव सृष्टि की गई हैं, फिर ब्राह्मण और शुद्र का अंतर कैसा? कहते है-

एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।
एक बूँद से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा ।।

मानवतावाद के पक्षधर कबीर जी कहते हैं कि भगवान की दृष्टि में सब बराबर हैं न कोई छोटा हैं न कोई बड़ा हैं। उनकी दृष्टि में भगवान की भक्ति में जाति की आवश्यकता नहींहैं। भक्ति में मुल्लाओं और पंडितों की आवश्यकता नहीं हैं कहते है -

जो मोहि जाने तोहि मैं जानौं।
लोक वेद का कहा न मानौं।।

रैदास एक चर्मकार परिवार में जन्म पाकर अपनी आध्यात्मिक–साधना, चरित्रबल तथा विनयशील स्वभाव के कारण ईश्वरभक्ति का व्यापक साहित्य लिखा, किंतु अपने परिवारिक कार्य को लेकर कोई ग्लानि नहीं थी। वे लिखते हैं—

"जाति एक जाने एक ही चिन्हा,
देह अवमन कोई नही भिन्ना।
कर्म प्रधान ऋषि-मुनि गांवें,
यथा कर्मफल तैसाँहि पावें।
जीव कै जाती वरन कुल नांहि,
जाती भेद है जग मूरखाई।
नीति-समृति-शास्त्र सब गावें,
जाती भेद शउ मूढ़ बतावें।"

अर्थात् 'जीव की कोई जाति नहीं होती' वे ऋषि मुनियों की वाणी बताते हुए कहते हैं जब सबमें प्रभु है तो जाति भेद कैसा। सूरदास की भक्ति पद्धति में ऊँच – नीच का भेद नहीं हैं। उनका मानना है कि भगवान् के दरबार में जाति नहीं पूछी जाती :

'जाति–पाति कोई पूछत नाहीं श्री पति के दरबार।'

स्वयं श्री वल्लभाचार्य तथा भक्ति मार्ग के अन्य आचार्यों ने भी इनमें ऊँच-नीच का भेद नहीं माना। भक्त सूरदास ने ईश्वरभक्ति में कोई भेद मानने से स्पष्ट मना कर दिया। 'सूरसागर के प्रथम स्कंध में वे कहते हैं:

'जाति पांति कुल-कानि न मानत, वेद पुराननि साखै।'

सामाजिक समरसता के पुरोधा गोस्वामी तुलसीदास ने अपने साहित्य में सामाजिक समरसता के लिए कई प्रयास किए: तुलसीदास ने रामचरितमानस के ज़रिए समाज में टूटन और जड़झरहट को दूर करने की कोशिश की,उन्होंने राम की कथा के ज़रिए राजनीतिक, सामाजिक, और पारिवारिक आदर्शों को स्थापित किया। तुलसीदास ने राम और शिव में परस्पर भक्तिभाव चित्रित करके वैष्णवों और शैवों में विरोध को खत्म करने की कोशिश की।तुलसीदास ने समाज में समरसता लाने के लिए समन्वयवात्मक दृष्टिकोण अपनाया। इन्होंने समाज में मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करते हुए समाज में दैहिक, दैविक, और भौतिक किसी भी प्रकार के कष्टों को खत्म करने की कल्पना की।

तुलसीदास ने वर्णाश्रम आधारित समाज को आदर्श समाज बताते हुए,भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप संयुक्त परिवार को अधिक महत्व दिया।तुलसीदास ने राम के चरित्र में शील, शक्ति, और सौंदर्य को विकसित करके लोकसंग्रह की साधना की।

इसी प्रकार गुरुनानक, जायसी एवं अन्य संत कवियों ने अपने मन – वचन–कर्म से भारतीय सामाज को समता ममता व एकत्व के सूत्र में बांधकर समरस समाज निर्माण की व्यापक चेष्टा करते दिखाई देते हैं।

साहित्य किसी भी समाज का आईना होता है। साहित्य के आलोक से समाज में चेतना का संचरण होता है। उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी को हिंदी साहित्य के सांस्कृतिक एवं समाज निर्माण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी के साहित्यकारों ने स्वतंत्रता के साथ-साथ समाज सुधार को संघर्ष का विषय बनाया। मध्यकालीन भारतीय समाज की रूढ़िवादिता,संकीर्णता,अंधविश्वासी चेतना को पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के आलोक में झकझोर कर जगाने का कार्य इस दौर के विद्वानों और साहित्यकारों ने किया।भारतेन्दु ने सामाजिक दोषों, रूढ़ियों, कुरीतियों का घोर विरोध किया है ।उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले ढोंग की पोल खोल दी है। छुआछूत के प्रचार के प्रति क्षोभ के स्वर उनकी रचनाओं में सहज ही दिखाई पड़ते हैं।भारतेन्दु ने 'भारत-दर्दशा' नाटक में वर्णाश्रम धर्म की संकीर्णता का इन शब्दों में विरोध करते हुए कहते हैं "बहुत हमने फैलाए धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म।"तो वहीं प्रतापनारायण मिश्र जी की दृष्टि 'मन की लहर' में बाल-विधवाओं की करुण दशा की ओर गई है 'कौन करेजो नहि कसकत सुनि विपति बालविधवन की।' मिश्र जी स्त्रियों की शिक्षा के पक्षपाती हैं, बाल-विवाह के विरोधी तथा विधवाओं के दुख से दु:खी है।

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। कभी कभी साहित्यकार या लेखक शोषित वर्ग से इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहां उद्धृत करना उचित रहेगा..."जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त है,उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।" प्रेमचंद का किसान - मजदूर चित्रण उस पीड़ा और संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है जिनसे होकर आज भी अविकसित एवं शोषित वर्ग गुजर रहा है।

साहित्य की महती भूमिका होती है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ मानवीय अवयवों को उद्घाटित करता है। साहित्य, समाज की उन्नति के साथ भविष्य का पथ-प्रदर्शक है। हिंदी साहित्य समाज की उन्नति में अमीर ख़ुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेंदु,निराला नागार्जुन तक की श्रृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्ण योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानियां उठाकर भी इन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ़ जाकर समाज निर्माण हेतु कदम उठाएं। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के रचनाकारों ने अपने समय से आगे की रचना की। यह उनकी दूरदृष्टि ही कही जा सकती है कि उन्होंने भविष्य की

परिस्थितियों को पहले भांप लिया था और उस समय ही हिंदू-मुस्लिम,जातिगत एकता व बंधुत्व पर अपनी रचना की। अपने रचनाकर्म के माध्यम से जनसामान्य को जागरूक करने का प्रयास करते हुए समता,ममता व समरसता की बात करते हैं। सामाजिक असंतुलन के आज के विभ्रमकारी दौर में हमें इन साहित्यकारों के रचनाओ को फिर से पढ़ने की जरूरत है क्योंकि इसमें सामाजिक समरसता, समानता ,न्याय और सामासिकता की एक अदभुत छटा निखर कर आती है जो हिंदी साहित्य की सच्ची प्रस्तावना है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ,पटना,1952
2. बलदेव उपाध्याय, *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति*, शारदा संस्थान, वाराणसी,1969
3. कृष्ण चंद्र,*भारतीय संस्कृति*,सुरभारती प्रकाशन, दिल्ली,1992
4. गोपाल कृष्ण, *भारत की संत परंपरा और सामाजिक समर*सता, मध्य प्रदेश ग्रन्थ अकादमी,2015
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन,2013
6. डॉ रामधारी सिंह दिनकर,*संस्कृत के चार अध्याय*, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली,1946
7. शिव कुमार मिश्र,*भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य,* लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली
8. शंभूनाथ (सं.), *जातिवाद और रंगभेद*, वाणी प्रकाशन,1990
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

'श्रृंखला की कड़ियां'निबंध में नारी चेतना

अंजली कुमारी
शोध छात्रा हिंदी विभाग
केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश मो.7018930339

शोध सारांश- भारतीय समाज में स्त्री को सामान्य मानव के बजाय त्याग एवं बलिदान की मूर्ति और देवतुल्य व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया जाता रहा है। स्त्री से एक पुत्री, बहन,पत्नी या किसी अन्य रूप में सदैव अपेक्षा की जाती है कि वह अपने अधिकारों और इच्छाओं की बलि देकर समझौता करे।'श्रृंखला की कड़ियां' निबंध में महादेवी वर्मा ने स्त्रियों के होते आ रहे अन्याय शोषण और विभिन्न परिस्थितियों को आधार बनाकर नारी चेतना संबंधी अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। उनके निबंध में विद्रोह पूर्ण स्वर में समाज में व्याप्त रूढ़िवादी मानसिकता का विरोध किया है जो समाज के ठेकेदारों के असंवेदनशील शोषण वृत्ति का परिणाम है।पुरुष प्रधान समाज में नारी से संबंधित सामाजिक विषमता, शिक्षा की कमी के कारण नारियों में अपने अधिकारों के प्रति अज्ञानता,लोकलाज , स्त्रीत्व के नाम पर नारी का मानसिक और शारीरिक शोषण ,आरक्षण के नाम छलावा, लेडीज़ फर्स्ट आदि ऐसे विषय है जिन पर लेखिका का ध्यान आज से नौ दशक पूर्व केंद्रित हुआ। इसलिए लेखिका ने अपने साहित्य के माध्यम से नारी चेतना का जो आह्वान किया वह आज भी समस्त नारी जाति के लिए अनुकरणीय है।

बीच शब्द - लोकलाज ,अज्ञानता, उत्तराधिकार, अस्तित्व, मानसिकता, भारत, नवजागरण।

प्रस्तावना - हिंदी साहित्य की छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा द्वारा सन 1931ईस्वी में प्रकाशित "श्रृंखला की कड़ियां" निबंध संग्रह में भारतीय समाज में स्त्री विमर्श ,समाज का नारी के प्रति दृष्टिकोण, नारी चेतना और विमर्श और मानवीय संबंधों के विश्लेषण को प्रस्तुत किया है जो उनके गहन आत्मिक अनुभूति का परिचायक है। इतिहास साक्षी है कि सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक ,आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों से नारी जीवन में कई तरह के उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। परिस्थितिया बदलने के साथ शासन व्यवस्था ने नारी की जीवन शैली में भी बदलाव लाने का प्रयास किया है जिसके परिणामस्वरूप आज नारी का अस्तित्व भी बदला है। 21वीं शताब्दी में नारी विमर्श साहित्यकारों की लेखनी और चर्चा के केंद्र में है। परंतु अधिकतर साहित्यकारों ने बिना किसी आंदोलन के नारी उत्पीड़न और चेतना को अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।महादेवी वर्मा ने जीवंत नारियों के संघर्ष ,सुख दुख,आशा निराशा आदि मनोभावों का साक्षात्कार उन्हें अपने अंतःकरण से किया है। उनका कहना था" संसार परिवर्तनशील है ,यहां बड़े-बड़े साम्राज्य बह गए, संस्कृतियां लुप्त हो गई ,जातियां मिट गई,रीति रिवाज़ बदल गए, रूढ़ियां टूट गई ।सब कुछ बदल गया पर स्त्रियों की दशा नहीं बदली है।"[1] लेखिका के जीवन काल में जिन स्त्रियों के साथ संपर्क हुआ उनकी दारुण व्यथा का प्रत्यक्ष अनुभव किया और पुरुष प्रधान समाज में स्त्री विरोधी मानसिकता ने उन्हें व्यथित किया। भारतीय नारी जीवन भर विषम परिस्थितियों का सामना करती हुई स्वयं को समर्पण करने पर भी समाज में उपेक्षित रही। महादेवी वर्मा लिखती है कि "मैं भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों को अनेक दृष्टि बिंदुओं से देखने का प्रयास किया है। अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूँ अतः इन निबंधों

में उग्रता की गंध स्वाभाविक है ,परंतु ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धांत में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा। मैं तो सृजन के उन प्रकाश तत्वों के प्रति निष्ठावान हूं जिनकी उपस्थिति में विकृति अंधकार के समान विलीन हो जाती है। उन्होंने नारी चेतना के संदर्भ में पुनः उल्लेख किया है कि भारतीय नारी भी जिस दिन अपने संपूर्ण प्राणप्रवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं ।उसके अधिकारों के संबंध में यह सत्य है कि वह भिक्षावृत्ति से न मिले हैं न मिलेंगे।"[2] जिस समाज में विसंगतियां, रूढ़िवादी परंपराओं ,मानसिक विकृतियों का सामना करने में जितनी अधिक ऊर्जा सक्रिय होती है ।वह समाज उतना ही चेतना युक्त होता है। चेतना के संदर्भ में रत्नाकर पाण्डेय लिखते हैं"चेतना सामाजिक वातावरण से विकसित होती है, वातावरण के प्रभाव से व्यक्ति नैतिकता और उचित व्यवहारिकता प्राप्त करता है ।चेतना और मनुष्य के सामाजिक चरित्र में मौलिक संबंध है क्योंकि मनुष्य केवल चेतना से उत्पन्न प्रेरणा के कारण ही कोई भी कार्य करता है ।चेतना वह एक विशेष गुण है जो मनुष्य को जीवित बनाती है और चरित्र वह सामाजिक संगठन है, जिसके द्वारा वास्तविकता व्यक्त होती है और जीवन के विभिन्न कार्य चलते रहते हैं ।किसी मनुष्य की चेतना उसकी व्यक्तिगत संपत्ति न होकर सामाजिक उपक्रम का परिणाम होती है।"[3] लेखिका के मन में यह प्रश्न बार-बार कौंधता है कि स्त्री के मातृत्व को महिमा मंडित करने वाला तथा यत्र नार्यस्तु पूज्यंते तत्र रमंते देवता आदि शब्दों के छलावे में भ्रमित करने वाला समाज नारी के प्रति संवेदनहीनता और मानवीयता की सारी सीमाएं कैसे लग सकता है? स्त्री विमर्श की इस यात्रा में जब लेखिका का जब नारी की इस विषाक्त यात्रा से साक्षात्कार होता है तो नारी चेतना के असंख्य प्रश्न अपने आप उभरने लगते हैं। "नारीत्व का अभिशाप" नामक निबंध में महादेवी वर्मा लिखती हैं कि " क्या नारी के बड़े से बड़े त्याग को, आत्म निवेदन को, संसार ने अपना अधिकार नहीं किंतु उसका अद्भुत दान समझकर नम्रता से स्वीकार किया है ?कम से कम इतिहास तो नहीं बताता कि उसके किसी बलिदान को पुरुष ने उसकी दुर्बलता की अतिरिक्त कुछ और समझने का प्रयत्न किया।"4 प्राचीन समय में अधिकतर समाज में स्त्री की आर्थिक निर्भरता ने पुरुष स्त्री के संबंधों को मालिक और दासी के संबंधों के रूप में परिभाषित किया है। समाज में संपत्ति का उत्तरदायित्व मिलने से पुरुष को एक प्रकार का उत्तराधिकार तो मिल गया था ।शारीरिक शक्ति अधिक होने तथा सामाजिक नियमों का निर्माता होने के कारण अधिकार मिलना भी स्वाभाविक था। इस प्रकार भारतीय समाज में एक पुत्री, बहन ,पत्नी, माता आदि का अस्तित्व होने के साथ -साथ नारी सदैव आर्थिक निर्भरता दृष्टि से परामुखोपेक्षिणी रही है। इसके अतिरिक्त भारतीय समाज में नारी को सहचरी, अर्धांगिनी , पत्नी जैसे असंख्य दर्जा प्राप्त हुआ है ,लेकिन वास्तविक रूप में वह आज भी पुरुष के समान दर्जा प्राप्त न कर सकी।"समय की गति के अनुसार न बदलने वाली परिस्थितियों ने स्त्री के हृदय में जिस विद्रोह का अंकुर जम जाने दिया है उसे बढ़ने का अवकाश यहीं घर बाहर की समस्या दे रही है। जब तक समाज का इतना आवश्यक अंग अपनी स्थिति से असंतुष्ट तथा अपने कर्तव्य से विरक्त है, तब तक प्रयत्न करने पर हम अपने सामाजिक जीवन में सामंजस्य नहीं ला सकते। केवल स्त्री के दृष्टिकोण से ही नहीं, वरन् हमारे सामूहिक विकास के लिए यह भी आवश्यक होता जा रहा है कि स्त्री घर की सीमा के बाहर भी अपना विशेष कार्य क्षेत्र चुनने को स्वतंत्र हो।"5 इस प्रकार लेखिका ने "श्रृंखला की कड़ियां" निबंध संग्रह में सदियों से चली आ रही स्त्रियों की अस्तित्व को पुनर्स्थापित कर नारी चेतना का संदेश दे कर मुख्य धारा के साथ जोड़ने का प्रयास किया है।

यद्यपि आधुनिक नारी का संघर्ष पुरुष से नहीं अपितु समाज में व्याप्त रूढ़िवादी मानसिकता से है ।आज की नारी न पुरुष की छाया बनकर जीना चाहती है और न ही वह गुलामी सा जीवन व्यतीत करना चाहती है ।जिस प्रकार पुरुष को घर, परिवार, समाज में जो स्थान प्राप्त है, आधुनिक नारी भी प्रत्येक क्षेत्र में समानता का दर्जा प्राप्त करना चाहती है।" जीवन के विकास के लिए दूसरों से सहायता लेना बुरा नहीं ,परंतु किसी को सहायता दे सकने की क्षमता न रखना अभिशाप है ।सहयात्री वे कहे जाते हैं जो साथ चलते हैं, कोई अपने बोझ को सहयात्री कह कर अपना उपहास नहीं कर सकता। भारतीय पुरुष ने स्त्री को या तो सुख के साधन के रूप में पाया या भार रूप में ,फलता वह उसे सहयोगी का आदर न दे सका।"[6]

भारतीय समाज में विषम अर्थ विभाजन भी नारी शोषण का मूल कारण रहा है। पुरुष प्रधान समाज में अपने स्वामित्व के लाभ से उसे परावलंबी भी बना दिया है, जिसके परिणाम स्वरूप समाज में नारी की स्थिति द्वंद ग्रस्त रही है जिसके परिणाम स्वरुप भारतीय नारी समाज में सदैव हाशिए पर रही है । लेखिका के लिए यह चिंता का विषय है कि आज भी व्यवस्थापकों द्वारा आरक्षण रूपी शब्दों में छली जा रही है ।इसलिए प्रतिभाशाली शिक्षित स्त्रिया अपनी प्रतिभा से परिवार और समाज में सामंजस्य स्थापित कर इस छलावे से मुक्ति पा सकती है। इस संदर्भ में लेखिका को यह कहने में कोई संकोच नहीं कि"स्त्रियों के उज्जवल भविष्य को अपेक्षा रहेगी कि उसके घर और बाहर में ऐसा सामंजस्य स्थापित हो सके, जो उसके कर्तव्य को केवल घर या केवल बाहर ही सीमित न कर दें। ऐसी सामंजस्यपूर्ण स्थिति के उत्पन्न होने में अभी समय लगेगा और संभव है यह मध्य का समय हमारी क्रमागत सामाजिक व्यवस्था को कुछ डांवाडोल भी कर दे, परंतु निराशा को जन्म देने वाले कारण नहीं उत्पन्न होने चाहिए।"[7]

किसी भी युग में नवीन चेतना, नवजागरण, आंदोलन सामान्यतः सामाजिक समस्याओं एवं रूढ़िवादी परंपराओं को लेकर किए गए हैं ।भारत जैसे धार्मिक सांस्कृतिक देश में स्त्रियों से संबंधित समस्याओं के नए रूप में उत्पन्न होते रहे हैं ,जैसे दहेज प्रथा, अनमेल विवाह,बलात्कार, कन्या भ्रूण हत्या,आर्थिक एवं सामाजिक विषमता को लेकर पूरे देश में चलाए जा रहे आंदोलन नारी चेतना का जीता जागता प्रमाण हैं। सिमोन की पुस्तक"दि सेकंड सेक्स"उस घुटन भरी स्त्री के हजारों वर्षों की परिस्थिति का जीता जागता दस्तावेज है ,जिसमें उसका मनचाहे रूप में पुरुष ने शोषण किया है। इसलिए सिमोन स्त्री और नीग्रो की तुलना करती है। समाज जड़ नहीं चेतन है। यह चेतना ही समझ में बदलाव लाती है। जो समाज समय के साथ नहीं बदलते, वे ऊर्जाहीन हो जाते हैं।"[8] महादेवी वर्मा के लिए नारी शोषण की कड़वी सच्चाई को आत्मसात करना अत्यंत दुष्कर है। वह समाज में माता-पिता का अपनी ही पुत्री के प्रति पालन पोषण, शिक्षा , विवाह,उत्तराधिकारी से संबंधित दृष्टिकोण को लेकर लेखिका के हृदय में टीस उत्पन्न करती है। इसके लिए वह दृष्टिकोण और परिस्थितियों को दोष देती है।"यदि हम शताब्दियों से केवल सिद्धांतों का निर्जीव भार लिए हुए शिथिल हो रहे हैं तो हमारा और हमारी परिस्थितियों का दोष है।"[9] पितृ सत्तात्मक समाज में पुरुष यह कैसे भूल जाता है कि नई आज भी आज्ञाकारिणी पुत्री, बहन ,पतिव्रता पत्नी और त्यागमयी माता होने के साथ एक मनुष्य भी है। "स्त्री किस प्रकार अपने हृदय को चूर चूर कर पत्थर की देव प्रतिमा बन सकती है, यह देखना हो तो हिंदू गृहस्थ की दुधमुँही बालिका से शापमयी युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए जो किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए अपने हृदय की ,हृदय के सामान् इच्छाएं

कुचल कुचल कर निर्मूल कर देती है ,सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को आमानुषिक यंत्रणाओं के सहने का अभ्यस्त बना लेती है।"10 भारतीय परिवेश में नारी का व्यक्तित्व कर्तव्यों , रूढ़िवादी परंपराओं , सामाजिक मान्यताओं के बंधन में बंधे रहने के कारण नारी चेतना का विकास नहीं हुआ ।उन्हें बचपन से इस प्रकार की शिक्षा दी गई कि उसे अपने परिवार की मान्यताओं, परंपराओं ,आदर्शों को ही अपने जीवन में स्वीकार करना है ।जिसके परिणाम स्वरूप स्त्री सब कुछ सहन करने के लिए तैयार रही मानो सहनशीलता ही उसका आभूषण है। वास्तव में नारी ही परिवार का मूल केंद्र है ,जहां उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। भविष्य में उसे किस प्रकार उत्तरदायित्व एवं समस्याओं का सामना करना पड़ेगा यह उसे परिवार के रूढ़िवादी सांचे में ही समझाया जाता है। इसलिए भारतीय समाज में नारियों को अपने अधिकारों के विशाल फलक से अलग रखा जाता है ताकि उनकी महत्वाकांक्षाएं फलीभूत नहीं हो सके ।ऐसी स्थिति में नारी के अस्तित्व का मैं कुंठित होकर रह जाता है। स्त्री पुरुष की प्रकृति में अंतर होने के परिणाम स्वरूप पुरुष ने स्त्री को अपने साथ कभी संघर्ष होने ही नहीं दिया, अन्यथा आज मानव जाति की अलग कहानी हमारे सामने होती है। नई चेतना अपनी पहचान एवं नारी अस्मिता का बोध कराती है और अपने अपनी अस्तित्व बनाने की प्रेरणा भी देती है। चेतना नारी को विभिन्न परिस्थितियों को समझने की समझ भी देती है जिससे वह अपने हित और अहित को लेकर जागरूक हो सके ।यही कारण है क्या आधुनिक शिक्षित हुआ चेतनशील नारी रूढ़िवादी परंपराओं ,अंधविश्वासों, धार्मिक मान्यताओं आदि का खंडन कर रही है। यदि लेखिका के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण करते हैं तो प्रतीत होता है कि भारतीय संस्कृति ने स्त्री को शिक्षित होने की जहां प्रेरणा दी वहां नारी स्वावलंबी बनी ।आर्थिक स्वतंत्रता,समानता ने स्त्री की जीवन शैली को परिवर्तित कर दिया ।सार रूप में कहा जाए तो वैश्वीकरण के इस दौर में नारी चेतना को एक नई पहचान दी है|

निष्कर्ष - इस प्रकार "श्रृंखला की कड़ियां निबंध" में महादेवी वर्मा ने नौ दशक पूर्व नारी को समाज की महत्वपूर्ण इकाई के रूप में देखने की जो अंतर्दृष्टि दी है वह समस्त नारी जाति के लिए प्रेरणा स्रोत है।इनके संपूर्ण साहित्य पर विचार करने के बाद कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी में महादेवी वर्मा को नारी सशक्तिकरण के प्रेरणा स्रोत के रूप में याद की जाती रहेगी।

****

संदर्भ सूची -

1.*प्रतियोगिता दर्पण*, उपकार प्रकाशन, आगरा,अप्रैल 2016, आधी दुनिया का पूरा सच, नीलमणि शर्मा,पृष्ठ 98

2.महादेवी वर्मा, *श्रृंखला की कड़ियां* ,लोक भारती प्रकाशन,इलाहाबाद, संस्करण 2012 पृष्ठ 09

3.पांडेय रत्नाकर ,हिंदी साहित्य सामाजिक चेतना, पांडुलिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 158

4.महादेवी वर्मा, *श्रृंखला की कड़ियां,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ,नारीत्व का अभिशाप, पृष्ठ 33

5.महादेवी वर्मा, *श्रृंखला की कड़ियां* ,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ,घर और बाहर, पृष्ठ 53

6.महादेवी वर्मा, *श्रृंखला की कड़ियां* ,लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न,पृष्ठ 90

7.महादेवी वर्मा ,*श्रृंखला की कड़ियां*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ,घर और बाहर, पृष्ठ 54

8.वी एन सिंह/जनमेजय सिंह, नारीवाद रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, *स्त्री विमर्श :स्त्री सशक्तिकरण का प्रश्न* ,संस्करण 2024, पृष्ठ 108

9.महादेवी वर्मा ,*श्रृंखला की कड़ियां* ,लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद,जीने की कला,पृष्ठ 125

10.महादेवी वर्मा ,*श्रृंखला की कड़ियां*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, जीने की कला,पृष्ठ 125

Comparative Study of Antibacterial Effect of *Trigonella Foenum-Graecum, Boswellia Serrata*, and *Nigella Sativa* on Aggregatibacter Actinomycetemcomitans

Dr. Payal Jaiswal & Dr. Lalita Goyal

Department of Biochemistry, M.L.B. Govt. Girls P.G. College, Indore, M.P.

Abstract

Bacterial resistance to antibiotics has become a major concern, necessitating the exploration of alternative treatments. Herbal medicine offers a promising approach, as many plant species possess antimicrobial properties. *Aggregatibacter actinomycetemcomitans* (*A. a.*) is a Gram-negative coccobacillus responsible for aggressive forms of periodontal disease. This study evaluates the antibacterial efficacy of *Trigonella foenum-graecum* (fenugreek), *Boswellia serrata* (BS), and *Nigella sativa* (NS) against *A. a.* using the broth microdilution method. The minimum inhibitory concentrations (MIC) of fenugreek, BS, and NS were determined to be 374.33 µg/ml, 708.33 µg/ml, and 705 µg/ml, respectively, indicating that fenugreek exhibited the strongest antibacterial effect. These findings suggest that fenugreek could be a potential alternative treatment for periodontitis. Future research should focus on optimizing extraction methods and concentrations to enhance antibacterial potency.

Keywords: *Aggregatibacter actinomycetemcomitans,* microdilution, periodontitis, antibacterial potency.

Introduction

The development of bacterial resistance to antibiotics over time has become a significant concern. As an alternative, herbal medicines have gained attention due to their antibacterial properties. Approximately 70,000 plant species have been identified for their antimicrobial potential, showing efficacy against bacteria, fungi, and viruses. *Aggregatibacter actinomycetemcomitans* (*A. a.*) is a Gram-negative coccobacillus that plays a crucial role in aggressive forms of periodontal disease, particularly localized aggressive periodontitis.

Herbal extracts such as *Trigonella foenum-graecum* (fenugreek), *Boswellia serrata* (BS), and *Nigella sativa* (NS) have been traditionally used for various medicinal purposes (Al-Okbi, S. Y. et al. 2014) Fenugreek has demonstrated benefits in controlling diabetes, reducing cholesterol, aiding digestion, and acting as an antioxidant (Singh, D. et al. 2018). *Boswellia serrata* is well-known for its anti-inflammatory properties, primarily due to boswellic acid, which is effective against inflammatory diseases(Gupta, A,. et al. 2017) . *Nigella sativa* (black cumin) has been widely used in traditional medicine for its diuretic, antipyretic, and anti-inflammatory properties. This study aims to compare the antibacterial effects of fenugreek, BS, and NS against *A. a.* to explore their potential in treating aggressive periodontitis using natural alternatives.\

Objective

This study investigates the antibacterial efficacy of Trigonella foenum-graecum, Boswellia serrata, and Nigella sativa against A. actinomycetemcomitans, aiming to explore traditional herbal therapies for the treatment of aggressive periodontitis.

Materials & Methods

Fenugreek, BS, and NS seeds were procured from Jevik Setu Market, Indore, specializing in organic seeds and vegetables. The seeds were finely ground using a mortar and pestle and soaked in dimethyl sulfoxide (DMSO) for one week. The extract was then filtered and centrifuged at 4000 rpm for 30 minutes at 4°C, followed by storage at 4°C for further analysis.

The pathogenic bacterial strain was obtained from the Periodontology Department of the College of Dental Science and Hospital, Rau, Indore, M.P. The minimum inhibitory concentration (MIC) of fenugreek, BS, and NS against A. a. was determined using the broth Microdilution method.

Results & Discussion

The MIC values obtained were as follows:

- Fenugreek: 374.33 µg/ml
- Boswellia serrata: 708.33 µg/ml
- Nigella sativa: 705 µg/ml

No turbidity was observed in the negative control group, confirming the antimicrobial activity of the tested extracts.

Table: Showing the Antibacterial effect of herbal extracts on A.a. Bacteria-

S.No.	Herbal Extract	Mean±SD
1	Fenugreek	374.33±4.04
2	B.S.	708.33±7.63
3	N.S.	705±5

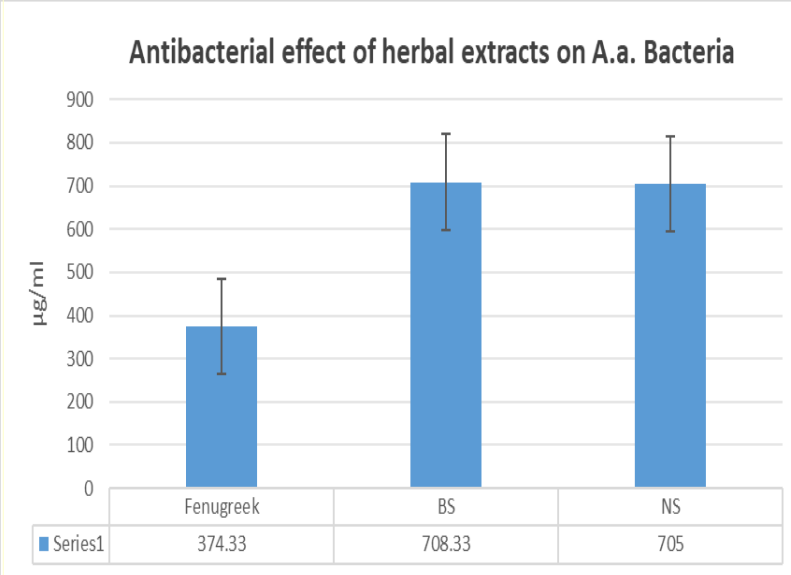

Graph: Showing the Antibacterial effect of herbal extracts on A.a. Bacteria

The results indicate that fenugreek exhibited the strongest antibacterial effect (Gupta, R. et al. 2014) against *A. a.* compared to BS and NS. Currently, the standard treatment for periodontal disease focuses on biofilm removal through mechanical procedures and systemic antibiotic therapy (Deas, D.E. et al.2010). Alternative approaches such as photodynamic therapy with herbal photosensitizers (Moslemi, et al. 2015) and adjunctive use of systemic antibiotics (Dakic, A. et al.2016) have also been explored. Previous studies have evaluated the antimicrobial properties of other natural extracts against *A. a.*. For instance, Kapadia,S.P.et al 2015. investigated the antimicrobial activity of banana peel extract using the agar well diffusion method. *Ocimum sanctum* (Tulsi) has also been widely studied for its antibacterial properties (Mondal, S. et al. 2011). However, limited studies exist on the antibacterial activity of fenugreek, BS, and NS specifically against *A. a.*. Our study is among the first to examine fenugreek's antibacterial effect on *A. a.*.

One challenge in comparing results with previous studies was the variation in extraction methods and bacterial strains. Future studies should focus on evaluating different extraction techniques, including aqueous and alcoholic extracts, to optimize antibacterial efficacy.

Conclusion

Our comparative study demonstrates that ***Trigonella*** *foenum-graecum* exhibits the strongest antibacterial activity against ***A. actinomycetemcomitans*** compared to ***Boswellia serrata*** and ***Nigella*** *sativa*. Given fenugreek's well-documented medicinal properties, it has the potential to be explored further as an alternative treatment for periodontitis. Future research should aim to refine extraction methods and optimize concentrations for enhanced antibacterial potency.

****

Reference

1. Al-Okbi, S. Y., Mohamed, D. A., & Hamed, T. E. (2014). Potential protective effect of Nigella sativa crude oils on fatty liver in rats. Journal of Medicinal Food, 17(3), 285-291.
2. Dakic, A., Boillot, A., Colliot, C., Carra, M. C., Czernichow, S., & Bouchard, P. (2016). Detection of Porphyromonas gingivalis and Aggregatibacter actinomycetemcomitans after systemic administration of amoxicillin plus metronidazole as an adjunct to non-surgical periodontal therapy: a systematic review and meta-analysis. Frontiers in microbiology, 7, 1277.
3. Deas, D. E., & Mealey, B. L. (2010). Response of chronic and aggressive periodontitis to treatment. Periodontology 2000, 53(1).
4. Gupta, A., & Upadhyay, N. K. (2017). Boswellia serrata: An effective anti- inflammatory agent. Journal of Ethnopharmacology, 208, 204-211.
5. Gupta, R., Singh, N., & Nishteswar, K. (2014). Therapeutic efficacy of Trigonella foenum-graecum in metabolic disorders: A review. Ancient Science of Life, 33(4), 245-250.
6. Kapadia, S. P., Pudakalkatti, P. S., & Shivanaikar, S. (2015). Detection of antimicrobial activity of banana peel (Musa paradisiaca L.) on Porphyromonas gingivalis and Aggregatibacter actinomycetemcomitans: An: in vitro: study. Contemporary clinical dentistry, 6(4), 496-499.
7. Khan, M. A., & Afzal, M. (2016). Chemical composition and medicinal properties of Nigella sativa Linn. Asian Pacific Journal of Tropical Biomedicine, 6(5), 398-405.
8. Mondal, S., Varma, S., Bamola, V. D., Naik, S. N., Mirdha, B. R., Padhi, M. M.,and Mahapatra, S. C. (2011). Double-blinded randomized controlled trial for immunomodulatory effects of Tulsi (Ocimum sanctum Linn.) leaf extract on healthy volunteers. Journal of ethnopharmacology, 136(3), 452-456.
9. Moslemi, N., Soleiman-zadeh Azar, P., Bahador, A., Rouzmeh, N., Chiniforush, N., Paknejad, M., & Fekrazad, R. (2015). Inactivation of Aggregatibacter actinomycetemcomitans by two different modalities of photodynamic therapy using Toluidine blue O or Radachlorin as photosensitizers: an in vitro study. Lasers in medical science, 30, 89-94.
10. Raja, A. F., Ali, F., Khan, I. A., Shawl, A. S., Arora, D. S., Shah, B. A., & Taneja, S. C. (2011). Antistaphylococcal and biofilm inhibitory activities of acetyl-11-keto-β-boswellic acid from Boswellia serrata. BMC microbiology, 11, 1-9.
11. Safayhi, H., Sailer, E. R., & Ammon, H. P. (1995). Mechanism of 5-lipoxygenase inhibition by acetyl-11-keto-beta-boswellic acid. Molecular pharmacology, 47(6), 1212-1216.
12. Schneider, C., & Segre, T. (2009). Green tea: potential health benefits. American family physician, 79(7), 591-594.
13. Singh, D., Kumar, T. R., & Kumar, S. (2018). Medicinal properties of Trigonella foenum-graecum: A review. International Journal of Pharmaceutical Sciences and Research, 9(6), 2155-2161.

EXPLORING THE COMPLEX RELATIONSHIP BETWEEN MIGRATION AND WELLBEING: BENEFITS AND CHALLENGES

Manish Kumar

Department of economics

Banaras Hindu university Varanasi (U.P.) – 221005

Email: kumarmanish2321998@gmail.com

ABSTRACT

Migration is a multifaceted phenomenon influenced by various factors such as socioeconomic conditions, political stability, natural disasters, and climate change. This review paper explores the intricate relationship between migration and wellbeing, a concept encompassing physical health, mental state, economic stability, and social integration. How does migration influence wellbeing? If migration improves wellbeing, in what areas does it enhance? Conversely, if it diminishes wellbeing, in what aspects does it do so? The paper aims to assess the overall effect of migration on household wellbeing. The first section delves into the key concepts of migration and wellbeing, examining the impact of migration on the different dimensions of quality of life. The complex relationship between the two is discussed through various lenses, from economic gains to social integration and family dynamics.

The second section outlines the methods and criteria used to assess studies on the topic, focusing on how migration can affect wellbeing both positively and negatively. For example, when men migrate for work, women in rural areas often take on greater social and economic responsibilities, which can shift gender roles and increase employment rates. At the same time, migration can strain family relationships, create emotional stress, and disrupt the upbringing of children. However, it also brings positive outcomes, such as remittances that improve financial stability and access to resources for families.

The third section synthesizes key findings from different studies, highlighting the importance of policies that support migrant wellbeing. It stresses the need for governments and healthcare providers to create inclusive policies that offer mental health services, job opportunities, and education. By addressing these challenges, migration can yield positive outcomes, fostering healthier and more integrated communities while enhancing overall household wellbeing.

Key word: Migration, Wellbeing, Socio-Economic.

1. INTRODUCTION

Migration is when people move from one place to another, either within the same country or to a different country, usually to find better work or living conditions. People often migrate to escape poverty, find jobs, or seek better opportunities for themselves and their families. Well-being is about how good or satisfying someone's life is. It includes not just how much money they have, but also how healthy they are, how educated they are, and whether they feel safe and happy. Well-being can be affected by many things like income, relationships, and access to services like healthcare. When we talk about migration and well-being together, we are interested in how moving to a new place change someone's life. For example, migration can bring in more money through remittances, but it can also cause emotional challenges if families are separated. Understanding the relationship between migration and well-being is essential in today's globalized world because migration significantly impacts economies, societies, and individuals. Migrants often contribute to economic growth, address labour shortages, and send remittances that support families in their home countries. However, migration can also lead to challenges like brain drain and social integration issues. In an increasingly interconnected world, recognizing how migration affects the well-being of both migrants and the communities involved is key to developing inclusive policies that promote economic development, social harmony, and global cooperation in addressing challenges such as displacement due to conflict or climate change. The purpose of this review is to explore both the positive and negative effects of migration on well-being. It looks at how migration can improve lives by increasing income and providing better opportunities, while also considering the challenges, such as family separation and difficulties in adjusting to new places. The goal is to understand how migration influences people's quality of life and what can be done to address the challenges while maximizing the benefits. This paper is structured into

four main sections. Following the introduction, the second section outlines the objectives of the paper. The third section presents the methodology of the paper. The fourth section presents the findings and discussion of the paper and fifth section presents the policy implications of the paper.

2. OBJECTIVES

This review paper aims to critically analyze the multifaceted relationship between migration and household well-being by (1) examining how migration influences diverse dimensions of wellbeing-including physical health, mental state, economic stability, and social integration; (2) assessing both the positive and negative impacts of migration, such as economic empowerment through remittances versus familial strain and emotional stress; and (3) synthesizing evidence to advocate for inclusive policies that enhance migrant wellbeing through mental health support, equitable employment, education, and social integration. The study seeks to provide a holistic understanding of migration's role in shaping household outcomes and inform strategies to maximize its benefits while mitigating adversities.

3. METHODOLOGY

The methodology for identifying relevant studies involved a systematic search in the Scopus database using the keywords "Migration" AND ("Wellbeing" OR "remittances") in the title field, which initially retrieved 262 records. The search was refined by limiting documents to peer-reviewed "articles" and "conference papers", reducing the results to 83 records. Subsequently, only open-access publications were selected to ensure accessibility, yielding 52 papers. Further filtering by subject areas-Social Science, Economics, and Econometrics—retained 102 records, after which non-English publications were excluded, resulting in a final set of 68 studies for in-depth analysis. This structured approach prioritized relevance, accessibility, and disciplinary alignment to systematically capture literature exploring migration's intersection with wellbeing and remittances.

4. FINDINGS AND DISCUSSION

4.1 MIGRATION THEORIES

Push-Pull Factors: This theory explains migration as a result of factors that "push" people out of their home country and "pull" them to another. Push factors include problems like unemployment, poverty, or political instability, which make people want to leave. Pull factors are opportunities like better jobs, higher wages, or improved living conditions that attract people to a new place. Neoclassical Economic Theory: This theory views migration as an economic decision. People migrate to places where they can earn higher wages and improve their financial situation. The theory suggests that labour moves from areas with low wages to areas with high wages, balancing out labour markets between countries or regions. New Economics of Labour Migration (NELM): This theory expands on the idea of migration by considering not just individuals but also households. It argues that families often make migration decisions together to diversify their income sources and reduce risks, like crop failures or job loss, by having members work in different places and send money back home (remittances).

4.2 WELLBEING MODELS

To understand well-being, we can use different frameworks that focus on its psychological, economic, and social dimensions: Psychological Well-being: This framework looks at a person's emotional health and happiness. It includes things like life satisfaction, feeling positive emotions, having a sense of purpose, and being able to cope with stress. Psychologist Carol Ryff's model of well-being, for example, includes key elements like self-acceptance, personal growth, and autonomy, which together define how well someone feels mentally and emotionally. Economic Well-being: This focuses on how financially secure and stable a person or household is. It includes factors like income, savings, employment, and the ability to meet basic needs. People with higher economic well-being are generally able to live more comfortably, have access to better resources, and plan for the future. Economic well-being is often measured by income levels, job stability, and access to material resources. Social Well-being: This dimension considers how connected and supported a person is by their relationships and community. It looks at the quality of social connections, family ties, friendships, and a sense of belonging. Social well-being means feeling supported and valued by others, which plays an important role in overall happiness. Each of these dimensions helps us understand well-being more fully by looking beyond just one area of life

4.3 BENEFITS OF MIGRATION ON WELLBEING

Economic Opportunities

Migration helps people find better job opportunities and higher wages, improving their financial situation. Many leave areas with few jobs for stronger economies where they can earn more, support their families, and send money home. Remittances also enhance the quality of life for families back home (Todaro, 1969; Adams & Page, 2005).

Educational and Skill Development

Migration offers access to better education and skill

development, enhancing migrants' qualifications and job prospects. Many pursue higher education or training, leading to career advancement and improved economic situations. Investing in education for their children also benefits future generations and fosters development (Orozco, 2003).

Cultural Enrichment

Migration exposes people to new cultures, helping them grow personally and become more open-minded. This experience teaches valuable skills like adaptability and empathy, improving relationships and work with others. It also boosts creativity and problem-solving by providing new perspectives (Leung et al., 2011).

Remittances

Remittances sent home by migrants greatly enhance the well-being of their families. These funds help cover basic needs like food, housing, and healthcare, and enable investments in education, breaking the cycle of poverty. Additionally, remittances stimulate local economies and promote community development, leading to reduced poverty rates and improved quality of life (Ratha, 2013).

4.4 CHALLENGES OF MIGRATION ON WELLBEING

Psychological Impact

Migration can lead to emotional challenges like stress, identity crises, and homesickness. Adapting to a new culture can cause anxiety, especially with financial pressures (Bhugra, 2005). Migrants may struggle with balancing their original identity with a new one (Sam & Berry, 2010), and homesickness can lead to loneliness and sadness (Hirschmann, 2005). Support and mental health resources are essential for their well-being. Parental migration negatively impacts LBC's social wellbeing. LBC experience mental health challenges due to migration (Nelsensius Klau Fauk,2024). Negative relationship between migration and subjective well-being identified. Migrants accept income increase for reduced life satisfaction post-migration (Gabriel Rodríguez-Puello,2024).

Social Integration

Migrants often struggle to adapt to new social norms due to differences in values and traditions, which can lead to misunderstandings and feelings of isolation (Berry, 1997). Language barriers make communication challenging, and the pressure to fit in can cause stress. Additionally, many face discrimination and xenophobia, further hindering their integration and well-being (Schwartz et al., 2014). Promoting inclusive communities and cultural understanding can help support migrants during their transition.

Legal and Political Barriers

Migrants face significant challenges related to immigration policies, legal status, and access to essential services, affecting their quality of life. Strict immigration laws can create barriers, leading to fear and uncertainty about deportation (Martin, 2008). Those without legal status often face limited job opportunities and may avoid seeking healthcare due to fear of exposure (Castañeda et al., 2015). Additionally, language barriers and ineligibility for public services hinder access to healthcare and education, impacting their overall well-being (Sullivan et al., 2011). Advocating for inclusive policies is crucial.

Economic Exploitation

Migrants often face significant risks in the labour market, including low wages, job insecurity, and exploitation, which can negatively affect their economic well-being and overall quality of life. Low Wages: Migrants are frequently employed in low-paying jobs, especially when they lack formal qualifications or their credentials are not recognized in the host country. Many migrants work in sectors like agriculture, construction, or domestic work, where wages are often below the national average. These low earnings make it difficult for migrants to achieve financial stability, support their families, and improve their standard of living (Piore, 1979). Job Insecurity: Migrants often take temporary or informal jobs, which offer little to no job security. This means that they are at a higher risk of losing their jobs without notice or compensation. Migrants in precarious employment situations may have no access to benefits like sick leave, unemployment insurance, or retirement plans, leaving them vulnerable to financial hardship in times of crisis (Standing, 2011). Seasonal or temporary work contracts are also common, further increasing job insecurity. Exploitation: Migrants are more susceptible to exploitation in the labour market, especially if they are undocumented or lack legal protections. Exploitative practices may include long working hours, unsafe working conditions, and wages far below the legal minimum. Employers may take advantage of migrants' vulnerable legal or economic situations, knowing they are less likely to report abuses for fear of losing their jobs or being deported (Anderson & Rush, 2010). This exploitation often leads to both physical and mental stress, further affecting their well-being. Addressing these risks requires stronger labour protections, fair wage policies, and improved access to legal rights for migrants to ensure their dignity and safety in the workplace.

4.5 CASE STUDIES

Successful Integration Examples

Migration has led to significant improvements in the well-being of individuals and families in various cases,

particularly by providing better economic opportunities, access to education, and improved living conditions. Economic Advancement: One notable example is the case of Filipino workers migrating to countries like Saudi Arabia or the United States. Many Filipino workers find employment in higher-paying sectors such as healthcare, construction, or domestic work, which allows them to send substantial remittances back home. These remittances have been critical in improving the well-being of their families by boosting household income, allowing for better housing, healthcare, and education (Yang & Martinez, 2005). This economic uplift has helped reduce poverty and increase financial stability in many Filipino households. Education and Skills Development: Another case is the migration of Indian IT professionals to countries like the U.S., Canada, and the UK. Many of these migrants take advantage of advanced educational and professional opportunities, gaining access to high-quality training and experience in the tech industry. This has not only improved their economic status but also enhanced their personal growth and skills. The knowledge they gain abroad often benefits their home countries when they return or through knowledge transfer, contributing to global technological progress (Khadira, 2001). Improved Living Standards: Migration has also had a positive impact on well-being in cases such as Eastern Europeans moving to Western Europe after the expansion of the European Union. For instance, Polish workers who migrated to the UK benefited from higher wages and improved access to services. These migrants were able to provide better living conditions for themselves and their families, both in the host country and through remittances sent home. The increased financial stability and exposure to better healthcare and social services enhanced their overall quality of life (Drinkwater et al., 2009). These cases demonstrate how migration, when well-managed, can provide migrants and their families with opportunities to improve their economic standing, education, and living conditions, significantly enhancing their well-being.

Challenges in Host Countries

Migration can cause social and economic tensions, especially in areas with limited jobs or resources. Local populations may feel threatened by migrants competing for low-wage jobs or straining public services like healthcare and housing. For example, the 2008 UK financial crisis saw tensions between native workers and Eastern European migrants (Wadsworth, 2015). Similarly, in South Africa, migrants from Zimbabwe faced hostility over public resource competition (Crush & Ramachandran, 2014). Effective policies are needed to address these issues and promote integration.

5. POLICY IMPLICATIONS

Support Systems

Policies that help migrants with mental health, social integration, and fair job opportunities are important for their well-being and successful adjustment. Providing tailored support, language training, and fair work conditions helps reduce isolation and allows migrants to contribute positively to the economy (Bhugra & Gupta, 2011; ILO, 2015).

Community Engagement

Community programs help migrants integrate by offering language classes, cultural workshops, and social events. These programs build connections between migrants and locals, reduce stereotypes, and create support networks. They also provide job training to boost migrants' skills and employability, making it easier for them to settle and contribute to society (Dempsey, 2021; Schaefer, 2018; Wessendorf, 2013; Kagan, 2017).

Coordinated Responses: Global agreements, such as the Global Compact for Safe, Orderly and Regular Migration, provide a platform for countries to coordinate their responses to migration challenges. By fostering dialogue and collaboration, these agreements enable nations to share information, resources, and strategies for managing migration effectively. This coordinated approach can help address issues like human trafficking, irregular migration, and border management more comprehensively (United Nations, 2018).

Protection of Migrant Rights: International partnerships help protect migrants' rights by following global agreements that ensure fair treatment, safety, and access to services (United Nations, 1990). Countries also share successful ideas on how to support migrants, like offering language classes and job training, to improve policies and create better integration programs (IOM, 2020).

Addressing Root Causes: Global agreements can also address the root causes of migration, such as poverty, conflict, and environmental degradation. Collaborative efforts between countries, international organizations, and NGOs can focus on development assistance and humanitarian support in countries of origin. By improving living conditions and creating economic opportunities, these initiatives can help reduce the pressures that drive people to migrate (World Bank, 2018).

Facilitating Legal Pathways: International collaboration can help create and expand legal pathways for migration, which can reduce the incidence of irregular migration and exploitation. By establishing mutual

recognition of qualifications and easing visa restrictions for certain labour markets, countries can facilitate the movement of skilled workers while ensuring that migrants have safe and legal options for migration (ILO, 2017).

****

REFERENCES

1. Adams, R. H., & Page, J. (2005). *Do International Migration and Remittances Reduce Poverty in Developing Countries?*
2. Anderson, B., & Ruhs, M. (2010). *Migrant Workers: Who Needs Them? A Framework for the Analysis of Staff Shortages, Immigration, and Public Policy*.
3. Berry, J. W. (1997). *Immigration, Acculturation, and Adaptation*.
4. Betz, H.-G., & Meret, S. (2013). *Right-wing Populist Parties and the Refugee Crisis in Europe: The End of Compassion?*
5. Bhugra, D. (2005). *Migration and Mental Health*.
6. Bhugra, D., & Gupta, S. (2011). *Migration and Mental Health*.
7. Borjas, G. J. (1994). *The Economics of Immigration*.
8. Castañeda, H., et al. (2015). *Immigration and Health: The Importance of a Social Determinants Perspective*.
9. Castles, S., & Miller, M. J. (2009). *The Age of Migration: International Population Movements in the Modern World*.
10. Crush, J., & Ramachandran, S. (2014). *Xenophobic Violence in South Africa: Denialism, Minimalism, and Inaction*.
11. De Haas, H. (2010). Migration and development: A theoretical perspective. *International Migration Review, 44*(1), 227-264.
12. Dempsey, N. (2021). *Language, Identity, and Integration: The Role of Language in Migrant Experiences*.
13. Diener, E., & Seligman, M. E. P. (2004). *Beyond Money: Toward an Economy of Well-being*.
14. Drinkwater, S., Eade, J., & Garapich, M. P. (2009). *Poles Apart? EU Enlargement and the Labour Market Outcomes of Immigrants in the United Kingdom*.
15. Fargues, P., & Benton, M. (2017). *Migration and Integration in Europe: Impact of Migration on Host Societies*.
16. Friedman, S. (2020). *Celebrating Diversity: Building Inclusive Communities*.
17. Gabriel, Rodríguez-Puello., José, Luis, Sánchez-Menoyo., Diana, Romero-Espinosa., Francisco, Rowe. (2024). The disruptive long-term costs of international migration on subjective well-being. doi: 10.31219/osf.io/ydbxu.
18. Hannerz, U. (1990). *Flows and Counter-Flows in Cultural Studies*.
19. Hirschmann, C. (2005). *The Social and Psychological Aspects of Migration*.
20. International Labour Organization (ILO). (2015). *Promoting Fair Migration: General Survey Concerning the Migrant Workers Instruments*.
21. International Labour Organization (ILO). (2017). *Global Estimates of Migrant Workers and Migrant Work*.
22. International Organization for Migration (IOM). (2020). *Migration Governance Framework*.
23. Kagan, M. (2017). *The Role of Community Organizations in Refugee Employment Integration*.
24. Keyes, C. L. M. (1998). *Social Well-being*.
25. Khadria, B. (2001). *Shifting Paradigms of Globalization: The Twenty-First Century Transition Towards Generics in Skilled Migration from India*.
26. Lee, E. S. (1966). *A Theory of Migration*.
27. Leung, A. K. Y., Maddux, W. W., Galinsky, A. D., & Chiu, C. (2011). *Multicultural Experiences Enhance Creativity: The Importance of Cultural Intelligence*.
28. Martin, P. L. (2008). *Migration and Immigration Policy*.

EXAM-INE STRATEGIES FOR PRESERVATION I NCLUDING NATURAL PRESERVATIVES TO INCREASE THE LIFESPAN OF FOOD

Ashutosh Pathak

Institute of Pharmacy, Dr. Shakuntala Misra National Rehabilitation University, Mohan Rd, Sarosa Bharosa, Lucknow, Uttar Pradesh India – 226017.

Abstract:

The main purpose of food preservatives, which are additional ingredients added to food, is to add flavor and extend its shelf life. This helps prevent food from spoiling and shields it from microorganisms like bacteria, yeast, and molds, as well as potentially deadly poisoning and other microbes that can cause food-borne illness (antibacterial function). Benzoates, sulfur dioxide, nitrates, and nitrites are examples of antimicrobials that help regulate and limit the development of microbes, fungi, and molds, pH control enhance food flavor or provide color to prevent spoilage etc. An extensive summary of the science underlying artificial and natural food preservatives is provided in this review study. The fundamental ideas of food preservation as well as the biochemical, enzyme-mediated, and microbiological mechanisms that lead to food deterioration are covered in the review's introduction.

Keywords: Preservation, Natural preservatives, Artificial Preservatives, Ethylene diamine tetra acetic acid, High Performance Liquid Chromatography

Introduction:-Food consumed by human and animals to produce energy can be raw, processed or formulated materials which can promotes growth and required to maintain good health. In most cases, there are no limitations on food consumption but sometime the excessive consumption of certain kind of food such as carbohydrate, fat, sugar and salt, may have harmful effects on health of consumer. Food products will promote the growth of microbial because chemically, they consist of water, fat, carbohydrates, protein and small amounts of organic compounds and minerals, since all these compounds are the source energy for microbes to grow. Several preservation techniques are suggested to stop this from happening. A preservative is a substance, either natural or synthetic, that is applied to many things, including food, medicines, paints, timber, etc., to stop microbial growth or unintended chemical changes from decomposing them. To extend the shelf life of many

foods and medicinal items, these preservatives are frequently applied [1].To guarantee the use of food with good nutritional content, which is crucial for human health, food quality must be maintained. Therefore, the best approach to maintain food quality and stop it from deteriorating is to use preservation techniques. These days, there are many different kinds of preservation techniques that may be applied to preserve food quality. items for an extended length of time, either via the use of contemporary preservation technologies or traditional means. Additional food preservatives, which fall into two categories—natural and artificial—are used in some of these preservation techniques [2].

There are six food classes, which are as follows:
1. Sweets and fatty acids, such as buttermilk, gel, beverages with sugar, etc.
2. Dairy goods, such as cheese, yogurt, milk, and so on.
3. Protein, such as meat, eggs, poultry, almonds, etc.
4. Vegetables, such as spinach, salad, tomatoes, etc.
5. Fruits, such as bananas, mangoes, and apples.
6. Carbs such as rice, bread, noodles, and so on.

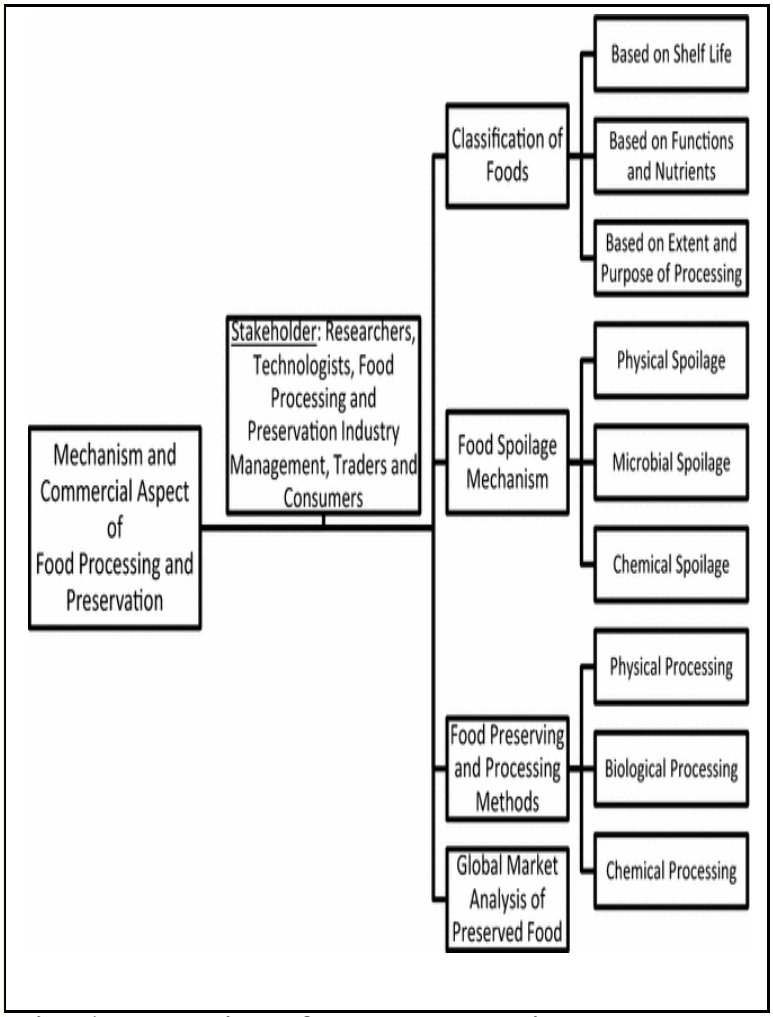

Fig. 1 Mechanism of Food preservatives

Table. 1 Classification of Preservative

Preservative Classification [3-5]	
On the basis of their class	**Class I:** Food preservatives derived from nature, such as salt, sugar, a vinegar-based products, herbs, honey, edible oils, etc., were included in this class. **Class II:** Benzoates, sorbates, potassium nitrites and nitrates, sulphites, glutamates, glycerides, and other chemical, semi-synthetic, or synthetic food preservatives were included in this class.
On the basis of Source	**Natural Preservatives:** Plants, minerals, animals, and other natural resources are the sources of these medications. For instance, Lemon Honey, Vinegar with Neem extract Salt (NaCl). **Synthetic Preservatives:** These preservatives are made from chemicals that, in little amounts, are effective against a variety of pathogens. For instance, nitrites, propionates, sorbates, sodium benzoate, and benzoates
On the basis of mechanism of action	**Antioxidants**: The substance that stops the oxidation of active pharmacological ingredients, which normally degrade because of oxidation since they are oxygen-sensitive. Vitamin C, for instance. **Antimicrobial**: The substance that works against both gram-positive and gram-negative microorganisms that break down medicinal preparations. which operate at a low degree of inclusiveness. For instance, benzoates, Benzoate of sodium. **Chelating Agent:** The substance that combines with medicinal ingredients to create a complex and stop the formulation from degrading. For instance, EDTA (disodium ethylene diamine tetra acetic acid).

Table 2. Food goods where preservatives can be utilized and their uppermost limitations [6-7]

Preservatives	Class	Utilization
Sodium and potassium benzoate, benzoic acid	Antimicrobial	Fruit Juices, Jams, Cheese, Baked Goods, Snacks etc.
Sulphates and sulphur dioxide	Antimicrobial	Dry fruit, fruits, Molasses, fried or frozen potatoes etc.
Methyl and propyl paraben	Antimicrobial	Baked goods, Beverages, relishes etc.
Sorbic acid, Sodium, potassium and calcium sorbates	Antimicrobial	Dairy products, sweets, syrups, jams, jellies etc.
Propionates	Antimicrobial	Cheese foods, fruits, bakery products etc.
Nitrites and nitrates	Antimicrobial	Meat products.
Propyl gallate	Antioxidants	Baked foods
Butylated hydroxy-anisole	Antioxidants	Potato products, cereals etc.
Tert-butyl hydroquinone	Anti-enzymatic	Foods and snacks etc.

Table 3. Codes assign for preservatives [8-10]

E Number	Name of preservative	Purpose
E 200	Sorbic acid	Preservative
E 202	Potassium sorbate	Preservative
E 203	Calcium sorbate	Preservative
E 210	Benzoic Acid	Preservative
E 211	Sodium benzoate	Preservative
E 212	Potassium Benzoate	Preservative
E 213	Calcium Benzoate	Preservative
E 214	Ethyl p-hydroxybenzoate	Preservative
E 215	Sodium ethyl p- hydroxybenzoate	Preservative
E 216	Propyl p-hydroxybenzoate	Preservative
E 217	Sodium propyl p-hydroxybenzoate	Preservative
E 218	Methyl p-hydroxybenzoate	Preservative
E 219	Sodium methyl p-hydroxybenzoate	Preservative
E 220	Sulphur dioxide	Preservative
E 221	Sodium sulphite	Preservative
E 222	Sodium hydrogen sulphite	Preservative
E 223	Sodium metabisulphite	Preservative
E 224	Potassium metabisulphite	Preservative

Table 4. Preservatives used in Pharmaceutical Formulations [11-12]

Category	Products	Preservatives
Oral	Tablets, capsules, suspensions and syrups	Methyl, ethyl, propyl parabens and their combinations, sodium benzoate, benzoic acid, calcium.
Parenteral (including Vaccine)	Small and large volume parenterals including vaccines	Methyl, ethyl, propyl, butyl parabens and their combinations, benzyl alcohol, chlorbutanol, chlorhexidine, thiomersal, formaldehyde.
Nasal	Nasal drops, sprays and aerosols	Benzalkonium chloride, phenylcarbinol, potassium sorbate, chlorobutanol, chlorocresol, EDTA
Ophthalmic	Eye drops, ointments and contact lens solutions	Benzalkonium chloride, EDTA, benzoic acid, thiomersal, imidurea, chlorhexidine, polyamino propylbiguanide, sodium perborate, boric acid
Dental	Toothpastes, mouthwashes and gargles	Sodium benzoate, benzoic acid, potassium sorbate, sodium phosphate, triclosan, cetylpyridinium chloride, methyl and ethyl parabens
Dermal	Cream, lotion, ointment, soap, bath gel, hair spray, shampoo and conditioner	Benzalkonium chloride, cetrimide, EDTA, benzoic acid, thiomersal, imidurea, chlorhexidine, chlorocresol, phenyl salicylate
Rectal	Suppositories and enema	Benzyl alcohol, benzoic acid, sodium benzoate, methyl hydroxybenzoate, chlorhexidine gluconate

Artificial Preservatives

By chemical processes, humans create these preservatives, which are effective towards a variety of pathogens at low concentrations. For example, sodium benzoates, Propionates, the nitrite and benzoate sorbates etc. After receiving approval from the Scientific Committee on Food (SCF), which is in charge of assessing the health hazards of food substances, the European Commission gives an addition of E-number.

Substances that have been certified for consumption within Switzerland and the European Union are denoted by E numbers, which are used by the dietary supplement sector globally [13].

Table 5. Methods of Preserving Food

Methods of Preserving Food [14]	
Drying	Drying is one of the first techniques for preserving food since it lowers water's activity enough to stop or slow the proliferation of germs. Additionally, drying lowers heaviness.
Canning	When done correctly, canning is a significant and secure food preservation technique. To sterilize food, canning entails heating it, enclosing it in sterilized bottles or jars, and then steaming the vessels to destroy or lessen any germs that may still be present.
Pickling	Pickling is an anaerobe fermentation method of food preservation. The final product is known as a pickle. This process imparts an acidic or salty flavour to the dish. Vinegar, alcohol, vegetable oil, and brine are common pickling ingredients. Its pH of below 4.6, which is adequate to eradicate the majority of microorganisms, is another distinctive feature. Perishable items can be pickled for months at a time.
Freezing	The two methods of food preservation that are most commonly used nowadays are most likely thawing and refrigerated. The goal of cooling is to slow down bacterial activity to a standstill so that food takes a lot longer to spoil—perhaps up to fourteen days as opposed to a few hours.
Vacuum Packaging	Food is often vacuum-packed in a sealed jar or bag. The vacuum atmosphere slows deterioration by depriving microorganisms of oxygen, which is necessary for their life. Food can be harmed by air, which can lead to rust, bacterial development, or property loss. Products that travel great distances can be preserved using this approach for several weeks or months if they are kept in a refrigerator.
Water Bath	Using this method, food is kept in a securely sealed glass container filled with water. Next, a saucepan filled with sufficient fluids to fully cover the jar is set over the container. After 50 minutes of boiling, turn off. Before causing a fast heat shift that may lead the bottle to burst, let the vessel cool fully within the container.

Risks to health from artificial preservatives-Although majority of artificial preservatives are thought to be harmless, others have harmful, carcinogenic, and lethal negative consequences. Popular preservatives found in many fruits, sulphites can cause migraines, heartburn, allergies, breathing problems, cancer, and other adverse reactions [15].

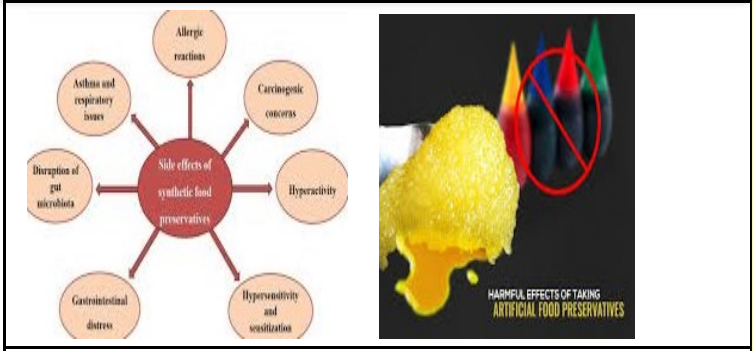

Fig 3 Hazards of Artificial Food Preservatives.

Table 6. Artificial preservatives and their problems associated [16]

Artificial Preservatives	Problems Associated
Nitrites and Nitrites	In order to avoid food illness, sodium nitrite is used as a preservative in animal products, hamsters, smoked meat, hot dogs, and salami. Although sodium nitrite can stop the development of germs that might cause botulism, it may interact with peptides and produce cancerous effects. N-nitrosamines whenever heated to high temperatures. When nitrate attaches to haemoglobin, the substance that transports oxygen from bloodstreams to the body's tissues, it produces chemically changed haemoglobin (methaemoglobin), which hinders the delivery of oxygen to the tissues and gives the skin its blue hue.
Benzoates	Benzoate is thought to be triggering harm to the brain and can cause allergies like breakouts on the skin and bronchitis. As microbiological food preservatives, benzoates have been linked to inflammation, respiratory conditions, and sensitivities.
Caffeine	Caffeine is a flavouring and colouring agent with diuretic and stimulating qualities. It may result in anxiety, heartburn, and in rare cases, cardiac abnormalities.
Sorbic Acid	Foods are treated with sorbates or sorbic acid as antibacterial preservatives. Although sorbate problems are uncommon, dermatitis from contact and urticaria have been reported

Natural preservatives: Better alternatives

Natural preservatives are likely a topic of greater scholarly interest than commercial or practical benefit. It does, however, offer a fantastic marketing aspect that might help to offset the greater cost of raw materials. The most popular preservation techniques that the formulator already has access to are reviewed first in the paper. Many of these instances may be found in the industry of food and drinks. The study then examines

how to browse through the available material and the issues with frequently employed substitutes for the procedure of preservation. This Review concludes by examining a few particular species that are frequently found in the toiletryFig 3: Natural preservatives and cosmetics industries and providing samples of a few of the botanical sources as shown in Table 7 [17].

Fig 3: Natural preservatives.

Table 7. Natural Preservatives and its properties [18]

Preservatives	Properties
Sugar	High amounts of sugar can protect foods against spoiling microbes; this is evident in jams, conserves, certain sweetness pickled veggies, and marmalades. This plays a significant role in ensuring the longevity of candy, boiled desserts, and other foods. As a result of the substitution of artificial sweeteners, which are less expensive and healthier to consume, for sugar, many items must now be stored in the refrigerator or freezer once they are opened, compromising the product's ability to preserve itself.
Honey	Undiluted honey is also an all-natural preservative; in fact, several scholarly articles mention honey's ability to operate as a viscoelastic shield against germs and illness.
Alcohol	Yeast's ability to convert sugar into alcohol is a separate business. Once the fermentation process is over, a wine that has been meticulously made using sterile supplies and brewed to 13% by capacity will barely be able to withstand additional infection from outside microbes. The moment of fermentation is when the fermented must is most susceptible to infection. Distillation may concentrate the naturally occurring fermentation-grade alcohol, which can then be utilized as a natural preservative in colognes, aftershaves, and toners.
Heat	Other alternative preservation methods that will sterilize items include heating, cooking, and pasteurization. This is particularly important for products that are intended for single-use, such phials or sachets. To stop microbiological deterioration, the product can also be kept in the refrigerator or freezer once it has been opened.
Anhydrous	Similarly, one may intentionally create and construct a completely anhydrous product by using ingredients that don't contain any water at all. The identical limitations that apply to desiccated goods also apply to gels that the user can complete by adding liquid to the mixture of oils, fats, and lubricants.
Cold	As long as the goods was pure before it was put in a freezer and/or had enough preservation "mass" to combat any newly acquired organisms, putting it in the cold just "stops the clock" on microbiological development, which is entirely OK.
Acidic pH	By keeping the pH as low as feasible, the preservation action can be increased. One of the several alpha hydroxy acids (AHAs) derived from citrus varieties, of which citric and malic acids are the main constituents, may provide natural acidity. In addition, it is astonishing that costly organic alpha hydroxy acid sources are being artificially produced while baobab oil makers discard significant amounts of tartaric acid as a byproduct.
Vinegar	Vinegar is utilized as in food industry and household preservation due to its low pH and acetic acid concentration. In actuality, it is employed to pickle a broad range of meals, including meat, vegetables, seafood goods, and spicy fruits.

Onion	It serves as one of the most commonly consumed veggies and offers a number nutritional advantage. Culinary quercetin is abundant in onions. The flavanols quercetin and kaempferol, which are frequently found in glycosylated forms, are their principal representatives. Onions have therefore been suggested as an excellent source of plant-based preservatives, which improve food stability and preservation while also raising its nutritional content. Onions have antibacterial properties because they contain thiosulfates and other volatile chemical substances. They are primarily in charge of the onion's distinct flavour, scent, and lachrymatory action, but their antimicrobial, anti-fungal and antimicrobial properties also make them highly desirable.
Oil	Food oxidizes and begins to spoil when it comes into touch with air. Oil prevents microbes from getting into touch with the food and reduces down the oxidation process.
Grapes fruit Extract	The fluid made from the seed mixture, pulp, and white membranes of the tangerine Citrus Paradise is sometimes referred to as citrus seed extract. Bacteria, viruses, fungus, and other microorganisms can be killed or their development inhibited by this endogenous broad range preservative. For best results, it should be used with other wide-ranging preservatives. It can be added to the composition in amounts as high as 1%.
Acid	In addition to adding taste, food acids serve as antioxidants and preservatives. Typical food acids include lactic acid sorbic acid, vinegar, citric acid, tartaric acid, malic acid, fumaric acid, and tartaric acid. These compounds prevent bacterial and fungal cells from growing, and sorbic acid prevents bacterial spores from germinating and proliferating.
Cloves	In addition to being utilized as natural food preservatives, medicinal herbs are used to season and taste meat, fish, bread, and cakes. They belong to the Myrtaceous family and are naturally occurring herbal remedies that are extracted from evergreen trees. They have emmenagogue, antibacterial, expectorant, aesthetic, and antihistamine qualities. By eliminating microorganisms, they can function as antibacterial agents.
Cinnamon	An antimicrobial and antibacterial essential oil is found in cinnamon, a medicinal plant. The bark, leaves, stems, flowers, and volatile oil are the primary components utilized in herbal therapy. You will feel warm and comfortable because to the powerful scent. This age-old spice has antispasmodic, digestive, astringent, carminative, anti-clotting, fragrant, germicide, and stomachic effects. It is also used as a sex stimulator and to treat uterine bleeding.

Identifying food preservatives using various analytical techniques:

Numerous analytical techniques for identifying preservatives have been documented. Numerous analytical techniques, including UV-visible, calorimetry, HPLC, GC, LCMS, and electrophoresis, were employed to identify different preservatives in a variety of food items using the suggested procedures [19].

Table 9. Methods of determining Preservative [20]

Preservatives	Methods
Benzoic Acid and Sorbic Acid	Overlapped HPLC –PDA
Sodium Benzoate and Potassium Benzoate	HPLC
Benzoic Acid	UV Spectrophotometry
Sorbic Acid	UV Spectrophotometry
Sodium, Potassium Salts of Nitrates and Nitrites	Colorimetry BHT And BHA HPLC
Methgyl Paraben Propyl Paraben	Methgyl Paraben Propyl Paraben

Conclusion and Discussion:

Due to growing consumer knowledge and concern about the negative consequences of synthetic chemical additions, foods preserved using natural ingredients have gained popularity. As a result, scientists and food producers are increasingly focusing on natural. preservatives. Natural food additives with minimal adverse reactions and those that are widely accepted as safe should be used if the utilization of nutritional additives is required due to their benefits. We have observed that natural preservatives have less adverse effects than synthetic ones, which are used to preserve foods, cosmetics, etc. accessible and reasonably priced. so that we can utilize it with ease. When applied to food goods, medicines, and cosmetics, organic preservatives not only prolong their shelf life but also inhibit the growth of microorganisms. Additionally, it keeps things fresh or consistent for a long period without having any harmful effects. Chemicals used as artificial preservatives have the potential to be harmful to one's health. These days, people are becoming more conscious of the negative consequences of chemical substances found in food, cosmetics, and medications. Because of their numerous health benefits and non-toxic nature, natural preservatives have more advantages than their artificial equivalents

References:

1.Alam, M. W., Saravanan, P., Al-Sowayan, N. S., Almutairi, H. H., Rosaiah, P., Prakash, N. G., & Ko, T. J. (2025). Polysaccharides and proteins based edible coatings for food protection: classification, properties, & public demands (2020–2024). *Journal of Food Measurement and Characterization*, 1-24.

2.Silva, M. M., & Lidon, F. C. (2016). Food preservatives-An overview on applications and side effects. *Emirates Journal of Food and Agriculture*, *28* (6), 366.

3.Russell, N. J., & Gould, G. W. (Eds.). (2003). *Food preservatives*. Springer Science & Business Media.

4.Parke, D. V., & Lewis, D. F. V. (1992). Safety aspects of food preservatives. *Food Additives & Contaminants*, *9*(5), 561-577.

5.Rasooli, I. (2007). Food preservation–a biopreservative approach. *Food*, *1* (2), 111-136.

6.Bhattacharya, S., & Salama, H. H. A. E. A. (2023). *Natural Food Preservatives*. CRC Press.

7.Talib, A., Samad, A., Hossain, M. J., Muazzam, A., Anwar, B., Atique, R., ... & Joo, S. T. (2024). Modern trends and techniques for food preservation. *Food and life*, *2024*(1), 19-32.

8.Hernández-Lozada, G., Pérez-Flores, J. G., García-Curiel, L., González-Olivares, L. G., Contreras-López, E., Escobar-Ramírez, M. C., & Pérez-Escalante, E. (2025). Application of bacteriocins in food preservation and safety: A bibliometric analysis approach. *Food Science Today*, *4*(1), 12-22.

9.Mwale, M. M. (2023). Food additives: Recent trends in the food sector. *Health Risks of Food Additives-Recent Developments and Trends in Food Sector*.

10.Owusu-Apenten, R., & Vieira, E. (2022). Food Additives. In *Elementary Food Science* (pp. 355-376). Cham: Springer International Publishing.

11.Li, Q., Hou, J., Stevenson, J. S., & Liu, C. (2025). An integrated approach can improve China's food additives security. *Trends in Food Science & Technology*, 104904.

12.Said, N. S., & Lee, W. Y. (2025). Pectin-Based Active and Smart Film Packaging: A Comprehensive Review of Recent Advancements in Antimicrobial, Antioxidant, and Smart Colorimetric Systems for Enhanced Food Preservation. *Molecules*, *30*(5), 1144.

13.Demirgül, F., Kaya, H. İ., Ucar, R. A., Mitaf, N. A., & Şimşek, Ö. (2025). Expanding Layers of Bacteriocin Applications: From Food Preservation to Human Health Interventions. *Fermentation*, *11*(3), 142.

14.Reddy, N. B. P., Indumathi, C., Deotale, S., Nath, P. C., Ashoksuraj, B. S. R., Rajam, R., & Thivya, P. (2025). Recent developments and innovative application of propolis in the food industry: a natural preservative from honeybee waste. *Food Science and Biotechnology*, 1-21.

15.Maddaloni, L., Gobbi, L., Vinci, G., & Prencipe, S. A. (2025). Natural Compounds from Food By-Products in Preservation Processes: An Overview. *Processes*, *13*(1), 93.

16.Ratnasekhar, C. H., Khan, S., Rai, A. K., Mishra, H., Verma, A. K., Lal, R. K., ... & Elliott, C. T. (2025). Rapid metabolic fingerprinting meets machine learning models to identify authenticity and detect adulteration of essential oils with vegetable oils: Mentha and Ocimum study. *Food chemistry*, *471*, 142709.

17.Oliveira, T. S., Almeida, R. C. D. C., Silva, V. D. L., Ribeiro, C. V. D. M., Bezerra, L. R., & Ferreira Ribeiro, C. D. (2025). Enhancing Beef Hamburger Quality: A Comprehensive Review of Quality Parameters, Preservatives, and Nanoencapsulation Technologies of Essential and Edible Oils. *Foods*, *14*(2), 147.

18.El Hassani, N. E. A., Baraket, A., & Alem, C. (2025). Recent advances in natural food preservatives: a sustainable solution for food safety and shelf-life extension. *Journal of Food Measurement and Characterization*, *19*, 293-315.

19.Alam, M. W., Saravanan, P., Al-Sowayan, N. S., Almutairi, H. H., Rosaiah, P., Prakash, N. G., & Ko, T. J. (2025). Polysaccharides and proteins based edible coatings for food protection: classification, properties, & public demands (2020–2024). *Journal of Food Measurement and Characterization*, 1-24.

20.Nie, X., Zuo, Z., Zhang, R., Luo, S., Chi, Y., Yuan, X., ... & Wu, Y. (2025). New advances in biological preservation technology for aquatic products. *npj Science of Food*, *9*(1), 15.

भारतीय जनजातीय जनसँख्या में परिवर्तन का विश्लेषण

डॉ. सारदा प्रसाद
सहायक आचार्य
प्रसार एवं विकास अध्ययन विद्यापीठ
इग्नू नई दिल्ली -110068 **Mob**. 8368982167

सारांश-

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366 (25) के अनुसार अनुसूचित जनजातियों को उन समुदायों के रूप में संदर्भित करता है, जो संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार अनुसूचित हैं। इंसान चरित्र से स्वार्थी होता है लेकिन इतना भी स्वार्थी नहीं होना चाहिए कि किसी की जिंदगी को परेशानी में डाला जाये और उसके विकास की सारी हदें या सारे दरवाजे बंद कर दिए जायें | विकास का मुख्य उद्देश्य समानता और समरसता होता है और अगर विकास एक तरफ़ा और समाज के एक पहलू का हो तो वो समाज में अराजकता और भ्रष्टाचार और असमानता और सामाजिक विद्रोह पैदा करता है/ कुछ अख़बारों में छापे हुई समाचार की सचाई यहाँ दर्शना चाहते हैं कि कैसे जनजाति की भलाई वाली योजना का लाभ पढ़े-लिखे और अमीर दुरपयोग करते हैं | हर रोज सामाजिक भेदभाव की घटनाये भारत में होती हैं और उनका रूप बहुत ही तरह का होता हैI जैसे नीचे तस्वीरों में दिखाया गया है कि कैसे लोग जनजाति का प्रमाणपत्र बनवाकर लाभ के पद पर रह कर उन्ही का शोषण करते है और जातिवादी सोंच के साथ ही छुआछूत जैसे अमानवीय घटनाएं भी होती हैI अब ये बात सोंचने वाली है कि क्या ये सब अनपढ़ और अनभिज्ञ लोग करते है या कोई षड्यंत्र है जिसको पूर्व नियोजित तरीके से किया जाता हैI

क्या इसका प्रभाव आने वाली पीढ़ी पर सकारात्मक पड़ेगा या समाज में सामाजिक दूरियां बढेंगीI किसी भी रूप में सामाजिक समानता कायम करने में साहित्यकारों का अहम भूमिका थी और हमेशा रहेगी, इसलिए साहित्यकार समाज का वर्तमान और भविष्य का आईना होता है जो भूतकाल के अनुभव से वर्तमान और भविष्य का रास्ता निर्धारित करता हैI समाज को भाषा, भेष-भूसा, खानपान, रहन-सहन, कर्म, रंग आदि के आधार पर बाँट सकते है पर क्या मानव के प्राकृतिक स्वाभाव और प्राकृतिक संरचना को भी बांटा जा सकता हैI जनजाति और सभी जाति के लोगों में अगर कोई अंतर है तो वह है भाषा का और अगर सब की भाषा एक हो जाये तो शायद समाज को विकसित करने में ज्यादा समय नहीं लगेगाI कोई भी भाषा प्राकृतिक नहीं होती है ये अपने तरीके से अपने लिए अपनों के द्वारा संचार का माध्यम मात्र हैI अगर कोई भाषा प्राकृतिक होती तो नया जन्म लेने वाला शिशु अंग्रेजी में, संस्कृति में, हिंदी,उर्दू, पंजाबी, बंगाली, फ्रेंच, रसियन (रूसी), चीनी, जापानी आदि में रोताI इसलिए समाज में व्याप्त बुराईयाँ सिर्फ वाद से होती है और ये वाद है – भाषावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, धर्मवाद, रंगभेदवाद, और अन्य तरह के वाद | जनजातियों की संख्या बढ़ना ठीक है, पर नीति विरुद्ध अतार्किक तरीके से बढ़ना देश व समाज के लिए घातक हो

सकता है I जो जनजाति जन्म से है उनका पूर्ण विकास से पहले और जातियों को जनजाति बना देना ये एक अन्याय ही नहीं बहुत बड़ा धोखा है उन अशिक्षित और बेरोजगारों के लिए|

बीज शब्द:- शिक्षा, स्वास्थ, जनजातीय, जनसँख्या, भाषा, साहित्य-मूल्य

मूल आलेख-किसी भी देश व व्यक्ति के समावेशी विकास में अर्थव्यवस्थाओं में विकास रणनीति की भूमिका अहम् है। नब्बे के दशक में जबसे आर्थिक सुधारों पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है तब से मानव कल्याण योजना के विकास और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ असमानताओं में कमी विशेष रूप से कमजोर सामाजिक समूह, जैसे एसटी, एससी, इत्यादि मे हुई है। इस कल्याण की योजनाओं में व्यक्तिगत लाभ शामिल है जैसे शिक्षा, रोजगार, स्वस्थ्य देखभाल, पोषण स्तर, बिजली और जल आपूर्ति, स्वच्छता, आवास इत्यादिI आखिरी दशक के दौरान राज्यों/ केंद्रशासित प्रदेशों में जनजाति अनुसूची में कुछ बदलाव किये गए है और उस सूची मेंकुछ नई जातियों को सम्मिलित किया गया हैI 2001 की जनगणना के बाद अनुसूचित जनजातियों की सूची राज्यों / केंद्रशासित प्रदेशों में कुल मिलाकर संशोधनों की संख्या, जोड़ों के रूप में मौजूदा में समानार्थी / उप-समूह प्रवेश, मुख्य प्रविष्टि / मुख्य के रूप में जोड़ समानार्थी / उप-समूह के साथ प्रवेश, अनुसूचित जाति सूची, हटाना, क्षेत्र से स्थानांतरण प्रतिबंध ओमेटेड, क्षेत्रीय प्रतिबंध लगाया / परिभाषित, प्रतिस्थापन और पहले प्रविष्टि में संशोधन।

व्यापक रूप से जनजाति दो अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों - मध्य भारत और उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में रहते हैं। जिसमे अनुसूचित जनजाति आबादी का आधा हिस्सा मध्य भारत में केंद्रित है, यानी, मध्य प्रदेश (14.6 9%), छत्तीसगढ़ (7.5%), झारखंड (8.2 9%), आंध्र प्रदेश (5.7%), महाराष्ट्र (10.08%), उड़ीसा (9.2%), गुजरात (8.55%) और राजस्थान (8.86%)। दूसरा क्षेत्र उत्तर पूर्व भारत का हैI जिसमें मिजोरम में सबसे ज्यादा जनजाति है, वहीं सबसे कम जनजाति उत्तर प्रदेश में है जो की क्रमशः ९४.४३ व ०.५७ % है.

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366 (25) के अनुसार अनुसूचित जनजातियों को उन समुदायों के रूप में संदर्भित करता है, जो संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार अनुसूचित हैं। अनुच्छेद 342, जनजातियों या आदिवासी समुदायों या जनजातियों या जनजातीय समुदायों के भीतर के समूहों के विनिर्देशों के लिए प्रदान करता है जो कि राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में अनुसूचित जनजातियों के संविधान के प्रयोजनों के लिए समझा जाता है। अनुसूचित जनजाति के रूप में दूसरे समुदाय को शामिल करना एक सतत प्रक्रिया है। जनजाति समुदाय की विशेषताएं, जिसे लोकुर समिति द्वारा पहले ही निर्धारित किया गया था, जो अनुसूचित जनजातियों के रूप में पहचाने जाने के लिए है, निम्न है –

अ) आदिम लक्षणों का संकेत (Indications of primitive traits)
ब) विशिष्ट संस्कृति (Distinctive culture)
स) बड़े पैमाने पर समुदाय के साथ संपर्क की शर्म(Shyness of contact with the community at large)
द) भौगोलिक अलगाव (Geographical isolation)
ई) पिछड़ेपन (Backwardness)

उपर्युक्त विशेषताएं जनजाति यानि आदिवासी को परिभाषित करता है और आज २१वीं सदी में भी वही लक्षण को ही आदर्श मानते हैI इस सन्दर्भ में अनुसूचित जनजाति और आदिवासी में अंतर को समझना होगाI सभी आदिवासी अनुसूचित जनजाति है लेकिन सभी अनुसूचित जनजाति संविधान के अनुसार आदिवासी नहीं हैI यानि जिन जातियों को अनुसूचित जनजाति के सूची में सम्मिलित किया गया है चाहे जिस जाति व धर्म का हो. हिमाचल और कश्मीर के ब्राह्मण भी अनुसूचित जनजाति कहलाते है जबकि वो आदिवासी नहीं थे क्योंकि संविधान के अनुसार उन जातियों को अनुसूचित जनजाति माना जाये जो जनजाति क्षेत्र में जन्म लिए है यानि वो हर व्यक्ति चाहे आदिवासी हो या नहीं, वो सब अनुसूचित जनजाति हैI २१वीं सदी में कुछ जनजातियों ने अपने को मुख्यधारा से जोड़ा और वहीं दूसरे पहलूओं को देखने से आज भी बहुत से लोग मुख्यधारा से दूर है और अलग थलग पड़े हुई है. इसके बहुत से कारण हैं, लेकिन जो मुख्य कारण है वो है आधुनिक शिक्षा का विकास और उनके लिए उनके हिसाब से उनकी भाषा में शिक्षा और विकास की नीति नहीं हो पाना है और अगर बन भी गया तो नीति को ठीक से लागू नहीं किया गया है. जबकि कुछ आदिवासी समुदायों ने मुख्यधारा को अपनाया है, स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर, कुछ अनुसूचित जनजातियां हैं, विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (पीवीटीजी- Particularly Vulnerable Tribal Groups) के रूप में जानी जाती है और उनकी जाति की कुल संख्या 75 है, जिनकी निम्न विशेषताए हैं: -

क) प्रौद्योगिकी के पूर्व कृषि स्तर (Pre-agriculture level of technology)
ख) स्थिर या गिरने वाली आबादी (Stagnant or declining population)
ग) अत्यंत कम साक्षरता (Extremely low literacy)
घ) अर्थव्यवस्था का निर्वाह स्तर (Subsistence level of economy)

जनजातियों की जीवनशैली और विकास की गति मुख्यधारा की तरह आज भी नही है| सभी साहित्य चाहे भाषा के हो या सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञान के हो, ये बताते है कि जनजातियां यहाँ की मुख्य या मूल निवासी हैं और उनकी संपत्ति को किस तरह से उनसे छीना गया था या छीना जा रहा है या उनको अस्वासन देकर उनको छाला गया था, आज ये सोंचने की बात है कि अभी भी उनके जीने के तरीके और रहन सहन के तरीकों में आशानुरूप परिवर्तन नहीं हुआ हैI उसके बहुत से कारण है जिसका विस्तार से इस लेख में नहीं कर सकते है.

सब भाषा और साहित्य के विद्वान जो आज जनजाति साहित्य या कोई भी साहित्य लिख रहे हैं, वो साहित्य भविष्य के लिए पथ प्रदर्शक होगा और आनेवाली पीढ़ी उसी के अनुसार अपने को जानेगी कि पहले वो क्या थे, क्या है और आगे क्या हो सकते है . सभी साहित्यकारों को पता होगा कि जनजाति कि जनसँख्या हर साल व हर दशक में बढ़ती ही जाती है लेकिन २००१ से २०११ में जो जनजातियों की जनसँख्या बढ़ी है, वो हम सबसे लोक सवाल करती है कि क्या कारण है जो जनजाति में इतनी ज्यादा वृद्धि हुई है. इस लेख का मुख्य उद्देश्य निम्न हैं:

१- जनजातियों की संख्या में कैसे और कहाँ और कितनी वृद्धि हुई
२- एक दशक में जनसँख्या में इतनी ज्यादा वृद्धि कैसे हुई

इस लेख में जो भी आंकड़े और साहित्य प्रयोग किया गए है वो भारत सरकार की जनगणना २००१ व २०११ और राष्ट्रीय प्रतिदर्श

२०१६ का है और बहुत से प्रतिलेखन व विवरण को सम्मिलित किया गया हैI जनगणना के अनुसार जनजातियों को ३० राज्य में नोटिफाई यानि चिन्हित किया गया है जो ७०५ संजाति समूह में पाए जाते है.

जनजाति संख्या में वृद्धि-किसी भी देश की जनसँख्या मुख्यतः दो कारणों से बढ़ती है - प्राकृतिक और अप्राकृतिक क्रमशः उस देश की जन्म दर और पलायन दर . ये सर्व विदित है की जनजाति की जन्मदर दूसरों की अपेछाकृत अधिक है लेकिन जिस दर से जनजाति की संख्या में वृद्धि हुई वो प्राकृतिक वृद्धि नहीं माना जा सकता है. जनजाति जी संख्या बढ़ने के चार कारण मुख्यतः चिन्हित किये गए है जो निम्न है -

१-प्राकृतिक वृद्धि जो जन्म दर पर आधारित है (fertility rate)

२-पलायन - स्थाई व अस्थाई रूप से (माइग्रेशन)

३-दूसरे समुदाय को अनुसूचित जनजाति के सूची में सम्मिलित करना (Inclusion)

४-अनुसूचित क्षेत्रों के विस्तार के लिए प्रावधान (पीईएसए)(**पंचायत के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996** or PESA) (Schedule area एक्सपेंशन)

अगर हम २०११ जनगणना पर नजर डाले तो पता चलता है कि १०.४३ करोड़ जनजाति कि संख्या है जो कि भारत कि कुल जनसँख्या का ८.६ % है. उनमे से ९०% ग्रामीण इलाके में रहते हैं और बाकि शहरी परिवेश में. लेकिन २००१ से २०११ के बीच २३.६६% **जन-जाति** संख्या कि वृद्धि हुई जबकि भारत की पूरी आबादी में १७.६९% कि वृद्धि हुई है. पुनः अगर हम जनगणना १९६१ से २०११ तक देखे तो जनजाति की संख्या में २४२.५ % की वृद्धि हुई है जबकि भारत की पूरी आबादी में १७५% की वृद्धि हुई हैI जनगणना १९६१ के अनुसार जनजाति की संख्या ३०.१ करोड़ थी वही २०११ में बढ़ कर १०४.३ करोड़ हो गयी है/ सबसे ज्यादा जनजति की संख्या १९७१ से १९८१ से दौरान हुई थी जो करीब ३६% थी (तालिका 1)I

तालिका 1: जनजाति आबादी के अनुपात में रुझान १९६१ से २०११ के दौरान

जनगणना वर्ष	कुल आबादी (दस लाख)	जनजाति आबादी (दस लाख)	जनजाति का अनुपात %
1961	439.2	30.1	6.9
1971	547.9	38.0	6.9
1981#	665.3	51.6	7.8
1991*	838.6	67.8	8.1
2001$	1028.6	84.3	8.2
2011	1210.8	104.3	8.6

#Excludes Assam in 1981, * Excludes J&K in 1991

$ the figures exclude MAO-Maram, Paomata and Purul Sub-divisions of Senapati District of Manipur, 2001

भारत का मानचित्र दर्शाता है की कहा जनजाति की संख्या कितने सघनता पर हैI उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, केरल और तमिलनाडु में जनजाति सबसे कम है जो ५% से नीचे है.

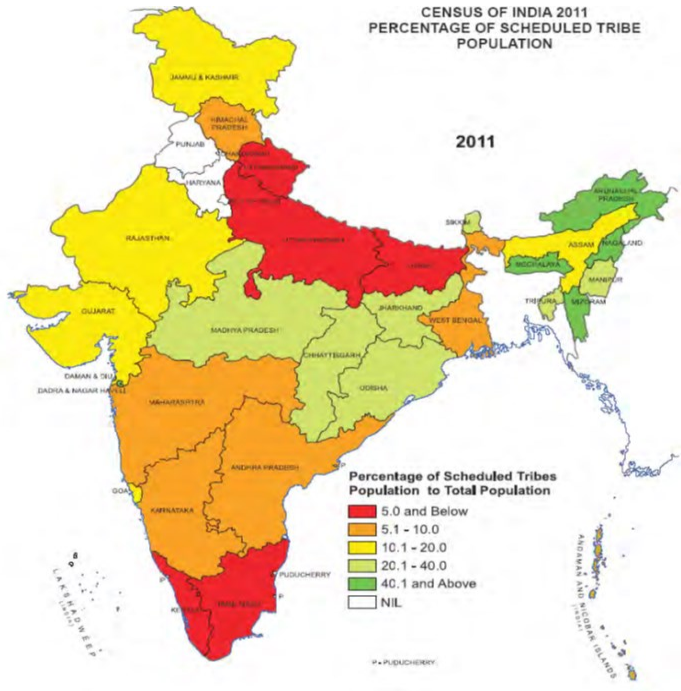

सारणी 2: 2001 से 2011 के दौरान जनसंख्या

राज्य	जनजातियाँ %			कुल जनसँख्या %		
	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी
भारत	**23.66**	**21.31**	**49.72**	**17.69**	**12.25**	**31.8**
गोवा	26274	46026	16293	8.23	-18.51	35.23
उत्तर प्रदेश	950.61	975.97	750.41	20.23	17.97	28.82
सिक्किम	85.23	64.01	312.95	12.89	-4.99	156.52
बिहार	76.25	77.07	61.68	25.42	24.25	35.43
हिमाचल प्रदेश	60.32	57.93	135.61	12.94	12.65	15.61
जम्मू और कश्मीर	35.02	33.41	67.92	23.64	19.42	36.42
अरुणाचल प्रदेश	34.98	30.28	63.81	26.03	22.56	39.27
केरल	33.13	23.73	265.19	4.91	-25.89	92.76
राजस्थान	30.16	29.4	43.58	21.31	18.96	29.01
दादरा और नगर हवेली	30.12	18.47	181.41	55.88	7.7	218.24
मेघालय	28.25	26.99	35.07	27.95	27.17	31.12
मध्य प्रदेश	25.2	24.73	32.13	20.35	18.42	25.69
मिजोरम	23.45	17.77	29.44	23.48	17.4	29.65
कर्नाटक	22.66	16.88	54.72	15.6	7.4	31.54
महाराष्ट्र	22.54	20.3	37.9	15.99	10.36	23.64
तमिलनाडु	22.01	19.8	34.18	15.61	6.61	27.05
झारखंड	21.98	21.05	32.34	22.42	19.58	32.36
मणिपुर	21.8	12.07	217	18.63	9.14	44.83
पश्चिम बंगाल	20.2	17.38	63.38	13.84	7.68	29.72
गुजरात	19.2	16.82	45.69	19.28	9.31	36
छत्तीसगढ़	18.23	15.42	68.24	22.61	17.78	41.84
आंध्र प्रदेश	17.79	12.59	81.86	10.98	1.73	35.61
ओडिशा	17.75	16.84	33.37	14.05	11.77	26.94
त्रिपुरा	17.45	15.45	93.66	14.84	2.22	76.17
असम	17.4	16.19	42.16	17.07	15.47	27.89
उत्तरांचल	13.97	10.25	70.13	18.81	11.52	39.94
दमन और दीव	9.76	-31.92	175.76	53.76	-40.12	218.84
लक्षद्वीप	6.63	-58.2	89.78	6.3	-58.02	86.64
अंडमान और निकोबार द्वीप	-3.19	-6.12	79.17	6.86	-1.19	23.49
नगालैंड	-3.55	-15.36	75.71	-0.58	-14.55	66.57

स्रोत : भारत की जनगणना २०११ व २००१

तालिका-२ में पुनः राज्यवार जनसंख्या का आंकलन करने पर पाते है कि दो राज्यों में अविश्वनीय जनजाति संख्या वृद्धि का पता चलता है और वो दो राज्य है गोवा जहाँ २६७२४% की जनजाति में वृद्धि हुई है २००१ और २०११ के बीच में. गोवा में जनजति की मुख्य जाति ये है - गोवा संविधान (गोवा, दमन और दीव) अनुसूचित जनजाति आदेश, 1968 के अनुसार और 1987 के अधिनियम 18 द्वारा डाला गया- ढोडिया, डब्लूबा (हलपाती), नायकदा (तालाविया), सिद्दी (नायक) व वर्ली। गौड़ा और कुनबी जनजाति समुद्रतट पर रहते है और इनको वहां का मूलनिवासी नहीं माना जाता है/ ये कोंकण क्षेत्र से गोवा को पलायन किये थे जो मुख्यतः क्रिस्चियन कम्युनिटी से सम्बन्ध रखते है। गोवा में सबसे ज्यादा जनजाति की वृद्धि ग्रामीण परिवेश में हुई है/ गोवा में जनजाति की संख्या बढ़ने का मुख्य कारण नई जातियों को जनजाति में सम्मिलित करना है/

इसके बाद उत्तर भारत के जनसँख्या की दृष्टि से सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में जनजाति की संख्या में ९५०.६% की वृद्धि हुई है एक दशक में. उत्तर प्रदेश के परिधीय क्षेत्र में आदिवासी, संविधान (अनुसूचित जनजाति) (उत्तर प्रदेश) आदेश, 1967 के अनुसार -बागा, भार, भोकसा, बांध, चेरो, गोंड, कोल और कोरवा जैसे कई जनजातीय समुदायों का घर हैं। इन आदिवासी समुदायों में से पांच को भारत सरकार द्वारा वंचित अनुसूचित जनजातियों के रूप में दोबारा जोड़ा गया है, जैसे- थारस, बोक्सस, भोटियास, जौनसवारिस और राजिस। – भोटिया, बुक्सा, जौनसारी, राजी, व थारू। रेंकेआयोग (२००८) के अनुसार उत्तर प्रदेश की बहुत सी जातियों को अनुसूचित जाति के अंदर अधिसूचित किया गया था जो इसप्रकार है –

1.आभाया, 2. आहेरिया (बेहेलिया), बेहेलिया, 3. ऑधर, 4. बदाक, 5. बैरिया, बेडिया, 6. बंजारा, 7. बंसी, 8. बरवर, 9.बावडिआ, 10. बेलदार, 11. भर, 12.भाँतु, 13.भट, 14.भात्री, 15.बोरिया, 16.बृजवासी, 17.चमार, 18. चमरमाँगता, 19. दलेश कहर, 20. दर्जी, 21। डॉम, 22. गादोला, 23. घोसी (हिंदू), 24. गोदनहार, 25. गोसाईं, 26. गुर्जर, 27. हाबुरा, 28. जोगी, 29. कंजर, कंजाद या कुचबांगिया, 30. कलंदर, फकीर, 31. कपारिअ, 32. कर्मांगिया (हिंदू महावत), 33। करबा, 34. केवट, 35. उतार प्रसाद, खटिक, खतेक, 36. खुरपालता, 37. कीगिरिया, 38. कुंकली, 39. लोध, 40. लोना चमार, 41. मदारी, 42. महावत तथ लुंगिपथन, 43.मल्लाह, 44.मेवाती, 45. मुगिआ (Mung), 46.मुसर (वानमानुश), 47. नट या कर्णतक, 48. पालवार दुसाध, 49. परवल , 50. पासी, 51. पिघिआ , 52. संतीआ, 53. टागभट , 54. वैद, 55. सपेरा,56. सिकिगर, 57. सिंघीवाला। भारत में उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त अनुसूचित जनजाति में 2017 के रूप में निम्नलिखित शामिल हैं:

1. अग्रिया (सोनभद्र जिले में)
2. बागा (सोनभद्र जिले में)
3. भोटिया
4. भुईया, भुएन्या (सोनभद्र जिले में)
5. बुक्सा
6. चेरो (सोनभद्र और वाराणसी जिलों में)

गोंड, धुरीया, नायक, पाथारी, राज गोंड (मेहरराजगंज जिलों में, सिद्धार्थ नगर, बस्ती, गोरखपुर, देवरिया, मऊ, आज़मगढ़, जोनपुर, बलिया, गाज़ीपुर, वाराणसी, मिर्जापुर और सोनभद्र)

7.जौनसारी,
8.खरवार, खैरवार (देवरिया, बलिया, गाज़ीपुर, वाराणसी और सोनभद्र जिलों में)
9.पंक, पानिका (सोनभद्र और मिर्जापुर जिलों में)
10.परहिया (सोनभद्र जिले में)
11.पाटारी (सोनभद्र जिले में)
12.राजी
13.सहारा (ललितपुर जिले में)
14.थारू

इस प्रकार से हम कह सकते है जनजाति की संख्या डेनोटिफ़िएड या अधिसूचित करने से ही इतनी अधिक की वृद्धि हुई है/ अब ये प्रश्न उठता है कि इनको सम्मिलित करने के बाद उन जनजाति के ऊपर क्या प्रभाव पड़ेगा जो जन्म से जनजाति है। क्या वो सभी जनजाति का विकास हो गया जो और जातियों को सम्मिलित करने की जरुरत पड़ी या राजनीतिक खेल है जो वोट बैंक और विशेष जाति के लोगों को लाभ पहुचाने के लिए किया गया है। सरकारी रियायत जो जनजाति को मिलना चाहिए क्या वो मिलेगा या जो नई जाति जनजाति में सम्मिलित हुई है उनको इसका फायदा होगा/ इसपर आगे लिखेंगे।

हम पुनः तालिका २ पर नजर डाले तो पाते है भारत के ३६ राज्य में से केवल 31 राज्यों में ही जनजाति है और जिनमे जनजाति नहीं है वो राज्य है दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ़ और पॉन्डिचेरी। सिर्फ नागालैंड और अंदमान और निकोबार द्वीव समूह में जनजाति कि संख्या में कमी हुई है बाकि हर राज्य में जनजाति कि संख्या में वृद्धि हुई है. तालिका-२ दर्शाता है कि कितने जिलों में कितना प्रतिशत जनजाति है। जनगणना 2011 के अनुसार, 640 जिलों हैं देश में से 631 ग्रामीण जिले है। 5879 उप जिले है, (तहसील), 597483 गांव, 8398 कस्बों और 82251 वार्ड है। तालिका-३ में जिला स्तर पर, 2011 की जनगणना से पता चलता है कि 90 जिले हैं जहां एसटी जनसंख्या 50 प्रतिशत या उससे अधिक है।

तालिका 3: अनुसूचित जनजाति जिलेवार

% अनुसूचित जनजाति	जिलों की संख्या
<1	55
1 to 5	282
6 to 20	134
21 to 50	79
50+	90

कहीं - कहीं जनजाति क्षेत्र में कोई बाहरी आदमी जमींन नहीं खरीद सकता है, वहां की जनजाति जनसँख्या कैसे बढ़ी, ये अनुसन्धान का विषय है, और सभी साहित्यकारों को इस पर काम करना चाहिए और

ये पता करना चाहिए की क्यों और किस स्तर तक जनजाति की संख्या में समय समय पर परिवर्तन हुआ है लेकिन इतनी ज्यादा दर से ये सोंचने का विषय हैI अनुसूचित क्षेत्रों के वृद्धि से भी संख्या बढ़ी है जो नीचे व्याख्या की गयी हैI

पंचायत के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 or PESA -

पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 या पीईएसए भारत सरकार द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए पारंपरिक ग्राम सभाओं के माध्यम से स्वशासन सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार द्वारा अधिनियमित एक कानून है। अनुसूचित क्षेत्र भारतीय संविधान के पांचवें अनुसूची द्वारा पहचाने जाने वाले क्षेत्र हैं। अनुसूचित क्षेत्र भारत के दस राज्यों में पाए जाते हैं जिनमें जनजातीय समुदायों की जनसंख्या अधिक होती हैi अधिनियम के तहत जितने भी लोग उस एरिया में जन्म लेंगे वो अनुसूचित जनजाति कि श्रेणी में आएंगे. इसलिए बहुत से जाति जैसे - हिमाचल, कश्मीर, उत्तराखंड, पूर्वी राज्य में ब्राह्मण, गुर्जर आदि अनुसूचित जनजाति में आते है और इनको फायदा भी मिलता है जैसे आरक्षण आदि मेंI

२१वीं सदी में जनजाति साहित्य-

जैसे कि पहले ही लिख चुके है जनजाति साहित्य में चुनौतियां और सम्भावनाये बहुत है लेकिन इसको उस दृष्टि से लिखना चाहिए ताकि आज का जनजाति समुदाय उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीयकरण के साथ कदम से कदम मिला के चल सके और उनके भविष्य के विकास में पथप्रदर्शक बनेI आज के जनजाति साहित्य को पुराणों और वेदो को आधार बनाकर विज्ञान से जोड़ के लिखना होगा और भ्रम और भेदभाव पूर्ण साहित्य को नकारना होगा तब शायद २१वी सदी में जनजाति साहित्य को विश्वपटल में रखा जा सकता है और दूसरे साहित्य से मिल जूल के आगे बढे. २१वीं सदी में जनजाति साहित्य कैसा होना चाहिए इस पर थोड़ी पिक्चर देखिये और ऊपर जो डाटा दिया गया है उसको मिला के साहित्य को लिखना होगा जो बहुभाषी, बहुआयामी और बहु-सांस्कृतिक होI अब ऐसे साहित्य नहीं चाहिए जिसमे पछपातपूर्ण कहानी का वर्णन हो जैसे सबरी ने राम जी को बेर खिलाये और सिर्फ आशीर्वाद के शिवाय कुछ नहीं मिला लेकिन वहीँ सुदामा ने एक चावल खिलाया और श्रीकृष्ण जी ने उनको करोड़पति बना दिया थाI एकलव्य के अंगूठा दान को भी आज के साहित्य में जगह होनी चाहिए, क्योंकि इससे चालाकी और सच्चाई में फर्क पता चलेI भगवान् बिरसा मुंडा और आदिवासी वीरों के कहानी को लिखना होगा और संबुक की हत्या क्यों की गयी और किसने की और किसके कहने पर की ये भी जनजाति साहित्य में होना चाहिएI आज जनजाति साहित्य दुनिया के साहित्य और संस्कृति से मिले जो मानवता को उजागर करता हुआ भविष्य की पीढ़ी को आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करेI झूठी और काल्पनिक साहित्य से सिर्फ समय को गवांया जा सकता है लेकिन जनजातियों के सामाजिक आर्थिक और राजनितिक भविष्य को व वर्तमान को बदला नहीं जा सकता हैI जनजाति साहित्य जन जातियों के लिए जनजातियों के द्वारा व जनजाति के भाषा में लिखा जाना चाहिए ताकि उनके मस्तिष्क को कुंद न किया जा सकेI

शिक्षा-शिक्षा सर्वांगीण विकास की कुंजी है और मानव विकास के लिए अमृत है और समाज विकास के लिए रामबाण/ सर्वरोगहारी (Panacea) हैI जनजाति साहित्य में शिक्षा को बहुत महत्व दिया जाना चाहिए और शिक्षा आधारित कहानिया लिखनी चाहिए/ शिक्षा एक व्यक्तियों के समग्र विकास में महत्वपूर्ण घटक है, जो अधिक से अधिक सक्षम बनाता हैI जागरूकता, और उनके सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण के बारे में बेहतर समझ और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में सुधार में भी सुविधा प्रदान करता हैI शिक्षा भारत में अनुसूचित जनजाति के मामले में सच है। जनगणना २०११ के अनुसार जनजाति साक्षरता दर में 11.86 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो की भारत की पूरी साक्षरता में वृद्धि से ज्यादा है (8.15%) 2001 से 2011 अवधि के दौरानI राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (NSSO) २०१६ के अनुसार जनजाति २.४% स्नातक और स्नातकोत्तर तक शिक्षित है जो बढ़ी सोचनीय और ध्यान देने योग्य हैI हालांकि साक्षरता दर पुरुषों की तुलना में महिलायों की साक्षरता दर कम हैI जनजातियों के लिए शिक्षा उनकी ही भाषा में दी जानी चाहिए और उनको शिक्षित करने का मुख्य तरीका प्रौढ़ शिक्षा और प्रसार शिक्षा ही होगा. अगर हम उनको उनकी भाषा में शिक्षा नहीं दिए तो उनके दिमाग को मरने का तरीका प्रस्तुत करते है उनके सामने.

स्वास्थ्य- शिक्षा के बाद सबसे महत्वपूर्ण विषय स्वस्थ्य का होना चाहिए जनजाति साहित्य मेंI अगर स्वास्थ्य की दशा को देखा जाये तो जनजातियों की स्थिति कुछ बेहतर नहीं हुए हैI जनगणना 2001 के अनुसार, शिशु मृत्यु दर (आईएमआर) और 5 वर्ष से कम मृत्यु दर मध्य प्रदेश में एसटी के लिए दर (यू 5 एमआर) सबसे अधिक है (110 और 16 9 क्रमशः प्रति 1000 जीवित जन्म) उसके बाद अरुणाचल प्रदेश का नाम आता है (104 और 158 क्रमशः प्रति 1000 जीवित जन्म)। प्रसवपूर्व देखभाल भी जनजाति महिलाओं में कम है और अपने खानपान में ९० लौह की गोलियां भी नहीं लिया गर्भावस्था के दौरान जोकि सरकार के द्वारा प्रस्तावित है और अनिवार्यरूप से लेना होता हैI सरकार के प्रयास के बावजूद भी जनजाति क्षेत्रों में उप-केंद्रों, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (सीएचसी), प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (पीएचसी) और अन्य आवश्यक स्वस्थ्य सुविधाएं बहुत ही कम और यदि उपलब्ध भी है तो उनका उपयोग जनजाति के लोग कम करते है/ इसका कारण बहुत है पर स्वस्थ्य केंद्र का दूर होना और समय पर न खुलना व स्वास्थ्य कर्मियों का व्योहार ठीक ने होना मुख्य कारण होता हैI तालिका-४ से यह विदित हो जाता है कि जनजाति को सबसे ज्यादा व्याधि मलेरिया और टाइफाइड होता है फिर पेट की बीमारी होती है/ प्रजनन सम्बन्धी बीमारी जनजाति में होती है लेकिन वो रिपोर्टिंग नहीं देते है सर्वे के दौरान/अधिकांश जनजाति एलोपैथिक दवाएं प्रयोग करते है जो एक सकारात्मक पहलू जो अब जादू टोना झाडफूंक में विश्वास न करके वैज्ञानिक दवाएं अपनाते है. लगभग सभी जनजाति सरकारी अस्पताल को प्रयोग करते हैं. सरकारी अस्पताल प्रयोग करने का मुख्य कारण सस्ता इलाज है जबकि भारत की आधे से ज्यादा लोग निजी अस्पताल का प्रयोग करते है.

अनुसूचित जनजातियों में पुरुषों के अपेक्षाकृत महिलाओं में फल और दूध या दही में विशेष रूप से कम आहार होता हैI दूध या दही साप्ताहिक एसटी पुरुष 33.5 प्रतिशत और एसटी महिलाओं का 41.8 प्रतिशत तक खाया जाता हैI जनजाति महिलाओं के फल का सेवन ज्यादा प्रचलित नहीं है और ७२.६ प्रतिशत महिलाये सप्ताह में एक बार भी फल का सेवन नहीं करती हैंI अधिकांशतः जनजाति महिला व पुरुष में खून की कमी के लक्षण पाए गए हैI जनजाति महिलाओं की अवशत शादी की उम्र १६.५ वर्ष होती है. सबसे ज्यादा एच आई वी और यौन संचारित रोगों की दर जनजाति में ज्यादा पायी जाती है

इसका मुख्य कारण अज्ञानता और अनभिग्यता है जिसकी उनको यौन शिक्षा और स्वस्थ्य शिक्षा से पूर्ण किया जा सकता हैI आज भूमंडलीयकरण के समय में उनकी शिक्षा भी विश्वस्तरीय होनी चाहिए, ताकि वे देश क्या विश्व के किसी भी कोने में जाकर और वहां रहकर अपना जीवनयापन कर सके|

तालिका 4: जनजातियों में व्याधियां/बीमारियां

रोग/व्याधि	पुरुष			महिला			कुल		
	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल
सभी बुखार- मलेरिया टाइफाइड	13.3	9.2	12.7	15.4	15.4	15.4	13.7	10.5	13.2
दुर्घटनाग्रस्त	5.6	5.4	5.6	3.4	6.9	3.9	5.2	5.7	5.3
पेट में दर्द: गैस्ट्रिक और पेप्टिक अल्सर	4.4	5.8	4.6	4.7	3.7	4.6	4.5	5.4	4.6
दस्त की खुराक	2.8	2.5	2.7	3.5	3.0	3.4	2.9	2.6	2.9
हृदय रोग: छाती का दर्द, श्वासहीनता	2.0	4.5	2.3	2.4	3.9	2.6	2.0	4.3	2.3
किसी भी जोड़ में संयुक्त या हड्डी रोग	2.0	3.0	2.1	1.8	.5	1.6	1.9	2.5	2.0
उच्च रक्तचाप	1.6	1.0	1.5	3.1	2.8	3.1	1.8	1.4	1.8
चेतना के नुकसान के साथ बुखार	1.5	.4	1.3	1.9	4.1	2.2	1.5	1.1	1.5
तपेदिक	1.1	.9	1.1	3.5	.3	3.1	1.6	.8	1.5
मोतियाबिंद	1.5	1.2	1.5	1.4	1.1	1.3	1.5	1.1	1.4
कैंसर	1.0	3.5	1.3	1.8	3.2	2.0	1.1	3.5	1.4

Source: NSSO, 2016, 71st round

जनजातीय में रोजगार/व्यवसाय-अगर शिक्षित व्यक्ति स्वस्थ्य रहे तो उसको हर काम करने में लगन होती है और जनजाति साहित्यमें उनके आर्थिक कार्य करने कीस्थिति को भी सम्मिलित करना चाहिए कि वो कौन सा काम तत्परता के साथ कर सकते है और किस हद तक कर सकते है और कहाँ - कहाँ कर सकते है, किसके लिए कर सकते है और उस काम का परिणाम उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनितिक स्तर पर कितना होगा. रोजगार की स्थिति को परिभाषित किया गया कि कोई भी आर्थिक रूप से उत्पादन 'कार्य' की भागीदारी के रूप में परिभाषित किया गया है। इस परिभाषा के अनुसार, संपूर्ण आबादी को तीन मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है- मुख्य श्रमिक, मामूली श्रमिक और गैर -श्रमिक। मुख्य कर्मचारी वे हैं जो वर्ष भर में १८३ दिन या छह माह या इससे अधिक समय तक कोई भी आर्थिक उद्पादक कार्य करते हों I मामूली श्रमिक, जो वर्ष में १८३ दिन से कम कार्य किये हों I गैर-श्रमिक वे हैं जो गणना की तारीख से पहले वर्ष में किसी भी समय काम नहीं किया हैI कार्य गतिविधि की स्थिति जानने के लिए कुछ बिंदु पर ध्यान आकर्षित करते है जैसे – (i) मै काम कर रहा हूं; (ii) काम के लिए खोज या उपलब्ध, यानी बेरोज़गार; (iii) न तो काम करना और न ही 'तलाशना या काम के लिए उपलब्ध '। श्रेणी (i) और (ii) के तहत व्यक्तियों के गतिविधि की स्थिति 'श्रम बल (labour force) के अंतर्गत आती है 'और श्रेणी (iii) के तहत हैं, 'श्रम बल (not in labour force) से बाहर'। जनजाति में सबसे ज्यादा पुरुष श्रमिक है और सबसे ज्यादा प्रतिशत जम्मू-कश्मीर (66.24%) जबकि कुल महिला एसटी श्रेणी में श्रमिक आंध्र प्रदेश सबसे ज्यादा है (48.05%)। पुरुष मुख्य श्रमिक श्रेणी में, जम्मू-कश्मीर राज्य सबसे ऊपर है (81.52%), इसके बाद त्रिपुरा (74.80%) के साथ। जनजाति महिलाये मुख्य कार्यकर्ता की श्रेणी में अरुणाचल प्रदेश शीर्ष श्रेणी में जबकि लक्षद्वीप में सबसे कम प्रतिशत है (45.65%)I

ऐतिहासिक रूप से, भारत में अधिकांश जनजातियों की अर्थव्यवस्था शिकार और भोजन एकत्रित करने में किया गया था और उसके बाद में जीविका आधारित कृषि व जंगलों पर निर्भर है। भारत में एक बड़ी संख्या में जनजातीय आबादी ग्रामीण इलाकों में अभी भी रहती हैI आजीविका, खाद्य सामग्री, ईंधन, आवास जैसी बुनियादी आवश्यकताएं, आदि जंगल से लेते हैंI जनजातियों का बड़ा प्रतिशत वन क्षेत्रों के करीब रहने के कारण जनजातियां, समाज के सबसे वंचित वर्ग में गिनी जाती है और उनका प्रति व्यक्ति आय, उनकी साक्षरता दर, स्वास्थ्य की स्थिति और बुनियादी सुविधाओं की पहुंच की कमी रहती हैI जनजातियों के आर्थिक विकास के लिए उनके ही तरीके से उनको कार्य कुशल बनाना होगा जिसको विश्वस्तरीय करने के लिए उनको नए तरीके सिखाने होंगे ताकि वो बिना हिचक और बिना संकोच के उसको अपना लेI आज का समय उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीय करण का है और जनजाति के समग्र विकास के लिए उनको शिक्षा और दीक्षा इसी आधार पर देना होगा और पाखंड और भ्रमित करने वाली शिक्षा से दूर करना होगा. ये बातें आज के जनजाति साहित्य में होना चाहिए और हो सके तो उनके पारम्परिक को आधुनिक व्यवसाय से जोड़ना और उसी व्यवसाय के अनुसार प्रशिक्षण देना सोने पर सुहागा होगा.

बुनियादी सुविधाएं-शिक्षा, स्वस्थ्य और धंधा/रोजगार के बाद जनजाति के रहन सहन और उनके लिए बुनियादी सुविधाओं का भी उल्लेख होना चाहिए जनजाति साहित्य में/ वैसे हर जीव के लिए भोजन जरुरी होता है लेकिन इंसानों के लिए भोजन, वस्त्र और निवास (रोटी, कपडा और मकान) अनिवार्यरूप से होना चाहिए/ बुनियादी सुविधाएं: जनगणना 2011 दिखाता है कि बुनियादी सुविधाओं के मामले में आवास की स्थिति , पेयजल उपलब्धता, स्वच्छता सुविधा, ईंधन का इस्तेमाल, बिजली, संचार सुविधाओं और परिवारों का बैंक खाते और कुछ अचल परिसंपत्तियां आदि में अनुसूचित जनजातियां बहुत ही पिछड़े हैंI राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण २०१६ के अनुसार, जनजाति भोजन पकने में ८४.५ % घर असुरक्षित ईंधन (लकड़ी और चिप) का प्रयोग करते है और लगभग ११% लोग एलपीजी का प्रयोग करते हैI ७०% जनजाति हैंडपंप से पानी पीते है और जिनके घर निकासी नाली नहीं हैI हम कह सकते है कि उनके पास आज भी बुनियादी सुविधाओं की कमी हैI आज बहुत से जगह पर जनजाति के लिए पीने योग्य पानी की व्यवस्था नहीं है. भारत की आजादी के ७० वर्ष बाद भी आज वे लोग बुनियादी सुविधाओं से वंचित है इसका मुख्य कारण हमारी विकास की एक तरफ़ा और नगर केन्द्रित नीति है जो लोग पढ़-लिख गए वे शहर को पलायन कर गए, लेकिन अपने लोगों से दूरियां बना लिया | भ्रष्टाचार भी इसका दूसरा और सबसे

खतरनाक सचाई है जो जनजाति के विकास की बात करते थे वे अमीर हो गये और वनवासी बेचारे वहीं के वहीं रह गए.

जनजाति भाषाएं- भाषा संचार का माध्यम है और विविध हर जगह हर समुदाय की भाषा अलग होती हैI भारत बहु भाषी बहु सांस्कृतिक और बहु-जातीय व धर्मों का देश है जो कि हर कोष में पानी बदले और चार कोष में वाणीI भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएं शामिल है -असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, गुजराती, डोगरी, तमिल, तेलुगू, नेपाली, पंजाबी, बांग्ला, बोड़ो, मणिपुरी, मराठी, मलयालम, मैथिली, संथाली, संस्कृत, सिंधी, और हिंदीI जनजाति की भाषाएँ उनके परिवार व जन्म से सम्बंधित होती है और इस हिसाब से भारत में अनेको भाषाएं जनजाति अपने क्षेत्र के हिसाब से बोलते हैI साहित्यकारों ने इन भाषाओं को उनके परिवार के हिसाब से पांच तरीके से विभाजित किया है जैसे इंडो आर्यन परिवार, तिब्बतो-बर्मन परिवार, द्रविड़ियन परिवार, ऑस्ट्रो -एशियाटिक परिवार और अंडमानीज परिवार. तालिका -5 में सारी भाषाओं को इंगित किया गया हैI भारत में सबसे ज्यादा जनजाति भाषा इंडो-आर्यन परिवार की बोली जाती है | उसके बाद तिब्बती-बर्मन और द्रविण परिवार की भाषाएं बोली जाती हैI

अब यहाँ समस्या है कि इतनी भाषाओं की लिपि क्या है और क्या होना चाहिएI इन २२ भाषाओं की लिपि भारत में पहले से ही है और अगर इन सभी भाषाओं की लिपि भी बन जाये तो शायद भाषावाद का विरोध होने की संभावनाएं भविष्य में हो सकती हैI भारत की एकता और अखंडता के लिए त्रिभाषा लिपि तैयार करना चाहिए और ये तीन भाषाएं है - हिंदी, स्थानीय या राज्य भाषा व अंग्रेजी भाषाI इन तीनों भाषाओं से ही जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विकास संभव होगा जो आज के उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीयकरण के युग में बहुत ही जरुरी हैI बहुत सारी लिपि से सीखने की क्षमता को नीरस बनाएगा और समय की बर्बादी होगीI साहित्यकारों को चाहिए की सभी भाषाओं के शाब्दिक अर्थ को सम्मिलित किया जाये ना कि हर भाषा का लिपि तैयार करना चाहिए/ हर भाषा को अनुवाद (ट्रांसलेट) करके उसको सर्वजन के पढ़ने योग्य बनाना चाहिए और लिपि जो पहले से है उसी लिपि में ही जनजाति साहित्य को लिखना चाहिएI ताकि वे विश्व के साथ मिलकर अपना सर्वांगीण विकास कर सकेI

तालिका 5: जनजातियों द्वारा उनके परिवार में बोली जाने वाली विभिन्न भाषाएं

क्षेत्र/राज्य	भाषा का नाम	परिवार
अंडमान द्वीप समूह	ओंगे	अंडमानी
उत्तरी सेंटिनल द्वीप - अंडमान	सतीनेलेज	
उत्तर प्रदेश, झारखड, असम, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल	थारू	इंडो-आर्य
उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश	जौनसारी,	
गुजरात और राजस्थान	भीली,गरासिया,कोकणी	
गुजरात, महाराष्ट्र	मवची	
गुजरात, राजस्थान और महाराष्ट्र	ढकी	
छत्तीसगढ़	बैगानी,धुर्वा,कोरवा	
छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश	हल्बी	
पश्चिम बंगाल	खोट्टा	
बंगाल और असम	चकमा	
बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल	मगही	
मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र	निमारी	
मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र	राठी,कोरकू	
मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात	कोटवालिया	
मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, उड़ीसा, प बंगाल	लमनी	
महाराष्ट्र, गुजरात, दादरा और नगर हवेली	वार्ली	
मेघालय, असम, अरुणाचल प्रदेश	हाजोंग	
राजस्थान	धुंधरी ,थार	
राजस्थान, गुजरात, आंध्र प्रदेश	वागरी	
राजस्थान, मध्य प्रदेश	हाड़ौती	
हरियाणा, उ. प्र, म प्र, राजस्थान, गुजरात, पजाब, दिल्ली	गुजरी	
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	शोम्पेन, जरावा	ऑस्ट्रो-एशियाटिक
छत्तीसगढ़, झारखंड, पश्चिम बगाल, ओडिशा, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, असम, त्रिपुरा	खरिआ	
झारखंड	आसुरी ,मुंदरी	
झारखड, असम, ओडिशा, त्रिपुरा, पश्चिम बगाल, असम	संताली	
झारखंड, ओडिशा	हो	
निकोबार द्वीप समूह	निकोबारी	
पश्चिम बगाल, ओडिशा	लोढ़ा	
महाराष्ट्र	कुर्मी	
अरुणाचल प्रदेश	आदिकाशिन्गे ,अपातानी ,डफ ला ,मोनपा,सजालौंग ,ज़खरिंग	तिब्बती-बर्मन
अरुणाचल प्रदेश, असम	सिंगफो	
अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड	कोन्याक	
असम	बोडो,मिशिंग,टैग करे	
असम, अरुणाचल प्रदेश	देवरी,शेरदुकपेन	
उत्तराखंड	भोटिया	
कश्मीर	बाल्टी	
नगालैंड	औ ,नागा,रेंगमा ,वांचो	
मणिपुर	कोइरंग ,पाइते,ज़ोउ	
मणिपुर, असम, मेघालय, त्रिपुरा	वैफेई	
मणिपुर, नागालैंड	चिरु	
मणिपुर, मेघालय, असम	गगटे	
मिजोरम	दृहलियन-झकार,हूआलगो ,मारा	
मिजोरम, त्रिपुरा, असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड	लुशाई	
मिजोरम, मणिपुर, असम	हमार	
हिमाचल प्रदेश	लाहौली	
आंध्र प्रदेश	येरूकुला,सवार	द्रविड़
आंध्र प्रदेश, ओडिशा	कोया	
आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र	कोलामी ,नाइकी	
ओडिशा	कुई,कुवि ,पेंगो ,बान्दो ,जुआग	
कर्नाटक	कोडागू	
कर्नाटक, केरल	कोरगा ,तुलु	
बिहार, झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़	कुरुख	
मध्य प्रदेश	परजी	
मध्य प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़	गोंडी	
मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़	मारिया	

Source: https://www.wordsinthebucket.com/indian-tribal-languages-1

निष्कर्ष-

इंसान चरित्र से स्वार्थी होता है लेकिन इतना भी स्वार्थी नहीं होना चाहिए कि किसी की जिंदगी को परेशानी में डाला जाये और उसके विकास की सारी हदें या सारे दरवाजे बंद कर दिए जायें | विकास का मुख्य उद्देश्य समानता और समरसता होता है और अगर विकास एक तरफ़ा और समाज के एक पहलू का हो तो वो समाज में अराजकता और भ्रष्टाचार और असमानता और सामाजिक विद्रोह पैदा करता है/ कुछ अख़बारों में छापे हुई समाचार की सचाई यहाँ दर्शना चाहते हैं कि कैसे जनजाति की भलाई वाली योजना का लाभ पढ़े-लिखे और अमीर दुरपयोग करते हैं |

हर रोज सामाजिक भेदभाव की घटनाये भारत में होती हैं और उनका रूप बहुत ही तरह का होता हैI जैसे नीचे तस्वीरों में दिखाया गया है कि कैसे लोग जनजाति का प्रमाणपत्र बनवाकर लाभ के पद पर रह कर उन्ही का शोषण करते है और जातिवादी सोंच के साथ ही छुआछूत जैसे अमानवीय घटनाएं भी होती हैI अब ये बात सोंचने वाली है कि क्या ये सब अनपढ़ और अनभिज्ञ लोग करते है या कोई षड्यंत्र है जिसको पूर्व नियोजित तरीके से किया जाता हैI

क्या इसका प्रभाव आने वाली पीढ़ी पर सकारात्मक पड़ेगा या समाज में सामाजिक दूरियां बढेंगीI किसी भी रूप में सामाजिक समानता कायम करने में साहित्यकारों का अहम भूमिका थी और हमेशा रहेगी, इसलिए साहित्यकार समाज का वर्तमान और भविष्य का आईना होता है जो भूतकाल के अनुभव से वर्तमान और भविष्य का रास्ता निर्धारित करता हैI समाज को भाषा, भेष-भूसा, खानपान, रहन-सहन, कर्म, रंग आदि के आधार पर बाँट सकते है पर क्या मानव के प्राकृतिक स्वाभाव और प्राकृतिक संरचना को भी बांटा जा सकता हैI जनजाति और सभी जाति के लोगों में अगर कोई अंतर है तो वह है भाषा का और अगर सब की भाषा एक हो जाये तो शायद समाज को विकसित करने में ज्यादा समय नहीं लगेगाI कोई भी भाषा प्राकृतिक नहीं होती है ये अपने तरीके से अपने लिए अपनों के द्वारा संचार का माध्यम मात्र हैI अगर कोई भाषा प्राकृतिक होती तो नया जन्म लेने वाला शिशु अंग्रेजी में, संस्कृति में, हिंदी,उर्दू, पंजाबी, बंगाली, फ्रेंच, रसियन (रूसी), चीनी, जापानी आदि में रोताI इसलिए समाज में व्याप्त बुराईयाँ सिर्फ वाद से होती है और ये वाद है – भाषावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, धर्मवाद, रंगभेदवाद, और अन्य तरह के वाद |

जनजातियों की संख्या बढ़ना ठीक पर नीति विरुद्ध अतार्किक तरीके से बढ़ना देश व समाज के लिए घातक हो सकता है I जो जनजाति जन्म से है उनका पूर्ण विकास से पहले और जातियों को जनजाति बना देना ये एक अन्याय ही नहीं बहुत बड़ा धोखा है उन अशिक्षित और बेरोजगारों के लिए. क्या एक जातिवादी व्यक्ति को अनुसूचित जनजाति बना दिया जाये तो क्या उसकी नियत में सकारत्मक प्रभाव पड़ेगा | बिलकुल नहीं, जबकि वो उनकी सारी लाभ की योजनायों को हड़प लेगा और उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति पहले से बद से बदतर हो जायेगीI इसलिए जनजातीय साहित्य में दिन प्रतिदिन परिवर्तन को दिखाना अत्यन्त आवश्यक हैI

संदर्भ:-

1.भारत की जनगणना (2001). महालेखाकार और जनगणना आयुक्त कार्यालय, भारत, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

2.भारत की जनगणना (2011). महालेखाकार और जनगणना आयुक्त कार्यालय, भारत, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

3.सारदा प्रसाद और प्रवीण कुमार (2013), "मध्य प्रदेश और भारत के अनुसूची जनजातियों के बीच रोग पैटर्न और इसके उपचार" संघर्ष में प्रकाशित: दलित साहित्यिक अध्ययन के ई-जर्नल, अक्टूबर-दिसम्बर,Vol.02(04):52-72,(ISSN-2278-3067) http://dalitsahitya.com/assets/content/volumes/Sangharsh_Vol_02_Issue_04_2013_web

4.https://www.wordsinthebucket.com/indian-tribal-languages-1

5.NSSO (2016), National Sample Survey Organization, 71st round report, Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India. https://www.mospi.gov.in/

दलित आत्मकथा: चेतना, चिंतन और सौन्दर्यबोध

राम चन्द्र[1]
भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्विद्यालय,
नई दिल्ली–110067 मो. 9968293185

प्रवीण कुमार [2]
सहायक आचार्य,हिंदी विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक , मध्यप्रदेश -484887, मो – 9752916192

सारांश: प्रस्तुत शोध आलेख आत्मकथा के सौंदर्यबोधीय तत्वों पर केन्द्रित है, जिसमें सौंदर्यशास्त्र की निर्मिति और स्वरूप की विवेचना की गई है। इस क्रम में यह सत्य उद्घाटित होता है कि सौंदर्यशास्त्र सौन्दर्यबोध व सौन्दर्य चेतना से उत्स लेता है और सामाजिक–सांस्कृतिक सम्बद्ध परिस्थितियों एवं वातावरण के बीच विकसित तथा विस्तारित होता है। आत्मकथा जिन स्वानुभूति से आकार लेती है और समाज सापेक्ष वह स्व निर्मित कथा समाज सम्बद्धता से निकल कर मानवीय मूल्यों से जुड़ जाती है, वहीं से उसका सौन्दर्यबोध जीवन-सौन्दर्य में तब्दील हो जाता है । इस आलेख में इसी का विस्तार है । यूँ कह सकते हैं कि दलित आत्मकथा का सौंदर्यशास्त्र जीवन-सौन्दर्य की सापेक्षता का सौंदर्यबोध है।

बीज शब्द: दलित, चेतना, चिंतन, मुक्ति, श्रम, आंदोलन, आत्मकथा, सौन्दर्य, सौन्दर्यबोध, सौंदर्यशास्त्र, स्वानुभूति, जीवन सौन्दर्य, मानवीय मूल्य, सामाजिक संरचना, सामाजिक परिवर्तन, रचनाधर्मिता।

मूल आलेख: किसी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र कैसे निर्मित होता है? उसकी प्रक्रिया और चिंतन का आयाम एवं फलक कैसा हो?यह एक सतत चिंतन का विषय है और समय-सापेक्ष रचनाधर्मिता पर निर्भर करता है अपितु यह सर्वविदित है कि सौन्दर्यशास्त्र सौन्दर्यबोध पर आश्रित है। सौन्दर्यबोध और उस बोध से निर्मित सौन्दर्यशास्त्र के विषय में विचार करने हेतु संपूर्ण पद्धति एवं प्रविधि से गुजरना ही होगा, क्योंकि किसी भी शास्त्र और बोध के उत्स, विकास एवं सम्वर्द्धन में यही भूमि उर्वरा शक्ति की तरह है। गोविन्दचन्द्र पाण्डे के अनुसार सौंदर्यशास्त्र में सौन्दर्य विषयक अनुशीलन की त्रिपर्वा ज्ञान पद्धति है – एक प्रत्यक्ष दर्शन बोध, दूसरा ज्ञान विषय का परीक्षण और तीसरा न्याय से उसकी अन्वीक्षा।(पाण्डे : 28) यूँ कह सकते हैं कि सौन्दर्य के स्रोत जीवन, कला और प्राकृतिक दृश्य को प्रथम अनुभूति से उत्पन्न बोध, ज्ञान और उस ज्ञात विषय के परीक्षण, चिंतन-मनन के पश्चात् न्याय से उसकी अन्वीक्षा करनी होती है तब जाकर सौन्दर्यबोध की समग्रता प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया से ही सौन्दर्य की पूर्णता और सार्वभौमिकता की तलाश की जा सकती है। कला के सौन्दर्यबोध की सार्वभौमिकता तो यह है कि वह जीवन सौन्दर्य का बोध कर दें। प्रवीण कुमार ने साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के निर्माण के चरणों को कुछ इस प्रकार रेखांकित किया है। (कुमार: 2022: 176) :

1.सौन्दर्यशास्त्र कला-साहित्य की आलोचना का दर्शन है और यह सौन्दर्यबोध पर निर्भर करता है।
2.प्रत्येक युग और देशकाल में कला-साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र भिन्न-भिन्न है।
3.सौन्दर्यबोध सभ्यता-संस्कृति व चिंतन-पद्धति की उपज है और कला-साहित्य के अध्ययन, मूल्यांकन, व्याख्या, विवेचन-विश्लेषण की पद्धति है।
4.यह मानव की वैचारिक दृष्टि है और समय सापेक्ष परिवर्तनशील है।
5.यह मनुष्य की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रस्थिति पर निर्भर करता है।
6.यह सामाजिक संरचना के मूल्यों पर निर्भर करता है।
7.कला-साहित्य में यह उसकी संरचनात्मक जमीन पर निर्भर करता है।
8.समकालीन साहित्य का सौन्दर्यबोध अभी रचनात्मकता के साथ अपना स्वरूप ग्रहण कर रहा है।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में दलित आत्मकथाओं के सौन्दर्यबोध पर आधारित सौन्दर्यशास्त्र की बात करें तो यह कहा जा सकता है कि दलित आत्मकथाओं की जमीन भारतीय समाज की सामाजिक संरचना और उसमें खत्म हो रहे जीवनमूल्यों या उसकी वंचना की है। इन्हीं वंचना से मुक्ति एवं जीवन सौन्दर्य मूल्यों की प्राप्ति हेतु संघर्षों, आंदोलनों और दर्शन-चिंतन की विचारधारा निरंतर फ्लैश होती रहती है।

भारतीय समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना वर्णाश्रम-जाति आधारित है। अतएव इन सरंचनात्मक व्यवस्था के मूल्यों से ही भारतीय समाज की व्यवस्था को सत्तासीन वर्चस्वशाली व्यक्ति या समूह ने मानवीय विकास को संचालित करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में भारतीय समाज में टकराव, संघर्ष और द्वंद्व की स्थिति हमेशा देखने को मिलती है। यह स्थिति द्वैत की है जिसमें एक तरफ वर्चस्वशाली सत्तासीन की संस्कृति की एकांगी दृष्टि है तो दूसरी तरफ मानवीय जीवन मूल्यों की समग्रतावाली दृष्टि है जिसमें वर्णाश्रम-जांतपांत वाली सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था का प्रतिरोध और उसके खात्मा में ही मानवीय जीवन-मुक्ति का संदेश है। वहीं पहली वाली स्थिति में यथास्थिति या कुछ सुधार के साथ वर्णाश्रम जांत वाली व्यवस्था की सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण है जिसमें सत्-चित्-आनंद एवं सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् की ईश्वरीय अवधारणा है। दलित आत्मकथाओं में भारतीय समाज की इन दोनों ही संरचनात्मक व्यवस्थाओं की तस्वीर उभर कर सामने आयी है। इन्हीं सरंचनात्मक व्यवस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में दलित समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रस्थिति का भी आकलन किया गया है। दलित चिंतकों और रचनाकारों ने इस पर प्रश्न चिह्न लगाया है और दलित साहित्य के मूल्यांकन हेतु मानवीय मूल्यों वाली व्यवस्था को मानक बनाया। उन्होंने वर्णाश्रम-जातपांत वाली सामाजिक संरचना को नकारा है। उसके अंत हेतु आंदोलन भी चलाया है।(जूठन,1997:12)

मनुष्य की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रस्थिति उसकी चेतना को निर्मित व निर्धारित करती है। दलित आत्मकथाओं में व्यक्त दलित समाज की चेतना भी भारतीय समाज की संरचना से निर्मित व विकसित है। भारतीय समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था ने वर्णाश्रम-जांतपांत में निम्न पायदान पर स्थित मानुष को मानव ही नहीं समझा। उनकी मानवीय चेतना को मानवीय मूल्यों से वंचित-बहिष्कृत कर रौंदने का काम किया। परिणामतः दलित चेतना ने मानवीय मूल्यों, जीवन मूल्यों को प्राप्त करने और बेहतरीन जीवन हेतु आंदोलन के शक्ल में उस व्यवस्था को नकारने और मानवीयावस्था को सृजित करने का अभियान चलाया। दलित समाज ने अम्बेडकरवादी चिंतन प्रक्रिया की 'डी-कास्ट' की पद्धति को अपनाया। बौद्ध धम्म को स्वीकृत किया। सन् 1956 में डॉ. अम्बेडकर द्वारा बौद्ध धम्म में दीक्षा इसी की परिणति है। तत्पश्चात दलित समाज बौद्ध धम्म की ओर प्रेरित हुआ। मुर्दहिया, जूठन, दोहरा अभिशाप, शिकंजे का दर्द में बौद्ध धम्म की ओर दलित समाज का झुकाव यह प्रस्तावित करता है कि यह समाज समानता की आकांक्षा से प्रेरित समतामूलक समाज का निर्माण करना चाहता है क्योंकि बौद्ध धम्म मानवीय सभ्यता-संस्कृति में सिर्फ समानता और मानवीय मूल्यों के अभ्यास की बात करता है। वहां असमानता,

विषमता, हिंसा, द्वेष-वैर, लालच, पाशविक प्रवृत्तियों के अंत की बात है और जीवन-सौन्दर्य को उत्सव के रूप में बनाना धम्म है। बौद्ध धम्म के 'त्रिसरण', 'पंचशील' और 'आष्टांगिक मार्ग' का पालन जीवन-सौन्दर्य के उत्स और उत्सव को स्वरूप प्रदान करता है। डॉ. तुलसीराम के 'मुर्दहिया' में इस जीवन सौन्दर्य की दोनों पद्धतियों का प्रयोजन मिलता है। 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने एक तरफ वर्णाश्रम व्यवस्था की हकीकत को बयां किया है तो दूसरी ओर ईश्वरीय व्यवस्था को नकारा है। यह नकार बौद्धदर्शन का अनीश्वरवाद के सिद्धांत का प्रतिफलन है जिसमें ईश्वरीय व्यवस्था के अस्तित्व और आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को नकारा गया है और वर्णाश्रमधर्म की व्यवस्था को ही समूल नष्ट करने की बात कही गई है। ये नकार यूं नहीं है दलित साहित्य में। दलित साहित्य में क्रांति के खिलाफ हुई प्रतिक्रांति के खिलाफ प्रतिरोध है। इस क्रांति के खिलाफ हुई प्रतिक्रांति को समझने के लिए डॉ. अम्बेडकर की पुस्तक 'प्राचीन भारत में क्रांति तथा प्रतिक्रांति' को पढ़ना आवश्यक है जिसमें डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध धम्म के उदय को क्रांति की संज्ञा दिया और ब्राह्मणों ने प्रतिक्रांति का मार्ग प्रशस्त किया। फलस्वरूप बौद्ध धम्म की अवनति तथा पतन हुआ। (डॉ.अम्बेडकर, 1995:13) यह प्रतिक्रांति ही समाज में वर्णाश्रमधर्म व्यवस्था करती है और उसे ईश्वरीय मान्यता देती है। हिन्दू दर्शन की धार्मिक पुस्तकें इसी की अभिव्यंजना हैं। जिसके खिलाफ प्रतिरोध का स्वर तत्कालीन समय से ही उभर रहा है। जिसमें जीवन-सौन्दर्य की अवधारणा है। वस्तुतः यह प्रतिरोध ही दलित आत्मकथाओं में जीवन सौन्दर्य बनकर उभरा है जिसका एक स्वरूप वर्णाश्रमधर्म और जांत-पांत वाली व्यवस्था तथा मानसिकता के खिलाफ विरोध, आक्रोश और प्रतिरोध है वहीं दूसरा स्वरूप जीवन मूल्यों की प्राप्ति हेतु संघर्ष और आंदोलन है। जीवन-मूल्यों और उसकी सामाजिकता के बिना जीवन-सौन्दर्य का अस्तित्त्व नहीं है। 'दोहरा अभिशाप' में कौसल्या बैसंत्री ने लिखा है कि- ''आर एस एस की शाखा में डॉ. अम्बेडकर के अनुयायी जाना पसंद नहीं करते थे।''(बैसंत्री,2009: 87) निश्चय ही यह एक प्रतिरोध की संस्कृति के सौन्दर्य का ही उदाहरण है। डॉ. अम्बेडकर ने आर एस एस की विचारधारा को दलित समाज के लिए प्रतिकूल माना परंतु विडम्बना यह है कि वर्तमान का बहुजन समाज अपने जीवन-सौन्दर्य के प्रतिकूल विचारों की आवृत में दिन-प्रतिदिन घिरता जा रहा है जोकि एक चक्रव्यूह की तरह है जिसमें उनके जीवन का सौन्दर्य खत्म ही होगा न कि वह सर्वोर्धित-परिवर्धित होगा।

जीवन सौन्दर्य में अंतर्विरोध, द्वंद्व और हीनताबोध आदि या उससे संबंधित सामाजिक तत्त्वों के लिए कोई जगह नहीं होता है। बहुजन समाज भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था की वर्चस्वशाली चक्रव्यूह में इस कदर फंसा हुआ है कि वह बिना किसी अतिरिक्त बाह्य हस्तक्षेप के हीनताबोध, अपमान, द्वंद्व और अंतर्विरोध के शिकार हो रहे हैं। विचारणीय बात यह है कि दलित आत्मकथाकारों ने अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रस्थिति को छुपाया नहीं है बल्कि उजागर किया, जिससे 'हीनताबोध' की मनोग्रंथि खत्म हुई है। 'हीनताबोध' से मुक्ति की प्रक्रिया ने उनके अस्तित्व को जिंदादिली प्रदान किया है। 'अस्तित्ववाद' और 'मनोविज्ञान' के मणिकंचन संयोग से उत्पन्न आत्मबोध ने मानसिक तौर यह बोध कराया है कि हम भी मानव हैं। मानवीय मूल्यो को जीने का पूरा अधिकार मुझे भी है। मेरे अस्तित्व और अस्मिता को नकारा नहीं जा सकता है। यहीं से दलित समाज में वैचारिक दृष्टि का विकास-पल्लवन हुआ। डॉ. अम्बेडकर और ज्योतिबाफुले ने आधुनिक युगबोध के साथ भारतीय समाज को यही संदेश दिया। उन्होंने जीवनमूल्यों की शिक्षा दी, जिसकी जड़ें गौतम बुद्ध के दर्शन-चिंतन में है। दलित वैचारिकी ने आत्मा-परमात्मा, ईश्वरवादी तंत्र को नकारा है। अमानवीयता के शास्त्र को नकारा है। वहीं बुद्धमय भारत की आकांक्षा सामाजिक परिवर्तन और समतापरक भारत के सपनों की अनुगूंज है दलित आत्मकथाओं में।''(टाकभौरे,2011:304)

उपर्युक्त संदर्भों में समकालीन साहित्य के सौन्दर्यबोध को देखें तो यह बात स्पष्ट होती है कि समकालीन साहित्य की जमीन क्या है? उसकी केंद्रीय विषयवस्तु क्या है? उसके चिंतन में कौन सी विचारधारा है? समकालीन साहित्य की केंद्रीय विषयवस्तु मानव की अस्मिता, अस्तित्व और गरिमा के साथ समाज में समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व एवं न्याय की भावना का संदेश-संचार करना है। उसका सौन्दर्यबोध मानव जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक तत्त्वों के इतिहासबोध के साथ सम्बद्ध होकर निर्मित हो रहा है। इसी परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य और उसके सौन्दर्यबोध देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि दलित साहित्य का सौन्दर्यबोध मानव अस्मिता, अस्तित्व के लिए संघर्षशील और प्रतिबद्ध है और 'जीवन ही सौन्दर्य है' यह उसका केंन्द्रीय चिंतन है। जीवन से इतर कुछ भी नहीं है और न होता है। आत्मा-परमात्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। सत्-चित्-आनंद की अवधारणा झूठी है। साहित्य मानव चेतना की उपज है और उसका सौन्दर्य मानव-जीवन का सौन्दर्य है। इसीलिए जीवन का सौन्दर्यबोध और उसका मूल्य ही साहित्य-कला का मूल्य और सौन्दर्यबोध होना चाहिए। यहां अन्य साहित्य की तरह किसी प्रकार की काल्पनिक रोमांटिसिज्म और स्त्री गौरवर्ण के सौन्दर्यीकरण की अवधारणा नहीं है। वह मानता है कि शारीरिक सौन्दर्य की अवधारणा ही गलत है। उसका अस्तित्व तभी है जब समाज में असुंदर का 'कंसेप्ट' है। वस्तुतः सुंदर-असुंदर नाम की कोई चीज नहीं होती है। वह व्यक्ति की मानसिक धारणा है। यह धारणा ही समाज में असमानता, विषमता, विद्रूपता आदि की स्थितियां पैदा करती हैं। असमानता, विषमता और विद्रूपता की जड़वादी ब्राह्मणवादी अवधारणा के अंत की प्रतिबद्धता और मानव जीवन का सौन्दर्यात्मक 'कंसेप्ट' ने 'ब्लैक इज ब्यूटी' की स्थापना करके समाज में क्रांति का बीजबपन किया है। वह स्त्री-पुरुष के सम-सहसंबंध के बीच अपना सौन्दर्य विकसित करता है। इन्हीं वैचारिकता के बीच दलित साहित्यकारों का लक्ष्य मानव की स्वतंत्रता, समता, बंधुत्त्व और न्याय के प्रति प्रतिबद्धता है, यही उसका सौन्दर्यबोध है। दलित साहित्य की वैचारिक चेतना का सामाजिक सरोकार, उसकी सामाजिकता से ही उसका सौन्दर्यबोध निर्मित और विकसित हुआ है और हो रहा है। समकालीन चेतना प्रदत्त भारतीय सौन्दर्यशास्त्र को यथास्थितिवादी मानती है। समकालीन साहित्य में सौन्दर्यबोध का अर्थ उस विचार, चिंतना, दर्शन व विचारधारा से है जो सामाजिक परिवर्तन में सहायक हो। जिससे भारतीय समाज में आमूल-चूल बदलाव आ सके। वर्चस्व की भाषा को समता की भाषा में रूपांतरण समकालीन साहित्य की अतिमहत्त्वपूर्ण विशेषता है। अनगढ़पन, खुरदरापन ही दलित, आदिवासी और स्त्री साहित्य का सौन्दर्य है। समकालीन साहित्य अतीत और वर्तमान के बीच अपना इतिहास निर्मित करता है। इसी आलोक में इस शोध-पत्र में दलित आत्मकथाओं के सौन्दर्यशास्त्र पर विचार किया जा रहा है।दलित साहित्य समाज की ऐसी ही आलोचना है जिसमें पारंपरिक सामाजिक-व्यवस्था का विरोध और नयी समतापरक सामाजिक-संरचना की स्थापना की कवायद है। दलित साहित्य में दलित आत्मकथाओं ने भारतीय साहित्य में एक नई आलोचना को जन्म दिया है और वह आलोचना साहित्यिक आलोचना की पुरानी परंपरा को तोड़ती है एवं आत्मकथा की नई जमीं को नये प्रतिमान के आलोक में मूल्यांकन के लिए विबस करती है। दलित आत्मकथा का सौन्दर्यबोध स्पष्टतः दो स्तर पर दिखाई देता है-

एक स्थापित व्यवस्था को पुष्ट करता है तो दूसरा स्थापित व्यवस्था को प्रश्न के घेरे में लाता है और सामाजिक परिवर्तन की बात करता है। दलित आत्मकथाएं स्थापित व्यवस्था के विकल्प में एक दूसरी व्यवस्था की निर्मिति की बात करती हैं। सामाजिक जड़ता को तोड़कर नयी व्यवस्था की रूपरेखा तैयार करती हैं। समतापरक समाज के निर्माण की आधारभूमि तैयार करती है। वर्ण-सत्तावादी जातिपरक सामाजिक व्यवस्था के विरोध में दलित आत्मकथाएं संघर्ष और संगठन का बोध कराती हैं। उसमें किसी प्रकार की आत्मप्रशंसा का भाव नहीं है। वह व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध की लहर पैदा करती है साथ ही आत्ममंथन, आत्मलोचन के लिए प्रेरित करती है।

आत्मकथा आत्मअन्वेषण, स्वयं की खोज है तो इसका कारण सत्य के आत्मोद्घाटन की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया अनुभूति की प्रामाणिकता की मांग करती है। यही कारण है कि आत्मकथा में कल्पना के लिए कोई जगह नहीं होती है। अनुभव व यथार्थ की प्रामाणिकता का सवाल/अनुभूति की प्रामाणिकता ही आत्मकथाओं को अन्य साहित्यिक रचनाओं से अलग करती है। अनुभूति की प्रामाणिकता साहित्य में जीवन की सच्चाई को रेखांकित करती है। जीवन की सच्चाई ही साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति और यथार्थवाद की संरचना करती है। यहीं से साहित्य का सौन्दर्य अपना स्वरूप निर्मित और निर्धारित करता है। दलित आत्मकथाओं में दलित जीवन का यथार्थ, उसका वातावरण और उसकी संस्कृति अभिव्यक्त होती रही है... और हो रही है। यह यथार्थ भारतीय समाज का वह यथार्थ है जिस पर मुख्यधारा की रचना की पहुंच नहीं के बराबर रही है। यही कारण है कि दलित चिंतन और उसकी वैचारिकता यह सवाल करती है हिन्दी साहित्य में मेरा चेहरा नहीं दिखाई पड़ता है। तो यह सवाल दलित जीवन के संघर्ष और उसके यथार्थ की चेतना की अभिव्यक्ति न होने और चित्रण न करने की सच्चाई को रेखांकित करता है। यथार्थ की अनुभूति और उसकी प्रामाणिक अभिव्यक्ति पाठक समुदाय को अपनी ओर आकर्षित करती है। यह आकर्षण ही उसका सौन्दर्य है-''चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में सांस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग-धड़ंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े, बस यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्णव्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहने वालों को दो चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी। अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते बिल्ली गाय भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ ज़रूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो दूर फेंको।''(वाल्मीकि,1997:12)

दलित साहित्य में समय, समाज एवं परिवेश के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक जीवन के यथार्थ और दलित जीवन के प्रत्यक्षदर्शी कठोर अनुभवों को प्रामाणिकता से व्यक्त करनेवाली सशक्त विधा आत्मकथा है। भूख दलित आत्मकथाओं की प्रधान संवेदना में से एक है। दलितों के लिए भूख सिर्फ रोटी का नहीं बल्कि अस्तित्व का मामला है। भूख से लड़ने के उनके तौर-तरीके मनुष्यों की आदिम विरासत में चली आती अदम्य और उद्दाम जिजीविषा के अवशेष हैं। भूख का भयावह रूप दलित आत्मकथाओं में चित्रित है। दलित आत्मकथाएं अतीत, वर्तमान और भविष्य का स्वरूप गढ़ती हैं।

शिक्षा सिर्फ ज्ञान का प्रतीक नहीं है... उसकी चेतना भी ज्ञान का प्रतीक है। शिक्षा से ज्ञान बोध की प्राप्ति होती है और यह बोध न केवल समस्याओं के समाधान में सहायक होता है बल्कि मुक्ति की अवधारणा भी प्रस्तुत करता है। समाज और राष्ट्र के निर्माण की चेतना भी प्रशस्त करता है। राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया में भारतीय शिक्षा-पद्धति की भूमिका क्या रही है।इस पर दलित आत्मकथा प्रश्न चिह्न खड़ा करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि ''मुझे एक दिशा मिल गई थी। यह धारणा भी उन दिनों पुख्ता हो रही थी कि जो शिक्षा स्कूल, कालेजों में दी जा रही है, वह किसी भी रूप में हमें राष्ट्रीय नहीं बनाती है, बल्कि कट्टर, संकीर्ण हिन्दू बनाती है।''(वाल्मीकि,1997:89) क्या भारतीय शिक्षा-पद्धति वस्तुनिष्ठ नहीं, एक सीमित संस्कृति-हिन्दू संस्कृति के निर्माण में अपनी भूमिका अदा करती है?

दलित आत्मकथाएं भारतीय शिक्षा-व्यवस्था को प्रश्नांकित करती हैं और उसका हिसाब मांगती हैं। ''शिक्षा के प्रसार के कारण जो आशा बंधी थी कि वह जाति-संस्कृति को कमजोर करेगा, उसे जातिव्यवस्था ने झूठा साबित कर दिया। देश में कहीं से भी निकलने वाले अखबारों में छपे वैवाहिक विज्ञापनों पर यह महसूस करने के लिए एक सरसरी निगाह डालनी चाहिए कि बिना अपवाद के देश में ही रहने वाले उच्च शिक्षा प्राप्त लोग ही नहीं बल्कि वर्षों से विदेशों में बसे हुए लोग भी अपनी जाति सूचित करते हुए ऐसे विज्ञापन निकलवाते हैं और जाति सूचनाओं के साथ ही उत्तर चाहते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त नव-धनाढ्य भूमंडलीकृत वर्गों में यह प्रवृत्ति हर साल बढ़ती नजर आ रही है।''(तेलतुमडे,2010:31) अर्थात शिक्षा लोगों के अंदर जागृति और चेतना को पैदा करने में सांस्कृतिक आयामों से अलग नहीं हुई। चेतना के अभाव में समाज में शिक्षा के प्रति उदासीनता भी रही। शिक्षण संस्थान भारतीय सांस्कृतिक आधार से संचालित होते रहे है। सांस्कृतिक संकीर्णता ने शिक्षा को चेतनापरक होने ही नहीं दिया।

ज्योतिबा फुले ने ब्राह्मणवादियों की इसी मानसिकता का विरोध कर समाज में शिक्षा की ज्योति जगाने का काम किया और 1848 ई. में लड़कियों के लिए विद्यालय खोल कर शिक्षा की अवधारणा का समाज में प्रचार-प्रसार किया। इस अवधारणा का उत्तरोतर विकास भी देखने को मिलता है लेकिन सवाल उठता है कि 1848ई. से वर्तमान तक की शिक्षा की स्थिति पर नजर डालें तो बहुत संतोषजनक स्थिति नहीं है। यहां पर यह बात और भी विचारणीय है कि आखिर क्या कारण है कि भारतीय समाज में शिक्षा व्यवस्था का विकास बहुत ज्यादा नहीं हुआ है। यदि है तो समाज के एक खास वर्ग के लिए यह शिक्षा बहुत ही उच्च मानक रखता है वहीं दूसरी ओर उसका ग्राफ बहुत ही नीचा है। इसका कारण है शिक्षा व्यवस्था की भाषा। शिक्षा व्यवस्था की भाषा कभी भी भारतीय समाज में आम जन की भाषा नहीं बनी। आम जन की भाषा शिक्षा का माध्यम न बनने के कारण समाज की बहुत बड़ी आबादी उससे दूर होती चली गई। उसमें चेतना का फैलाव बहुत देर से हुआ जिससे वह समाज लगातार वैज्ञानिकता से दूर होता गया और पारंपरिक व्यवस्था उसे विकास की राह में जोड़ने में बहुत ज्यादा सहायक नहीं बनी। दलित आत्मकथाओं ने शिक्षा व्यवस्था को कठघरे में खड़ा तो किया ही उसकी भाषा को भी प्रश्नांकित किया है। शिक्षण की भाषा देशी बनाम अंग्रेजी की बहस भी चर्चा में आ गयी। इसका मतलब यह कहीं भी नहीं है कि दलित आत्मकथा अंग्रेजी या अन्य भाषाओं का विरोध करती है। वह समाज के विकास के लिए देशी भाषा में ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की वकालत करती है। 'नागफनी' और 'भटकटैया' में रूप नारायण सोनकर ने 'साइंस फिक्शन' की बात की है।(सोनकर,2024:100) दलित आत्मकथाओं में अंधविश्वास, अज्ञानता, कर्मकांड, जड़ता, रूढ़िवादिता आदि की बात तो कही ही गई है, साथ ही साथ इससे मुक्ति की बात भी दर्ज है। विज्ञानवाद, विकासवाद, संसदीय प्रणाली, बौद्ध धम्म-दर्शन, अम्बेडकरवादी विचारधारा आदि वैज्ञानिक चेतना

की पहल है। चेतना ही मुक्ति का आधार है और चेतनविहीनता ही दुख का कारक है। अज्ञानता है। यह अम्बेडकरवादी विचारधारा का ही प्रभाव है कि ''अंधविश्वास और काल्पनिक देवी-देवताओं को पूजना छोड़ दिया है। माता के मंदिर की जगह अब यहां बौद्ध मंदिर बन गया है।''(बैसंत्री,2009,35) दलित स्त्री आत्मकथा में ही नहीं पुरुष आत्मकथा में भी स्त्री की भूमिका स्पष्ट देखने को मिलती है। दलित साहित्य में मां-नानी की भूमिका अहम रही है दलित चेतना को बढ़ाने में। 'जूठन' में मां की चेतना, 'मुर्दहिया' में दादी की चेतना, 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में मां की चेतना व जिजीविषा, 'दोहरा अभिशाप' और 'शिंकजे का दर्द' में नानी और मां की चेतना दलित स्त्री की चेतना को ही रेखांकित करती है। बौद्ध दर्शन ने दलित समाज को सामाजिक चेतना से 'लैस' किया है। 14 अक्टूबर 1956 को डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिये गए बौद्ध धम्म की दीक्षा दलित चेतना की विकास प्रक्रिया को गतिशील करती है। उन्हें मानव होने का बोध कराती है। अधिकारों और मानवीय मूल्यों के प्रति सचेत करती है। दलित समाज में प्रतिरोध की चेतना को नया स्वरूप प्रदान करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में ''बुद्ध के मानवीय स्वतंत्रता के विचार ने मुझे प्रभावित किया था। परिवर्तित समष्टि में कुछ भी अपरिवर्तनीय नहीं है। मानव ही सर्वोपरि है। करूणा और प्रज्ञा व्यक्ति को उच्चता की ओर ले जाती है।''(वाल्मीकि,1997:121) अर्थात मानवीय बोध ने प्रतिरोध की चेतना को तीव्र किया है। उसे आंदोलनधर्मी बनाया है।

शिक्षा से न केवल चेतना जाग्रत होती है बल्कि आत्मसम्मान, गरिमा, अस्तित्व व अस्मिता का भी बोध होता है। हीनता बोध से मुक्ति का आधार देता है। दलित आत्मकथा का सौन्दर्यबोध भारतीय शिक्षा व्यवस्था, उसके तंत्र, उसकी पद्धति, शिक्षण-अधिगम की व्यवहारिकता व सामाजिकता को इसी कारण प्रश्नांकित करता है। ''जीवन से लेकर मरन तक ही सारी गतिविधियां मुर्दहिया समेट लेती थी। सबसे रोचक तथ्य यह है कि मुर्दहिया मानव और पशु में कोई फर्क नहीं करती थी। वह दोनों की मुक्तिदाता थी।''(राम,2010:भूमिका) जीवन की सारी गतिविधियां समेटने वाली मुर्दहिया प्राणी की मुक्तिदाता ही नहीं है बल्कि दलित समाज को उसकी अज्ञानता से भी मुक्त करती है। उन्हें गुलामी की जंजीर से मुक्त करती है। और इस बात को खंडित करती है कि 'मूर्खता मेरी जन्मजात विरासत थी।' 'मूर्खता मेरी जन्मजात विरासत है' यह बात एक परिवार की नहीं पूरे समाज की स्थिति को बतलाती है कि वह समाज किस हालात में है। जबकि यह सर्वविदित है कि बिना ज्ञान के विकास संभव नहीं। अज्ञानता से व्यक्ति ही नहीं परिवार और समाज की क्या स्थिति हो सकती है यह बात सामाजिक क्रांतिकारी महामानव ज्योतिबा फुले के इस दर्शन से ज्ञात होती है-

''विद्या बिना मति गई, मति बिना गति गई
गति बिना नीति गई, नीति बिना वित गई
वित बिना शूद्र चरमराये,
इतना सारा अनर्थ एक अविद्या से हुआ।''
(ज्योतिबा फुले, मेश्राम,कीर्ति1996:253)

ज्योतिबा फुले के इस कथन में शिक्षा का मूल महत्त्व निहित है। अविद्या से अर्थात अज्ञानता यानी अशिक्षा से मानव की क्या गति हो सकती है, इसकी व्याख्या ज्योतिबा फुले की शिक्षा की अवधारणा करती है। शिक्षा मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। शिक्षा के बिना जीवन का व्यवस्थित होना संभव नहीं है और न ही व्यवस्थित हुए बिना जीवन जिया जा सकता है। शिक्षा को दो स्तर पर देखा जा सकता है एक व्यावहारिक ज्ञान के स्तर पर और दूसरा शास्त्रीय ज्ञान के स्तर पर। व्यवहारिक ज्ञान अनुभव आधारित होता है जबकि शास्त्रीय ज्ञान किताबी होता है, जिसका व्यवहारिकता से संबद्ध हुए बिना कोई मूल्य नहीं है। दूसरे रूप में इसे इस प्रकार भी देखा समझा जा सकता है। एक पाठ्यक्रम में पढ़ाए जा रहे पुस्तकों के आधार पर और दूसरा शिक्षक एवं शिक्षण पद्धति के आधार पर। भारतीय समाज में पाठ्यक्रम में पढ़ाए जा रहे पुस्तकों में और विषय-वस्तु में अधिकतर ऐसी चीज पढाई गई है जिससे समाज में चेतना का उत्स बनता ही नहीं है। अर्थात एक विशेष प्रकार की मानसिकता तैयार की जाती है जिसका आधार ब्राह्मणवादी शिक्षण पद्धति और ऐसे धार्मिक आधारित पुस्तकें है। वहां संवाद या सहकारिता की भावना का अभाव ही देखा जाता है। बच्चों में सामाजिकता, सर्जनात्मकता और चिंतन के बीज के उत्स एवं उत्प्रेरणा नहीं पैदा हो पाती है। शिक्षाशास्त्री जॉन डेवी के शब्दों में कहें तो ''स्कूल की कक्षा में सामाजिक संगठन के उद्देश्य एवं एकजुटता दोनों का अभाव है। जहां तक जातीयता का प्रश्न है, विडम्बना यह है कि आज का स्कूल समाज के भावी सदस्यों को एक ऐसे माध्यम से तैयार करता है जो सामाजिकता की भावना से शून्य होती है। मानव की अंतर्दृष्टि को विकसित करने के लिए स्कूल को सामुदायिक जीवन के एक वास्तविक स्वरूप के रूप में कार्य करना होगा, न कि पाठ पढ़ाने वाली एक अलग इकाई की तरह। आज स्कूल अपने आपको एक स्वाभाविक सामाजिक इकाई के तौर पर संगठित नहीं कर सकता। इसका मूल कारण यह है कि इसमें साझी सृजनात्मकता और परस्पर सहानुभूति की भावना नहीं है।''(डेवी,2009:12) उदाहरण के तौर पर दलित आत्मकथाओं में व्यक्त शिक्षक के स्वभाव-मनोवृत्तियां और गैर दलित बच्चों का दलित बच्चों के साथ किए गए व्यवहार से समझा जा सकता है। ''खान पान एक हो गया तो चमारों और यादवों में अंतर ही कहां रह जायेगा?''(बेचैन,2009:383)शिक्षक की इस मानसिकता और इस तरह के अंतर्द्वंद्व को समझने की जरूरत है। जब शिक्षक का व्यवहार इस तरह से हो तो शिष्य पर इसका प्रभाव पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह बात सभी आत्मकथाओं में देखने को मिल जाती है। ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में यह दृश्य बेबाक ढंग से आया है। जब शिक्षक उन्हें पढ़ने के बदले स्कूल के प्रागंण में गाली शब्द से संबोधित करते हुए झाड़ से साफ करने को कहता है। स्कूल के हेडमास्टर कालीराम का कथन गौरतलब है -''चूहड़े का है?/ जी /ठीक है ...वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियां तोड़के झाड़ बणा ले। पत्तों वाली झाड़ बणाना। और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा। तेरा तो यो खानदानी काम है। जा ... फटाफट लग जा काम पे।''(वाल्मीकि,1997:14)मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ लगा रहा था पानी पीने तक की इजाजत नहीं थी। इतना ही नहीं ब्राह्मणवादियों को दलितों का पढ़ना लिखना कितना खलता है, यह बात दलित आत्मकथाओं से साबित होती है। ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा इस बात से साक्षात्कार कराती है-''जिसका दरवाजा खटखटाया यही उत्तर मिला, 'क्या करोगे स्कूल भेजके' या 'कौवा बी कबी हंस बण सके', 'तुम अनपढ़ गंवार लोग क्या जाणे, विद्या ऐसे हासिल ना होती।' 'अरे ! चूहड़े के जाकत कू झाड़ लगाने कू कह दिया तो कोण सा जुल्म हो गया', या फिर 'झाड़ ही तो लगवाई है, द्रोणाचार्य की तरियों गुरू दक्षिणा में अंगूठा तो नहीं मांगा' आदि आदि।''(वाल्मीकि,1997:17) रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा 'नागफनी' हमें एक अलग अहसास दिलाती है। अम्बेडकरवादी चेतना की मिशाल कायम करती है। इस संदर्भ को पढाई के लिए छुट्टी लेने और किसी नौकरी के लिए परीक्षा देने जाने के समय में अवकाश लेने के संदर्भ में समझा जा सकता है। रूपनारायण सोनकर

आई.ए.एस. की परीक्षा में बैठने के लिए अनुमति मांगते हैं औ एक माह के अवकाश के लिए प्रार्थना करते हैं जिसकी अनुमति प्रारम्भ में जातिवादी बाबुओं के कारण नहीं मिलती है लेकिन इस संसार में मानवतावादियों और संवैधानिक अधिकारों को जानने वालों की कमी नहीं है। बाबू कुशवाहा और चीफ इंजीनियर की मदद से रूपनारायण सोनकर के पक्ष में फैसला आता है।(सोनकर,नागफनी,113) वहीं भटकटैया में निर्मित 'मानवर' जीव की परिकल्पना और krish-3 के विवाद के माध्यम से भी संवैधानिक मार्ग का प्रोत्साहन मिलता है।''(सोनकर,2024:81) निश्चय ही किसी विवाद के संदर्भ में संवैधानिक मूल्यों और मार्गों का अनुसरण हमें डॉ. अम्बेडकर की चेतना का वाहक बनाता है।

समाज की संरचना की अवधारणा 'वर्टीकल' और 'हॉरिजेंटल' स्वरूप में हुई है। 'वर्टीकल' स्वरूप समाज में वर्चस्व की भावना पैदा करता है वहीं 'हॉरिजेंटल' स्वरूप समाज में समता की भावना, मनुष्यत्व की संवेदना पैदा करता है। 'वर्टीकल' और 'हॉरिजेंटल' स्वरूप में संघर्ष का सौन्दर्य उसके उत्स से ही है। भारतीय समाज की संरचना वर्णाश्रम व जातिपरक है। इसमें जाति श्रेणीनुमा सीढ़ी की तरह है। उसकी संरचना 'वर्टीकल' है, 'हॉरिजेंटल' नहीं। 'वर्टीकल' स्वरूप ही समाज में वर्चस्व की धारणा पैदा करती है। भारतीय समाज में वर्चस्व की धारणा वर्णसत्ता के बीच निहित है। वह उसी से संचालित है और अपनी सभ्यता-संस्कृति को निर्मित करता है। यह सभ्यता-संस्कृति किसी एक जाति की नहीं है बल्कि जातियों के समुच्चय का है। जिस जाति का प्राकृतिक और सामाजिक संस्थाओं पर अधिकार है वह वर्णसत्ता की भूमिका में है। अन्य दूसरी जाति शासित है, शोषित है। वर्णसत्ता के वर्चस्व में ही शोषण, असमानता, विषमता, भेदभाव, गैरबराबरी, पराधीनता, साम्प्रदायिकता आदि की मानसिकता निहित रहती है। इसी से जाति और उपजाति की संरचना भी पैदा हुई है। जातिवर्चस्व और श्रेष्ठता की भावना ने ही उपजाति की संरचना के स्वरूप को बनाया है। एक व्यक्ति स्वयं को अपने को दूसरे से सुपीरियर समझता है और दूसरे को नीच। यह मानव-मानव के विभाजन की अवधारणा है। जबकि विज्ञान साबित करता है कि मनुष्य या अन्य सभी प्राणी समुदाय जैविक रूप से समान है। सबकी जन्म प्रक्रिया एक समान है। उसमें कोई भिन्नता है। जैविक रूप से उसकी अस्मिता व उसका अस्तित्व समान है। किसी में कोई भिन्नता नहीं है। फिर मानव मानव में भिन्नता क्यों ? इसका कारण मानवशास्त्री और समाजशास्त्री दोनों ही दृष्टि से सामाजिक संरचना है। सामाजिक सरंचना जब मनुष्य की अस्मिता को निर्धारित करने लगता है तभी विभाजन की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। यहीं से असमानता व अमानवीयता का स्वरूप तैयार हो जाता है। किसी भी स्थिति में यह व्यवस्था मानवीय नहीं है और न ही इस व्यवस्था को किसी भी स्थिति में अच्छा कहा जा सकता है। दलित साहित्य अपनी वैचारिकी में इसी सामाजिक संरचना को तोड़ने की बात करता है। जाति व्यवस्था और पूंजीवादी सामाजिक संरचना का जन्म ही ब्राह्मणवाद की कोख से हुआ है। इसलिए दलित साहित्य का सौन्दर्यबोध, अपनी वैचारिकता व सामाजिकता दोनों में ब्राह्मणवाद को खत्म करने की कवायद करता है। जब वह ब्राह्मणवाद का विरोध करता है और उसके समूल को नष्ट करने की बात करता है तो वह जाति, जातिपरक व्यवस्था व मानसिकता तथा पूंजीवादी मानसिकता व संरचना आदि सभी का विरोध करता है। सभी प्रकार के असमानता और बहिष्कार का विरोध करता है तो वह उपजाति का भी विरोध करता है। जाति उपजाति का सवाल दलित आत्मकथा में केन्द्रीय प्रश्न बन कर आया है। जब ओमप्रकाश वाल्मीकि यह सवाल करते हैं कि ''जाति ही मेरी पहचान क्यों?''(वाल्मीकि,1997:160)जाति के कारण रूपनारायण सोनकर को परीक्षा में बैठने की छुट्टी नहीं दी जा रही थी कि कहीं वह अधिकारी न बन जाये। कोई दलित अधिकारी कैसे बन सकता है। नागफनीकार हमें संदेश देता है कि कैसे संवैधनिक ढंग से आगे बढ़ना है। 21वीं सदी भी ब्राह्मणवादी की गिरफ्त से मुक्त नहीं है बल्कि पूर्व से आधुनिक शक्ल में अधिक खूंखार और खतरनाक है। विभिन्न शिक्षण संस्थानों में बहुजन वर्ग के शिक्षार्थी और अभ्यर्थियों को 'नोट फाउंड सुटेबल' करना इसी मानसिकता की उपज है। अन्यथा उनकी अयोग्यता भारतीय शिक्षण संस्थानों पर प्रश्न चिह्न खड़ा करती है।

जाति व्यवस्था और जातिवादी मानसिकता के खिलाफ संघर्ष का स्वरूप व सामाजिक परिवर्तन एक सतत प्रक्रिया है। 'जाति' ही जहां मान-सम्मान और योग्यता का आधार हो, सामाजिक श्रेष्ठता के लिए महत्त्वपूर्ण कारक हो, वहां यह लड़ाई एक दिन में नहीं लड़ी जा सकती है। लगातार विरोध और संघर्ष की चेतना चाहिए जो मात्रा बाह्य ही नहीं, आंतरिक परिवर्तनगामी भी हो, जो सामाजिक बदलाव को दिशा दे। जातिवादी मानसिकता सांस्कृतिक तौर पर इतनी गहरी है कि उसकी जड़ खोदना आसान नहीं है। इसी संघर्ष को ओमप्रकाश वाल्मीकि रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि ''कोण जात है?' के साथ 'जाति के नाम पर जो खरोंच मिली उन्हें भरने के लिए युग भी कम पड़ेंगे।''(वाल्मीकि,1997:66) अर्थात जाति व्यवस्था का अंत अचानक नहीं हो जाएगा। उसका अंत लगातार संघर्ष के साथ ही होगा। यह संघर्ष युगों-युगों तक जारी रहेगा। दलित सौन्दर्यबोध जातिवादी मानसिकता के खिलाफ संघर्ष की पूरी प्रक्रिया को सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर लड़े जाने वाला एक लंबा संघर्ष कहा है जिसका अंत तो संभव है लेकिन उसकी समय सीमाएं निश्चित नहीं है। यहीं से परिवर्तनकामी साहित्य का सौन्दर्यबोध भी रेखांकित हो जाता है। उसका सौन्दर्यबोध और उसके प्रतिमान लगातार एक लंबी प्रक्रिया में निर्मित होते हैं। यह प्रतिमान व प्रक्रिया प्रेम सौन्दर्य के साथ जाति-व्यवस्था के अंत में है। जातिवादी व्यवस्था व मानसिकता कभी भी प्रेम सौन्दर्य को स्थापित होने नहीं देती है। प्रेम सौन्दर्य की स्थापना का मतलब है जाति की व्यवस्था का खत्म होना। मानव मानव की विभेदकारी सभी तंत्र व प्रवृत्तियों का अंत होना। यही कारण है जातिवादी मानसिकता कभी भी प्रेम सौन्दर्य को स्थापित करने वाली संस्कृति को पनपने नहीं देती है। यदि पनपती है तो उसका अंत कर देती है। प्रेम संबंध न केवल सौन्दर्य का साधन है बल्कि सौन्दर्य की सामाजिकता को स्थापित करने वाला तत्व भी है।

भारतीय सामाजिक जड़ता का कारण धर्मशास्त्र और धार्मिक मानसिकता है। जहां वैज्ञानिकता की पहुंच हो ही नहीं पाती है। धार्मिक मानसिकता आमजनता को उसकी स्थिति से उबरने ही नहीं देती है। ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद के द्वारा दैनंदिन में जारी धार्मिक कार्यक्रम उसकी चेतना के ऊपर पड़ी काली परत को हटने ही नहीं देता है। पुरानी धर्मिक पुस्तक का बाजारीकरण का रूप, दूरदर्शन और अन्य माध्यमों से उसका प्रचार प्रसार जनता को एक नए प्रकार से धार्मिकता का पाठ पढ़ा रहा है। जनता मानसिक रूप से धार्मिक जड़ता का शिकार है जहां उसकी सांस्कृतिक चेतना, उसका पारिवारिक संस्कार आदि उसे मुक्त नहीं होने देता है। वे यह नहीं समझ पाते हैं कि धर्म क्या है? उसका औचित्य क्या है? उसकी सामाजिकता व व्यवहारिकता का स्वरूप कैसा है? दलित आत्मकथाएं इन तमाम कारकों और कारणों पर प्रकाश डालती है जैसे धर्म का औचित्य, उसकी व्यवहारिकता, उसकी धार्मिकता, जनमानस में उसका स्वरूप, हिन्दू धर्म की व्यवहारिकता तथा धम्म की आवश्यकता। आनंद तेलतुमड़े के शब्दों में हिन्दुत्व के उत्थान की

सभी प्रक्रिया धार्मिक कट्टरता, रीति-रिवाजों के प्रचलन, मंदिर, गुरूद्वारा आदि और साधु-संतों के प्रवचन आदि घटनाओं ने जातिवाद को तेज किया है। ''इसे जातिवाद को बढ़ावा देने वाली स्थिति के रूप में ही देखा जाना चाहिए। दिलचस्प है कि शिक्षित वर्ग ऐसे नव धार्मिकतावाद के उत्थान में मुख्य भूमिका निभा रहा है।''(तेलतुमड़े,2010:31)

भारत एक बहुल सांस्कृतिक और बहुभाषिक देश है। कहने को इसे हिन्दू राष्ट्र कहा जाता है जो एक विशेष प्रकार का ब्राह्मणवाद है। यह ब्राह्मणवाद सांस्कृतिक भिन्नता को स्वीकार नहीं करता है यह उसका राजनीतिक स्टैंड है। सांस्कृतिक विविधता में एकता संभव नहीं है जब तक जातिगत भिन्नता है। जातिगत विभिन्नता एकल सांस्कृतिक जीवन को कभी भी परिभाषित नहीं करती है। इसमें 'हिन्दू शब्द एकता का नहीं विखंडता का द्योतक है। यदि एकता का प्रतीक होता तो सबकी संस्कृति समान होती लेकिन ऐसा है नहीं। इसलिए हिन्दू एक खासवर्ग का प्रतीक है जिसकी संस्कृति, और संस्कार हिन्दू धर्मशास्त्रों से संचालित है। दलित आत्मकथाएं इस सांस्कृतिक भिन्नता को रेखांकित करती हैं ताकि सांस्कृतिक एकता का सूत्र स्थापित किया जा सके। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि ''कहने को तो बस्ती के सभी लोग हिन्दू थे, लेकिन किसी हिन्दू देवी-देवता की पूजा नहीं करते थे। जन्माष्टमी पर कृष्ण की नहीं जहारपीर की पूजा होती थी या फिर 'पौन' पूजे जाते थे। वे भी अष्टमी को नहीं, 'नवमी' के ब्रह्ममुहूर्त में।''(वाल्मीकि,1997:53) इसी के साथ वे लिखते हैं कि हिन्दू संस्कृति हिंसात्मक है। इसका कारण इस सूत्र वाक्य में देखा जा सकता है- ''क्यों दलितों के प्रति हिंदू इतना निर्मम और क्रूर है? ''मैं हिन्दू भी तो नहीं हूं।''(वाल्मीकि,1997: 53-54) वे लिखते हैं कि मैं हिन्दू भी तो नहीं हूं तो बात स्पष्ट हो जाती है कि दलित भारतीय समाज का आर्य नहीं है। अनार्य है। यहां के मूलनिवासी है। इसलिए उसकी संस्कृति हिन्दू संस्कृति से भिन्न है। बाजार के परिदृश्य में कई संस्कृति का बयान है वहीं सामाजिक संरचना में व्याप्त दलित-गैर दलित संस्कृति, मजदूर और मालिक की संस्कृति है। मजदूर का अनुपात किस रूप में है। यह आत्मकथा इसका भी बयान करती है।

समग्रतः दलित आत्मकथाएं भारतीय समाज की वह तस्वीर प्रस्तुत करती हैं जिसमें वर्ण-जाति व्यवस्था उसकी संरचना तैयार करती है और वह इंसान को इंसान का दर्जा नहीं देती है। वह इस वर्ण-जाति व्यवस्था के सभी तंत्रों की पहचान करती है और उसके खिलाफ प्रतिरोध की चेतना पैदा करती है। प्रतिरोध की चेतना अपनी पूरी परंपरा और संस्कृति से ऊर्जा ग्रहण करती है। यह पूरी परंपरा और संस्कृति डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा है। सामाजिक परिवर्तन की इस वैचारिकता में सौन्दर्यबोध गैर ब्राह्मणवादी और वैदिक संस्कृति के उत्स से लेकर बुद्ध संतों के दर्शन, फुले दाम्पत्य के संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन की कवायद तथा डॉ. अम्बेडकर के चिंतन व दर्शन के साथ अन्य परिवर्तनकामी दर्शन की वकालत दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त हुई है।

दलित आत्मकथाओं में संघर्ष की जिजीविषा है, जहालत और नफरत की जिंदगी को कब्र में दफन करने की शक्ति है। वह समतापरक समाज के निर्माण के लिए चेतना की निर्मिति करती है। उसकी संवेदना पैदा करती है। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्त्व, न्याय और गरिमा के साथ मानव होने की भावना पैदा करती है। उसकी वैचारिकता निर्मित करती है। उसका सौन्दर्यबोध निर्मित करती है। दलित आत्मकथाओं के सौन्दर्यबोध ब्राह्मणवादी व्यवस्था और मानसिकता को बेनकाब करता है। समतापरक समाज की निर्मिति की वैचारिकता एवं विकल्प प्रस्तुत करता है। दलित आत्मकथाएं मानव की जिंदगी को बर्बाद करने वाली हर एक मानसिकता और व्यवस्था को उजागर करने की कोशिश करती हैं। वह सामाजिक विषमताओं, अंतर्द्वंद्वों को उजागर करती है। सामाजिक व्यवस्था की संरचना की मैकेनिज्म को खोलती है ताकि नयी व्यवस्था के निर्माण की प्रक्रिया जिसकी वैचारिकता दलित साहित्य आंदोलन ने तैयार की है, संभव हो सके। यातना, दमन, शोषण, वेदना और पीड़ा की टीस से उत्पन्न चेतना परिवर्तन की कवायद करती है। यह कवायद ब्राह्मणवादी मानसिकता और व्यवस्था को नागवार लग सकती है क्योंकि उनकी ही संस्कृति और सांस्कृतिक तंत्र में यातना, दमन और शोषण का अनवरत सिलसिला चलता रहा है। इस अनवरत सिलसिलाओं को दलित साहित्य में बेनकाब किया गया है। उसकी पोल-पट्टी खोल दी गई है। सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा में दलित आत्मकथाएं दर्द का दस्तावेज़ हैं और उसकी एक-एक पीड़ा ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति चाहती है। मानव-मुक्ति की संकल्पना में प्रतिरोध की संस्कृति तीव्र, तीक्ष्ण व पुख्ता करती है।

दलित साहित्य में आत्मकथाओं की रचना सामाजिक परिवर्तन का विकल्प प्रस्तुत करती है। यह विकल्प चेतना की देन है। चेतना ज्ञान की परंपरा से जुड़ने की प्रक्रिया में ही संभव है। शिक्षा की कमी ने यदि दर्द का जीवन दिया है तो शिक्षा की प्राप्ति ने दर्द से मुक्ति की राह दी है। शिक्षा की कमी से मानव की क्या गति हो सकती है इस सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को तो ज्योतिबा फुले ने 19वीं सदी में ही दिया था। दलित आत्मकथाएं उसका दस्तावेजीकरण हैं। वह एक नया इतिहास... नई संस्कृति की संभावना रचती है। दलित आत्मकथाएं अपने कलेवर में समाज के व्यापक प्रश्न को लेकर उभरी हैं। ज्ञान की गहनतम गहराई को शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षा क्या है? शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य, शिक्षण-पद्धति और शिक्षक की शिक्षण-अधिगम की व्यवहारिकता आदि की समस्याओं को दलित आत्मकथाओं के माध्यम से समझा, परखा जा सकता है कि भारतीय समाज में शिक्षा-व्यवस्था का स्वरूप कैसा रहा है। शिक्षा प्रतिरोध और चेतना दोनों की जननी है। वह समस्याओं से मुक्ति का माध्यम है। 'शिक्षित बनो' का नारा मुक्ति के उपाय की तलाश ही तो थी। भारतीय समाज में शोषण और दमन का आधार जातिवादी वर्णसत्ता रही है। जाति और वर्णसत्ता का सवाल-जाति और वर्ण की अवधारणा ही शोषण को संस्थानिक स्वरूप प्रदान करती है। जाति आधारित समाज-संरचना को धर्म की मान्यता प्राप्त है। धर्म का औचित्य और उसकी व्यवहारिकता, उसकी धार्मिकता, जनमानस में व्याप्त उसके स्वरूप, हिन्दू धर्म की व्यवहारिकता तथा धम्म की आवश्यकता आदि सवाल दलित साहित्यांदोलन में मूल समस्याओं के तौर पर उभरा है। पूंजीवाद का विरोध-संपत्ति संग्रह का विरोध भी दलित साहित्य में एक मुद्दा के तौर पर दिखाई पड़ता है। सांप्रदायिकता का अंत और आतंकवाद के अंत का प्रश्न भी दलित साहित्य में देखा जा सकता है। पितृसत्ता व पुरुषवादी मानसिकता का विरोध तथा स्त्री प्रश्न दलित साहित्य में अपना स्थान बना चुके हैं। अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, जड़ता का प्रश्न तो सामान्य तौर पर पहले से ही उठता रहा है। ईश्वर और ईश्वरवादी धारणाओं का नकार, ब्राह्मणवादी मानसिकता का विरोध व अंत की घोषणा दलित साहित्य का केन्द्रीय सवाल रहा है। लोकजीवन व संस्कृति की जड़ता बनाम चेतनशीलता की बात दलित साहित्य में दिखाई पड़ता है। श्रद्धा-भक्ति की जगह वैज्ञानिकता व तार्किकता की स्थापन्न, हिंसा, घृणा व नफरत की जगह अहिंसा, करूणा व प्रेम की स्थापना तथा मानव-बोध की भावना, समतापरक समाज की निर्मिति, सामाजिक परिवर्तन की वैचारिकता-बुद्ध-फुले और डॉ. अम्बेडकर तथा अन्य परिवर्तनकामी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता का सवाल, समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय का भावबोध, प्रतिरोध की चेतना व संस्कृति का विकास, आर्थिक विषमता व असमानता-जल, जंगल और

समस्याएं, व्यक्ति सत्ता बनाम सामूहिकता का बोध का प्रश्न आदि दलित साहित्यांदोलन की वैचारिक प्रतिबद्धता में निहित है। दलित आत्मकथाओं में इन प्रश्नों को सहज ही समझा जा सकता है... महसूसा जा सकता है। इसी अर्थ में दलित आत्मकथाओं का सौन्दर्यबोध 'सभ्यता-समीक्षा' की अवधारणा प्रस्तुत करता है और समय से संवाद की प्रक्रिया की सर्जना करता है।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची: -

1. - डॉ. अम्बेडकर(1995), संपूर्ण वांग्मय, खण्ड-7, नई दिल्ली, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार
2. - वाल्मीकि, ओमप्रकाश,(1997), जूठन, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन
3. - बैसंत्री, कौसल्या, (2009), दोहरा अभिशाप, दिल्ली, परमेश्वरी प्रकाशन
4. - टाकभौरे, सुशीला, (2011), शिकंजे का दर्द, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
5. - तेलतुमडे, आनंद, (2010), साम्राज्यवाद का विरोध और जातियों का उन्मूलन, दिल्ली, ग्रंथ शिल्पी
6. - सोनकर, रूपनारायण, (2024), भटकटैया, भोपाल, काव्या प्रकाशन
7. - राम, तुलसी, (2010), मुर्दहिया, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
8. - फुले, ज्योतिबा (सं.) मेश्राम.एल.जी., कीर्ति, विमल(1996),महात्मा जोतिबा फुले रचनावली, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन
9. - डेवी, जॉन, (2009), स्कूल और समाज;(अनुवाद सुशील कपूर) दिल्ली, आकार प्रकाशन
10. - बेचैन, श्यौराज सिंह, (2009), मेरा बचपन मेरे कंधों पर, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
11. - सोनकर, रूपनारायण, (2007), नागफनी, दिल्ली, शिल्पायन
12. - कुमार, प्रवीण (2022), भारतीय काव्यशास्त्र : अतीत और वर्तमान, दिल्ली , एकैडमिक पब्लिकेशन
13. - पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, (2003), सौन्दर्य –दर्शन –विमर्श (अनुवादक –जगन्नाथ पाठक),इलाहाबाद , राका प्रकाशन

Impact of product price, offers and product display on consumer purchase decision of FMCG in Kathmandu Valley

Santosh Pokharel
Lecturer, Central Department of Management, TU Kirtipur Nepal. PhD scholar, Andhra University, Visakhapatnam. Department of Commerce and Management Studies (DCMS). santoshpkrl2038@gmail.com

Madan Kumar Luitel
Lecturer, Nepal Commerce Campus, TU. Kathmandu Nepal. madanluitel77@gmail.com

Bhavuk Raj Neupane
Lecturer, Nepal Commerce Campus, TU. Kathmandu Nepal.bhavukraj@gmail.com

Prof. Jaladi Ravi
PhD. Department of Commerce and Management studies, Andhra University, Visakhapatnam, India.
dr.ravijaladi@gmail.com

Abstract- *Generally buying decision of consumers has been affected by psychological and environmental factors. This study investigates elements affecting consumer purchase decision of FMCG in Kathmandu valley. To evaluate link between dependent variable (consumer purchasing decision) and the independent factors (product price, offer, and display), the study used a descriptive cum analytical research methodology. Convenience sampling has been used to select the respondents of the study. Information about the Kathmandu Valley's consumers' perceptions towards FMCG purchasing decisions was extracted from the raw data. Altogether 193 respondents responded through structured questionnaire. The study has employed both descriptive and inferential statistics. Average and frequencies have been used under the descriptive analysis whereas OLS and correlation analysis have been employed for inferential analysis. The value of R2 is 63.26% indicating that predictors (product price, offers and product display) explain only 63.26% of variation of output variable (consumer's buying decision). Product price, offers and product display all have positive and significant coefficient. In a similar vein, there is a positive and significant association between the predictors and output variables. Product display has been found the most critical determinant of consumer buying decision of FMCG compare to product price and offers.*

Keywords: consumer behavior, price, offer, product display.

Introduction

The nation's economic growth is significantly aided by the fast-moving consumer goods (FMCG) sector. Numerous elements, including product quality, cost, packaging, and brand perception, influence consumers' purchasing decisions in the fast-moving consumer goods (FMCG) sector. Economic, psychological, and social aspects are also important. Gajjar (2013) asserts that consumer behavior encompasses the decisions, purchases, and applications of goods and services made by individuals or groups to fulfill their needs and wants. This description highlights the essential components of consumer behavior, including selection, application, and purchase. When it comes to consumer behavior, there are various processes at play. The consumer first looks for things that they would like to consume before selecting only those that offer greater usefulness (Rani, 2014). Consumer behavior is important when it comes to marketing fast-moving consumer goods. There are a number of elements that influence this behavior. The shopping habits of individuals and families who buy products and services for their personal use are referred to as consumer purchasing behavior (Kotler at el., 2001). Global consumers vary as per cultural and environmental differences along with individual or demographic characteristics. Marketers have always been quite interested in consumer behavior.

Steg et al. (2014) contended that the decision to purchase is influenced by both controllable and uncontrollable circumstances. Social group, psychological, situational, and marketing mix elements are among them. Consumers' perceptions of brand loyalty for FMCG products are influenced by brand awareness, knowledge, and attitude, as well as their satisfaction and brand trust and risk aversion to changing the brand. Consumer packaged products are another name for moving consumer goods, or FMCG. This category includes all consumables (beverages, hygiene, and pharmaceuticals other than groceries or pulses) that people regularly buy. The fast-moving consumer products industry includes both food and non-food everyday consumer goods (Tyagi at el., 2014). Among the products on the list are toothpaste, shoe polish, detergents, toilet soaps, culinary items, and accessories for electronics and household goods. The supermarkets carry a wide variety of FMCG brands, both domestic and foreign. This indicates that purchasing FMCG products is something that Nepalese people are interested in. Manufacturers have been developing a wide range of FMCG products while keeping in mind consumer needs. Since, there is a lot of competition, it is crucial for product manufacturers or marketers to understand the purchasing habits of their target market in order to turn success in their favor. Businesses must also develop more intelligent marketing strategies by gaining insight into the factors that influence consumer decision-making. The research has been undertaken to know influencing variables on consumers buying decision of FMCG and examine the effects of price, offers and product display on consumer's buying decision of FMCG in Kathmandu valley.

Literature Review and Hypotheses

Place, product, price, advertising, and psychological factors all have impact on consumer behavior as per contextual differences. A number of factors, including as marketing tactics, product quality, and brand reputation, affect the price and purchasing patterns of FMCG. Since consumers are price-sensitive and seek value for their money, price has a big influence on their decisions to purchase fast-moving consumer goods (FMCG). Customers frequently base their decision on weighing a product's price versus its alleged benefits. In the Iranian FMCG sector, price has a big impact on consumer purchasing decisions, especially when it comes to branded shampoos. Price, quality, and sustainability are all factors that consumers value highly, making them crucial for gaining and keeping a competitive edge (Miremadi & Faghanie, 2012). It is a significant consideration to make decisions about which brand, product, and store to buy from (Dudu and Agwu, 2014). Rural customers' purchasing decisions regarding FMCG products are heavily influenced by price. Consumers give pricing top priority along with quality, availability, and other factors, which eventually influence their decision-making process and brand loyalty when making purchases (Mishra, 2017). The price of FMCG has a big impact on customer purchasing decisions underscoring its importance in retail marketing tactics (Sisodiya & Sharma, 2018). Similarly,price has a big impact on consumer purchasing decision in FMCG s with consumers chooses low unit prices. Consumers' planned purchases are primarily influenced by price, quality, and brand recognition (Shamshuddin et al., 2020). In the FMCG industry, price sensitivity has a detrimental effect on consumers' intentions to make purchases, proving the importance of strategic pricing tactics. Companies can better customize their marketing strategies to improve customer purchasing behavior and boost overall market competitiveness by comprehending this relationship (Mamuaya, 2024).In the fast-moving consumer goods (FMCG) industry, offers particularly discounts and promotions have a significant impact on what consumers choose to purchase. Offers play significant role in influencing their shopping

decisions as consumers are price sensitive and frequently look for value. Offers have the power to affect brand loyalty as well; customers may grow more devoted to companies that often provide attractive deals. Sarker and Rahman (2017) argued that individual personality had no discernible impact on customer purchasing decisions in FMCGs while cost, product variety, advertising, and product quality did. Offers can strengthen these elements and have a favorable effect on consumers' purchasing decisions. Price reductions and free samples affect negatively on customer purchasing behavior, yet "buy one get one free" has a favorable effect. This highlights the intricacy of how different promotional offers influence consumer decisions in the FMCG industry. (Lama & Chataut, 2022). In the FMCG sector, promotions have a big impact on customer purchasing decisions by boosting perceived value and promoting trial purchases. Successful promotions can boost consumer loyalty and brand trust, which will eventually encourage recurring business and long-term client involvement (Mahato, 2024). In addition, sales incentives like discounts and free samples have a big impact on what customers decide to buy in the FMCG industry. According to the study, these incentives increase consumers' perceptions of value and brand loyalty (Raj et al., 2024).

Product displays have a significant impact on customer purchase decisions in the FMCG sector. Promotional displays, attractive packaging, and strategically placed goods within the store can all have an impact on a consumer's decision to buy a certain FMCG. A product that is conspicuous, easily accessible, or promoted is more likely to be selected by customers. Sarma (2014) found a strong correlation between customer purchasing decisions and product display, especially when it comes to impulsive purchases. Customers' purchase inclinations are positively impacted by improved product visibility and smart positioning. In FMCG industry, consumers' purchase decisions are greatly influenced by product presentation. Consumer behavior is strongly impacted by an attractive and well-organized product display, which boosts sales and improves the overall shopping experience (Sarker & Rahman, 2017). Likewise, in the FMCG industry, packaging has a big impact on customer purchasing decisions. As part of packaging, an effective product display raises brand awareness and can encourage impulsive purchases, which in turn affects customers' decision-making process overall (Banerjee & Kedia, 2018). Similarly, Rafsanjani et al., (2023) found that product presentation has a big impact on what customers decide to buy, showing that good display techniques may increase customer engagement and boost sales in the FMCG industry. In addition, product display significantly influences consumer buying decisions in FMCGs by enhancing visibility and attractiveness, thereby appealing to psychological needs. Effective displays can lead to increased impulse purchases and stronger brand recognition among consumers (Kumar & Kk, 2024).

The following hypotheses can be put out in light of the examination of earlier research.

H1a: Price and consumer's buying decision have significant relations.

H1b: Offers and consumer's buying decision have significant relations.

H1c: Product display and consumer's buying decision have significant relations.

Methods-

In order to gather enough data about the purchase habits of FMCG customers in the Kathmandu Valley, this study employed a descriptive and analytical research methodology. Descriptive design was used to illustrate the information about the phenomena and the demographics of the respondents whereas analytical design has been used to determine causality. The study, which is based on primary data sources, aims to investigate the factors influencing consumers' decisions to buy FMCG products in the Kathmandu Valley. The general consumers in the Kathmandu Valley who belonged to various age and professional groups made up the study's population. In order to gather information from department stores and online, well-crafted questionnaires were given to individuals of all ages. 193 respondents made up sample for the study, which examined the relationship between consumer's purchasing decision and factors like product pricing, offer, and display. In order to choose the sample respondents, convenience sampling has been employed.

The primary sources of data were used in this study. Quantitative approach has been used. The Kathmandu Valley's consumers' primary data was used to get knowledge on the factors influencing their FMCG purchase decisions. A questionnaire was employed as the data collection tool. The main instrument used to collect data was a self-administered survey questionnaire designed to determine respondents' opinions regarding consumer buying habits. Multiple questions and the respondent's personal information were included in the questionnaire. The questionnaire's first section addressed demographic information such as gender, age, income, and level of education. Similarly, a series of questions concerning the variables utilized in the study to investigate the impact of consumer purchasing habits in the Kathmandu Valley were included in the second section of the

questionnaire. Five statements were used to describe each of the factors. A scale, with 1 representing "strongly disagree" and 5 representing "strongly agree," was used to rate each item in order to determine the respondents' thoughts. Items used in the questionnaire were taken from previous studies but certain changes have been occurred as per expert's opinion.It was organized when all of the respondents' completed questionnaires were gathered. The Statistical Package of Social Science (SPSSv26) software and Microsoft Excel were used to analyze and interpret the data. All of the replies that were gathered from the respondents were coded and input into an SPSS spreadsheet. The results were shown following the responses' processing and interpretation. Cronbach's alpha was used for the validity and reliability tests. To arrive at the results, a variety of techniques were used, such as the mean and frequencies under descriptive statistics and statistical tests of significance including regression analysis, t-test, F-test, and R2. In order to evaluate the hypotheses, the final stage of data analysis involved correlation and regression analysis of primary data.

Proposed regression model

$$CBD = \beta 0 + \beta 1\ PP + \beta 2\ OF + \beta 3\ PD + \varepsilon i$$

CBB= Purchasing decision of the consumer

PP= Price of product

OF= Offer

PD= Product display

Analysis and Results

The reliability test was the first step in the analysis, and Cronbach's alpha was employed to assess the consistency. The value of cronbach alpha of each variable exceeded 0.7 indicating that the instruments have maintained the consistency in the pattern of response. The value can be represented as

Table 1: Cronbach's alpha

Constructs	Items	Alpha
Product price	6	.787
Offer	4	.813
Display location	5	.791
Consumer buying decision	7	0.812
Overall	22	0.863

Analysis concentrated on respondent's demographic classification based on gender, age, educational level and monthly income. Majority consumers were male (58.55%) and female (41045%). The respondent's age was divided into four groups: those aged 20–30, 31–40, 41–50, and over 50. The majority of responders (37.82 percent) are between the ages of 31 and 40, followed by those between the ages of 41 and 50 (31.61%), 20 to 30 (20.73%), and 50 and older (9.84%). Four groups were created based on the respondents' educational backgrounds: SLC or SEE, PlusTwo(+2), Graduate, and Postgraduate. Postgraduates made up 45.60 percent of the respondents, followed by graduates (25.91 percent), , +2 (23.32 percent) and SLC (5.18 percent). The majority of respondents earn between Rs. 30,000 and Rs. 60,000 per month (39.38 percent), followed by those who earn between Rs. 60001 and Rs. 90000 (28.50 percent), those who earn over Rs. 90000 (17 percent), and the remaining respondents who earn Rs. 30,000 and less (15.09 percent).

The average value of the product price was 3.51indicates that product price affects consumer's decision to purchase an FMCG product. The offer's weighted average mean of 3.96 indicates that different marketing offers would assist customers in making purchasing decisions. The weighted average means for product display is 3.79, indicating that display influences consumers' purchasing decisions. The weighted average value for consumer purchasing decisions is 3.84, indicating that respondents have a favorable opinion on FMCG and are more likely to decide to buy it because of factors including price, offers, and display.

Product price (PP) was positively correlated to consumer buying decision (CBD). It indicates that product price stimulates the buying behavior of the consumer. Likewise, offer (OF) was also positively correlated to consumer buying decision (CBD). It indicates that the offers encourage the consumer towards buying of FMCG. Similarly, there was a positive correlation between product display (PD) and consumer buying decision (CBD). It indicates that product display influences the buying behavior of the consumers. Correlation coefficient of each predictor with output variable was significant at <.0000 suggesting H1a, H1b and H1c were accepted.

Table 2: Correlation analysis

Statement	PP	OF	PD
CBD	0.539^{**}	0.625^{**}	0.843^{**}

Regression analysis revealed the value of R2 was 0.6326 indicates used predictors (price, offer & product display) explain variation of consumer buying decision (dependent variable) on FMCG by 63.26%. In a similar vein, every coefficient is positive and significant, demonstrating that the predictors employed have adequate ability to forecast or affect the dependent variable at various levels. A high coefficient value suggests that a one unit change in that predictor will result in a large

variation in the purchasing decisions of consumers. Since the coefficient values are positive, all independent variables have been shown to have a positive relationship. (product price, offer and product display) and dependent variable (consumer satisfaction). Both regression and correlation result's point toward positive direction.

Table:3 coefficient

Variables	β	S.E.	t	sig.
(Constant)	0.214	0.201	2.261	.005
Product Price(PP)	0.189	0.192	4.572	0.007
Offers (OF)	0.287	0.237	3.218	0.004
Product Display (PD)	0.401	0.186	4.396	0.000

Regression Model

$CBD = \beta 0 + \beta 1\ PP + \beta 2\ OF + \beta 3\ PD + \varepsilon i$

CBD= 0.214+0.189 PP+0.287 OF+0.401 PD

Conclusion and Discussion

Consumers involve in buying and consuming an incredible variety of goods and services. This study looks at the variables influencing Kathmandu Valley consumers' decisions to purchase FMCG goods. 193 observations served as the study's major source of data. The study demonstrates that customer purchasing decisions for FMCG are positively impacted by product pricing, offer, and display. Price affects the buying decision of consumer and this finding is within the line of (Miremadi & Faghanie, 2012; Mishra, 2017; Sisodiya & Sharma, 2018). It has found that offers affect buying decision as earlier results of (Lama & Chataut, 2022; Raj et al., 2024). Similarly, results suggested that product display affects consumer buying decision of FMCG as found by (Sarker & Rahman, 2017; Kumar & Kk, 2024). The coefficient value indicates that, in comparison to product pricing and offers; product display has a greater influence on consumers' decisions to purchase FMCG. Therefore, marketers should focus on creating and establishing the display in such a way that must makes the buyers more attentive in display location. This study has contributed significantly to enhance the knowledge on this issue and findings of study can benefit marketers and academicians to understand the factors which are responsible for determining consumer buying decision of FMCG. Similarly, it has opened the scope for new researcher to carry more comprehensive research to enhance the knowledge in the field.

****

References :-

1.Banerjee, S., & Kedia, A. (2018). Influence of Packaging of FMCG products on the Consumer's Purchase Decision - A Study. *The International Journal of Management*, 36. https://doi.org/10.18843/IJMS/V5I3(2)/06

2.Dudu, O. F., & Agwu, M. E. (2014). A Review of the Effect of Pricing Strategies on the Purchase of Consumer Goods. *International Journal of Research in Management, Science & Technology*, 2, 88-102.

3.Gajjar, N. (2013). Factors affecting consumer behavior. *International Journal of Research in Humanities and Social Sciences*, 1(2), 10-15.

4. Kotler, P. Wong, U., Sanders, J., & Armstrong, G. (2001). *Principles of Marketing*.

5.Harlow: Pearson Education Ltd.

6.Kumar, D., & Kk, P. (2024). A Study on Factors Influencing Buying Preference of Consumers Towards Fast Moving Consumer Goods. *Shanlax International Journal of Management*. https://doi.org/10.34293/management.v11is1-mar.7999

7.Lama, P. B., & Chataut, M. K. (2022). Sales Promotion and Consumer Buying Behavior of FMCG Products In Kathmandu. *Journal of Development Review*, *7*(1), 18–27. https://doi.org/10.3126/jdr.v7i1.67011

8.Miremadi, A., & Faghanie, E. (2012). An Empirical Study of Consumer Buying Behavior and Its Influence on Consumer Preference in Iranian FMCG Market: A Case Study. *International Business Management*, *5*(1), 146–152. https://doi.org/10.3968/J.IBM.1923842820120501.1115

9.Mishra, Su. (2017). *A study on buying behavior of rural consumer towards selected FMCG products*. https://krishikosh.egranth.ac.in/handle/1/5810035358

10.Mamuaya, N. C. I. (2024). Investigating the Impact of Product Quality, Price Sensitivity, and Brand Reputation on Consumer Purchase Intentions in the FMCG Sector. *International Journal of Business, Law, and Education*. https://doi.org/10.56442/ijble.v5i2.614

11.Mahato, P. (2024). A Study of Consumer Buying Behavior and Brand Loyalty in a FMCG Market. *International Journal for Research in Applied Science and Engineering Technology*. https://doi.org/10.22214/ijraset.2024.61897

12.Rani, P. (2014). Factors influencing consumer behavior. *International journal of current research and academic review*, 2(9), 52-61.

13.Rafsanjani, R., Afriani, S. A., & Nurzam, N. (2023). *The Influence Of Advertising, Price And Display On Purchasing Decisions At Indomaret Betungan Bengkulu City*. https://doi.org/10.53697/jim.v3i4.1544

14.Raj, K. D., Devi, S., Sudarvel, J., & Velmurugan, R. (2024). *Impact of sales promotion techniques on consumer purchase intentions in FMCG products in Coimbatore*. 103–107. https://doi.org/10.4324/9781003606642-24

15.Steg, L., Bolderdijk, J. W., Keizer, K. and Perlaviciute, G. (2014). An integrated framework for encouraging pro-environmental behavior: The role of values, situational factors and goals. *Journal of Environmental Psychology*, 38, 104-115, DOI:10.1016/j.jenvp.2014.01.002

16.Sarker, M. A. H., & Rahman, M. (2017). Consumers' Purchasing Decision Toward Fast Moving Consumer Goods (FMCGs): An Empirical Study. *Social Science Research Network*. https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3515850

17.Sisodiya, P., & Sharma, G. (2018). *The Impact of Marketing Mix Model/Elements on Consumer Buying Behaviour:A Study of FMCG Products in Jaipur City*. *3*(1). https://doi.org/10.30780/IJTRS.V3.I1.2018.016

18.Shamshuddin, Dr. S., Venkateswarulu, T., adinarayana, U., Bangaruraju, I., & Ramarao, Dr. S. (2020). Buying Behaviour and Preferences of Consumers with Reference to Fmcg Goods in North Coastal Andhra Pradesh. *The International Journal of Management*, *4*(8), 5–15. https://doi.org/10.35940/IJMH.G0715.044820

19.Tyagi, V., Tyagi, A.K. & Pandey, V. (2014). A case study on consumer buying behavior towards selected FMCG products. *International journal of scientific research and management*, *2*(8), 1168-1182

किन्नर बच्चों के लिए संघर्षरत माँ- हिन्दी उपन्यासों के सन्दर्भ में

अमिता टेटे & डॉ. महेन्द्र कुमार वर्मा
अतिथि प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
जवाहरलाल नेहरू राजकीय महाविद्यालय
श्रीविजयपुरम, अंडमान निकोबार

माँ और संतान का संबंध संसार का सबसे पवित्र और निष्कलंक संबंध माना जाता है। यह वह नाता है जो किसी भी सामाजिक पहचान, लिंग, या परिस्थितियों की परवाह किए बिना अटूट प्रेम और अपनत्व का प्रतीक है। लेकिन जब संतान किन्नर (ट्रांसजेंडर) हो, तब यह संबंध और भी महत्वपूर्ण बन जाता है क्योंकि यह न केवल माँ की ममता की परीक्षा होती है, बल्कि समाज के रूढ़ विचारों के विरुद्ध स्नेह की एक सशक्त अभिव्यक्ति भी होती है। माँ और किन्नर संतान के प्रेम को समझना, दरअसल मानवीय संवेदनाओं की गहराई को समझना है। माँ की ममता कभी भी किसी शर्त या अपेक्षा पर आधारित नहीं होती। जब वह अपने बच्चे को जन्म देती है, तब वह नहीं देखती कि वह बच्चा किस लिंग का है या वह समाज की किस श्रेणी में फिट होता है। उसके लिए वह केवल उसका 'बच्चा' होता है – उसकी कोख से जन्मा, उसके दिल की धड़कन। जब माँ को पता चलता है कि उसका बच्चा एक किन्नर है, तो वह भले ही समाज के दृष्टिकोण से अनभिज्ञ न हो, परंतु उसके स्नेह में कोई कमी नहीं आती। बल्कि वह और अधिक संवेदनशील हो जाती है क्योंकि उसे पता होता है कि उसका बच्चा एक ऐसे जीवन की ओर बढ़ रहा है जहाँ उसे कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। किन्नर समुदाय को हमारे समाज में अब भी पूरी स्वीकृति नहीं मिली है। उन्हें तिरस्कार, उपेक्षा और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। कई बार माता-पिता स्वयं समाज के डर से अपने किन्नर बच्चे को अस्वीकार कर देते हैं। किंतु जहाँ माँ की ममता सच्ची होती है, वहाँ वह समाज की रूढ़ियों को तोड़कर अपने बच्चे के साथ खड़ी होती है। वह अपने किन्नर बच्चे को वह प्रेम, सुरक्षा और आत्मविश्वास देती है जिसकी उसे सबसे अधिक आवश्यकता होती है। किन्नर बच्चों का जीवन चुनौतियों से भरा होता है। पहचान की लड़ाई, शिक्षा और रोजगार में भेदभाव, और मानसिक तनाव जैसी समस्याओं से जूझते हुए उन्हें एक मजबूत सहारे की आवश्यकता होती है। माँ इस संदर्भ में एक सशक्त स्तंभ बनकर सामने आती है। इतना ही नहीं कभी-कभी माँ अपने किन्नर बच्चे को समाज और परिवार से बचाने के लिए रौद्र रूप भी धारण कर लेती हैI वह अपने बच्चे के लिए अपने पति से भी लड़ जाती है और जरुरत पड़ने पर रूढ़ियों से घिरे किन्नर समुदाय से भी संघर्ष करती है जो उसके किन्नर बच्चे को अपने समूह में सम्मिलित करने हेतु बच्चे को माँ से छीनने आ जाते हैंI वह न केवल अपने बच्चे को सामाजिक मानसिकता से लड़ने का साहस देती है, बल्कि उसे यह विश्वास भी दिलाती है कि वह जैसे है, वैसे ही पूर्ण और सम्मान के योग्य है।

यदि किसी परिवार में तृतीयलिंगी बच्चे का जन्म होता है तब ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम माँ ही इस बात से परेशान और चिंतित होती है क्योंकि परिवार में किसी भी बच्चे के प्रति माँ का व्यवहार समान ही देखा गया है। बच्चा चाहे जैसा भी हो माँ का प्यार सदैव समान रूप से प्रत्येक बच्चे के लिए उतना ही होता है जितना कि एक सामान्य बच्चे के लिए होता है। फिर इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि बच्चे में कोई शारीरिक, मानसिक या लैंगिक कमी है। अपने लैंगिक विकलांग बच्चे अर्थात् तृतीयलिंगी बच्चे के प्रति भी माँ अपने सामान्य बच्चों की ही भांति प्यार करती है। एक माँ को अपने किसी भी बच्चे की दरी सहन नहीं होती। बच्चे के दूर जाने की कल्पना मात्र से ही वह शिहर उठती है। समाज के द्वारा बनाये गये नियमों के चलते ऐसा प्रचलन हो गया है कि यदि परिवार में किसी तृतीयलिंगी बच्चे का जन्म होता है तो उस बच्चे को घर में नहीं रखा जा सकता। ऐसे बच्चों को या तो पारिवारिक अन्य सदस्य स्वयं कहीं दूर कर देंगे या फिर तृतीयलिंगी समुदाय जानकारी होने पर इन बच्चों को इनके परिवार से दूर करने का पुरजोर प्रयास करेगा। ऐसे में एक माँ अपने बच्चे से जुदा होने या उसे खो देने की कल्पना मात्र से दु:खी हो जाती है। नीरजा माधव कृत 'यमदीप' उपन्यास में ऐसा ही कुछ देखने को मिलता है। जिसमें उपन्यास की मुख्य पात्र नंदरानी जिसका जन्म एक तृतीयलिंगी के रूप में हुआ और जब तृतीयलिंगी समुदाय के लोगों को इस बात की जानकारी हुई तब वे नंदरानी के घर उसे लेने पहुंच जाते हैं। किंतु उनके आते ही नंदरानी की माँ उनके प्रयोजन को जानकर, अपनी बच्ची को बचाने के लिए गुस्से से उनको भगाने का प्रयास करती है। उस समय एक माँ की ममता अपने रौद्र रूप में बाहर आ जाती है। नंदरानी की माँ द्वारा तृतीयलिंगी समुदाय के लोगों पर प्रकट किये क्रोध को नंदरानी इस प्रकार बयां करती है- ***"हे ज्यादा बढ़-चढ़ के न बोलो। चलो, भागो यहाँ से! मम्मी दहाड़ उठी थीं। ममता के लुटने के विचार मात्र से उनके डर ने अंदर से एक खूंखार आदमखोर सिंह का आकार ग्रहण कर लिया था।"*** [1]
अधिकांशतः यह पाया गया है कि तृतीयलिंगी समुदाय जैसे ही इस बात की जानकारी प्राप्त कर पाता है कि कहीं किसी घर में तृतीयलिंगी बच्चे का जन्म हुआ है, वे शीघ्र ही अपने समुदाय के लोगों के साथ उस बच्चे को लेने पहुंच जाते हैं। ऐसे में एक माँ को अपने तृतीयलिंगी बच्चे के प्रति असुरक्षा की भावना पैदा हो जाती है। किंतु यह तो बाहरी खतरा है जोकि एक माँ अपने तृतीयलिंगी बच्चे के प्रति महसूस करती है, लेकिन वह इस बात से भी भली-भांति वाकिफ होती है कि उसका पति उसके तृतीयलिंगी बच्चे को कभी स्वीकार नहीं करेगा। इसीलिए वह सदैव अपने उस बच्चे के बचाव का प्रयास करती है। किंतु वह एक पत्नी होने की वजह से कभी-कभी खुलकर अपने पति का विरोध नहीं कर पाती। इसी वजह से उसके बच्चे को पति द्वार दी गयी प्रताड़ना को सहन करना पड़ता है। किंतु पति के जाने के उपरांत वह अपने बच्चे की तकलीफों पर रोती-बिलखती है। उसके जख्मों को देख-देख स्वयं भी बच्चे के दु:ख में दु:खी हो जाती है। महेन्द्र भीष्म कृत 'मैं पायल' उपन्यास में ऐसा ही एक संदर्भ उल्लिखित है। जिसमें उपन्यास की मुख्य पात्र पायल जोकि तृतीयलिंगी है और इसी बात को उसके पिता सहन नहीं कर पाते। जिसकी वजह से पायल को पिता की बेतहाशा मार को सहन करना पड़ता है। किंतु पायल के पिता के जाने के उपरांत उसकी माँ पायल की चोटों पर मरहम लगाती है और उसके दु:ख में स्वयं भी दु:खी हो जाती है। जिसका उल्लेख उपन्यास में इस प्रकार किया गया है- ***"पिता जी के जाने के बाद मेरी दुखती चोटों को देखा जाता उन पर दवा का लेप किया जाता, अम्मा सिंकाई करते रोती जातीं, विलाप करने लगतीं। भगवान से मेरे लिए प्रार्थना करतीं..... मैं अम्मा को***

चुप कराती और खुद भी सुबकने लगती। देखा-देखी सभी बहिनें रोने लग जातीं। एक ऐसा शोक का वातावरण कुछ देर के लिए बन जाता जैसे कोई बहुत बड़ा अनिष्ट हो चुका है या जल्दी ही होने वाला है।" [2] एक माँ इस बात को भली-भाँति जानती होती है कि जो बच्चा उसकी कोख से तृतीयलिंगी के रूप में जन्मा है, उसमें उस बच्चे का कोई कुसूर नहीं है और शायद परिवार के अन्य सदस्य भी इस बात से वाकिफ होते हैं किंतु वे इसबात को मानना नहीं चाहते और उस तृतीयलिंगी बच्चे को प्रताड़ित करते हैं, उसे खरी-खोटी सुनाते हैं। यहाँ तक कि उसे घर-परिवार से बेदखल भी कर देते हैं। किंतु एक माँ ही है जो उस बच्चे की तकलीफ को समझती है और सदैव उसके बचाव के प्रयास में लगी रहती है। एक बच्चा जिसने तृतीयलिंगी के रूप में जन्म लिया है, इसमें उस बच्चे की क्या गलती है? इस बात को भी परिवार के सदस्यों को समझना चाहिए। किंतु ऐसा नहीं होता और माँ को अपने उस बच्चे के बचाव के लिए आगे आना पड़ता है। ऐसा ही एक संदर्भ नीरजा माधव कृत 'यमदीप' उपन्यास में उल्लिखित है। जिसमें उपन्यास की मुख्य तृतीयलिंगी पात्र नंदरानी के भाई को इस बात की चिंता सताती है कि घर में नंदरानी की वजह से अन्य लोगों के शादी-विवाह में बाधा उत्पन्न होगी। तब नंदरानी की माँ अपने बेटे को इस प्रकार समझाती है- ***"अरे चुप रे नंदन। नंदरानी सुन लेगी तो उसका मन कितना अधीर होगा। वह अभागिन क्या करे? स्वयं तो नहीं गढ़ा उसने अपना शरीर? मेरी कोख ही ऐसी ऐबही रही तो वो क्या करे?"*** [3] एक माँ के लिए उसकी संतान सर्वोपरि होती है। बात चाहे सामान्य बच्चे की हो या फिर तृतीयलिंगी या फिर उसमें किसी अन्य प्रकार की कमी हो, माँ बच्चों में भेद नहीं करती। वह सबको सामान्य रुप से प्रेम करती है। माँ अपनी संतान के लिए ममता के वशीभूत होती है और इसी वजह से वह अपने प्रत्येक बच्चे पर बेहिसाब प्रेम लुटाती है। किंतु तृतीयलिंगी बच्चे का नाम सुनते ही एक पिता के लिए बहुत मुश्किल हो जाता है कि वह उस बच्चे के साथ एक ही घर में रह सके। इसलिए उस बच्चे को अपने पिता की प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है। हर संभव प्रयास किया जाता है कि उस बच्चे को स्वयं से, उसकी माँ से और समस्त परिवार से दूर कर दिया जाए। इसके लिए पिता उस बच्चे को मार-पीट से लेकर हर प्रकार की प्रताड़ना देते हैं। किंतु एक माँ को जब इस बात की जानकारी होती है कि पति द्वारा उसके बच्चे को प्रताड़ित किया जा रहा है तब वह अपनी ममता को नहीं रोक पाती और हर संभव प्रयास करती है कि वह अपने पति से उस बच्चे को बचा ले। कभी-कभी तो माँ को ऐसे बच्चे के लिए अपने पति का सामना भी करना पड़ता है और उस बच्चे की जगह स्वयं को ही उस मार-प्रताड़ना के लिए प्रस्तुत होना पड़ता है। ऐसा ही एक जीवंत उदाहरण भगवंत अनमोल के उपन्यास 'जिंदगी 50 50' में दिया गया है। जिसमें उपन्यास की पात्र हर्षा जो कि तृतीयलिंगी है, जिससे उसके पिता बहुत नाराज रहते हैं। वे उसे अक्सर अपने कोप का भाजन बनाते रहते हैं। किंतु एक दिन हर्षा की माँ को जब इस बात की जानकारी होती है कि उसके पति हर्षा को बेइंतहा पीटे जा रहे हैं, तब वह अपने पति और अपने बच्चे हर्षा के बीच आ जाती है। और अपनी ममता के वशीभूत होकर अपने बच्चे को बचाने के लिए अपने पति से संघर्ष करती हुई नजर आती है। जिसका उल्लेख उपन्यास में इस प्रकार है - ***"अगर मारना ही है तो पहले हमें मारो। हमारी लाश मा चढ़ के तुम हमरे बेटा को मार सकते हो। एक माँ का हृदय बोल उठा। वह जोर-जोर से रो रही थी और चिल्लाये जा रही थी, आखिर का गुनाह किया है इसने?"*** [4] जब एक स्त्री को तृतीयलिंगी बच्चा होता है तब वह इस बात से भली-भांति परिचित होती है कि उसके उस बच्चे का क्या अंजाम होगा। क्योंकि हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज है और ऐसे समाज में परिवार में तृतीयलिंगी बच्चे का होना परिवार और पुरुषत्व पर दाग के समान समझा गया है। इसलिए एक माँ जब तृतीयलिंगी बच्चे को जन्म देती है तब उसका चिंतित होना स्वाभाविक हो जाता है। वह सदैव इस बात को लेकर चिंतित रहती है कि कैसे वह अपने पति से उस तृतीयलिंगी बच्चे को बचाए? जरूरत पड़ने पर माँ किसी भी व्यक्ति के सामने अपने तृतीयलिंगी बच्चे की असलियत को छिपाने के लिए प्रार्थना करती हुई दिखने लगती है। चाहे वह व्यक्ति उसके समकक्ष हो या उससे छोटा। महेन्द्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' उपन्यास में ऐसी ही एक माँ का उल्लेख किया गया है। जिसमें उपन्यास की पात्र आभा जिसने एक तृतीयलिंगी बच्ची को जन्म दिया है और उसे इस बात की जानकारी होते ही वह दाई निरंजना से इस राज को छिपाने की प्रार्थना करती है। ताकि परिवार की लाज के लिए उसे अपनी बच्ची की कुर्बानी न देनी पड़े। जिसका उल्लेख उपन्यास में इस प्रकार दिया गया है- ***"क्या? एक साथ सैकड़ों बिजलियां आभा की आंखों के सामने कौंध गईं। वह सन्न रह गई। कभी वह अपने हिजड़े बच्चे को देखती तो कभी सामने खड़ी निरंजना का मुंह ताकती, क्या करे, क्या न करे? आभा की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। सोच में काफी देर डूबी रहने के बाद भरे गले वह निरंजना से बोली, काकी! अब हमाई सबकी लाज तुमाए हाथन है।"*** [5] माँ अपने बच्चे को बचाने का हर संभव प्रयास करती है। खासकर तब जब उसे अंजाम की जानकारी हो। वह अपने बच्चे को बचाने के लिए किसी भी हद तक गुजर सकती है और इसके बदले कुछ भी लुटा सकती है। बस उसे अपने बच्चे की फिकर होती है, इसके सामने उसे धन, संपत्ति का मोह नगण्य महसूस होता है। इसीलिए जब आभा को अपनी तृतीयलिंगी बच्ची की जानकारी हुई, तब उसे अपने पति के गुस्सैल स्वभाव के सामने अपनी बच्ची का भविष्य खतरे में नजर आया। तब वह निरंजना से अपनी बच्ची को बचाने के लिए इस राज को छिपाने के एवज में निरंजना को मुंह मांगी धन-संपत्ति देने को तैयार हो जाती है। जिसका उल्लेख महेन्द्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' उपन्यास में इस प्रकार है- ***"तुम तो दायजू को सुभाव जानती हो, कितेक गुस्सैल हैं वे, जा खबर तो वे बरदाश्त न कर पेहें, काकी तुमें जा बात सबसे छुपाने परे, हमाये तुमाये के अलावा कोऊ न जान पाए, दायजू भी....उने पतो परे तो वे ई नन्हीं-सी जान खां मरवा डारे, काकी तुमें हमाई सौगंध....तुमें जो रुपइय्या पईसा चाऊने हो, मैं मौ मांगी करों, पर तुमें ई बात हां एकदम गुप्त रखने।"*** [6] इसी उपन्यास में आभा सदैव इस बात से चिंतित रहती थी कि उसकी पुत्री सोना जोकि तृतीयलिंगी है, वह कभी भी उसके पति जगतराज के हाथों न पहुंच पाये। क्योंकि वह जानती थी कि अगर ऐसा हुआ तो उसका भेद खुल जाएगा और उसकी पुत्री सोना की जान खतरे में आ जाएगी। किंतु एक दिन किसी धार्मिक आयोजन के समय सोना की जुड़वा बहन जगतराज की गोद में पहुंच गई। जिसे देखकर आभा की चिंता और बढ़ गई। क्योंकि आभा इस बात से अंजान थी कि जो बच्ची उसके पति की गोद में है वह सोना नहीं बल्कि उसकी जुड़वा बहन रूपा थी। इसलिए आभा भगवान से अपनी ममता को लुटने से बचाने की प्रार्थना कर रही थी। जिसका उल्लेख उपन्यास में इस प्रकार से किया गया है- "***आभा को अपने सिर पर सैकड़ों पहाड़ टूटते-से लगे। पति देव की गोद से बच्ची कैसे ले? वह उपाय सोच ही रही थी कि जगतराज ने बच्ची की गीली चड्ढी फिर कलोट हटा दी। आभा ने अपने नेत्र मूंद लिए। निरंजना पहले ही हाथ जोड़े, बंद आंखों से ईश्वर का स्मरण कर रही थी।"***[7] इसी उपन्यास में आभा ममता के वशीभूत और अपनी बच्ची को खोने के डर से इस प्रकार घबरा गई थी कि उसे इस

बात का भान भी नहीं हुआ था कि जो बच्ची उसके पति की गोद में है वह सोना की जुड़वा बहन है, और उसकी तृतीयलिंगी बच्ची सोना तो उसकी ही गोद में है। किंतु आभा ने इसके विपरीत कल्पना की थी जिसके परिणाम स्वरूप वह डर गई थी और ईश्वर से अपनी बच्ची को बचाने की प्रार्थना कर रही थी। जैसे ही उसे इस बात की भनक लगी कि उसकी सोना तो उसकी ही गोद में खेल रही है, उसने उसे दुलारना शुरू कर दिया। इस संदर्भ का उल्लेख उपन्यास में इस प्रकार है-***"कुछ पल शांति के साथ व्यतीत हो गए, कहीं कोई हलचल नहीं। आभा धीरे-धीरे अपनी आंखें खोलती है, वह क्या देखती है कि पति देव बच्ची के कपड़े बदल उसे सही कर रहे थे, तो क्या? आभा की सांस में सांस आई। उसने अपनी गोद में लेटी दूसरी बच्ची को देखा। वह नन्हीं नटखट माँ की गोद में लेटी अपनी आंखें मटकाए उसे ही निहार रही थी। आभा ने ईश्वर को याद किया, गोद में लेटी बच्ची को प्यार से उठाकर चूम लिया। किन्नर बच्ची के गाल माँ की आंखों के आंसुओं से गीले हो गए।"*** [8] किसी माँ से जब उसका बच्चा बिछड़ जाता है तब ऐसी परिस्थिति में उस माँ का जीवन किसी नर्क से कम नहीं होता। भले ही वह बच्चा तृतीयलिंगी ही क्यों न हो। किंतु जो दर्द और पीड़ा एक माँ महसूस करती है उसे एक पिता शायद ही कभी समझ पाता हो। उपर्युक्त उपन्यास में आभा बहुत प्रयास करती है कि सोना जोकि तृतीयलिंगी है उसे अपने पति से दूर रखे किंतु वह अपने इस प्रयोजन में सफल नहीं हो पाती और जगतराज को जब सोना के तृतीयलिंगी होने की जानकारी मिलती है तब वह उसे उसकी माँ से जुदा कर देता है। जगतराज उस समय एक माँ की पीड़ा को महसूस नहीं कर पाता क्योंकि उसे सोना अपने वंश पर कलंक जैसी लग रही थी। किंतु एक माँ होने के नाते आभा को इन सब बातों से कोई सरोकार नहीं था। वहीं जगतराज को एक माँ की पीड़ा से कोई सरोकार नहीं था। उपन्यास में आभा के दःख और जगतराज के पत्थर दिल को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है- ***"दूसरी ओर सोना के विछोह और उसके साथ हुए अंजाम से आभा का रो-रोकर बुरा हाल था। बच्चे के लिए हीड़ती माँ के हृदय में समाए दुःख-दर्द, पीर की लहर को कोई माँ ही महसूस कर सकती थी। पाषाण हृदय जगतराज जैसा पिता कदापि नहीं। संतान का विछोह सबसे बड़ा संताप है। जिसे पिता से कहीं अधिक माँ शिद्दत से महसूस करती है, भोगती है, कलपती है।"*** [9] एक माँ के लिए उसके बच्चे ही उसकी दुनिया और दुनिया की सारी खुशियों के समान होते हैं। वह अपने बच्चों के अंदर की प्रतिभा को जानती होती और उसी अनुरूप अपने बच्चे के सुनहरे भविष्य की कल्पना करती है। माँ अपने बच्चों के सपने साकार करने में हर संभव मदद करती है। किंतु कभी-कभी समाज के द्वारा बनाये गये नियमों के चलते विघ्न उत्पन्न हो जाता है और बच्चे के साथ-साथ माँ को भी उसके दुःख का सहयोगी बनना पड़ता है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नम्बर 203 नाला सोपारा' में ऐसी ही एक विडंबना का उल्लेख किया गया है। जिसमें उपन्यास का मुख्य पात्र बिन्नी जोकि तृतीयलिंगी है और इसी के चलते उसे उसकी माँ से दूर कर तृतीयलिंगी समुदाय के हाथों सौंप दिया जाता है। बिन्नी गणित में होशियार था और उसकी माँ का यह सपना था कि उसके पुत्र का भविष्य एक गणितज्ञ के रूप में है और वह अपना सपना टूटने नहीं देती। इस बात का उल्लेख बिन्नी की माँ ने उपन्यास में इस प्रकार किया है- ***"मैंने भी उन्हें चिट्ठी लिखी थी। मेरे दीकरे की प्रतिभा आपकी विरासत है। देश-विदेश में व्यस्त रहती हैं आप अक्सर लेकिन किसी रोज ऐसा होगा। आप स्वयं आएंगी मेरे दीकरे से मिलने। गर्व करेंगी। मुझे नहीं मालूम मेरे बच्चे का सपना क्या है? लेकिन मैं जानती हूँ उसे लेकर मेरा सपना क्या है? वह दुनिया का सबसे बड़ा गणितज्ञ बनेगा। अपना सपना कभी टूटने नहीं दूंगी शकुंतला जी।"*** [10]

माँ और किन्नर बच्चे के प्रेम से हमें यह सीखने को मिलता है कि प्रेम की कोई सीमा नहीं होती। यह न रिश्तों की परंपरागत परिभाषाओं में बंधा है, न ही सामाजिक पहचान की शर्तों में। यह प्रेम हमें इंसानियत के उस शिखर पर ले जाता है जहाँ केवल करुणा, स्नेह और स्वीकृति का स्थान होता है। माँ के माध्यम से यह संदेश जाता है कि किन्नर बच्चे भी उतने ही प्रेम, अधिकार और गरिमा के पात्र हैं जितने कोई और। माँ और किन्नर बच्चे का संबंध केवल एक व्यक्तिगत रिश्ता नहीं है, बल्कि यह समाज को एक व्यापक संदेश देता है – कि हर जीवन समान रूप से मूल्यवान है और हर रिश्ते को समान रूप से सम्मान मिलना चाहिए। यदि हर माँ अपने किन्नर बच्चे को उसी ममता से स्वीकारे जैसी वह अन्य बच्चों के लिए रखती है, तो न केवल उस बच्चे का जीवन उज्ज्वल हो सकता है, बल्कि समाज में समावेश, करुणा और प्रेम की एक नई परंपरा की शुरुआत हो सकती है।

संदर्भ सूची :-

1) यमदीप, पृ. – 249
2) मैं पायल, पृ. – 34
3) यमदीप, पृ. – 248
4) जिन्दगी 50 50, पृ. – 42
5) किन्नर कथा, पृ. – 16
6) वही, पृ. – 16
7) वही, पृ. – 19
8) वही, पृ. – 16
9) वही, पृ. – 43
10) पोस्ट बॉक्स नम्बर 203 नाला सोपारा, पृ. – 72

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी नारियों का आर्थिक संघर्ष

सुमन बारला& डॉ. महेन्द्र कुमार वर्मा
अतिथि प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
जवाहरलाल नेहरू राजकीय महाविद्यालय
श्रीविजयपुरम, अंडमान निकोबार

भारत के आदिवासी समाज की अपनी विशिष्ट जीवनशैली है, जो अन्य समाजों से सर्वथा भिन्न और प्रकृति के अत्यंत समीप है। इस समाज की नारियाँ विशेष रूप से इस जीवनशैली की आधारशिला रही हैं। उनका जीवन पूरी तरह से प्रकृति पर आधारित रहा है, क्योंकि वे प्राचीन काल से ही वनों, पर्वतों, नदियों और घाटियों जैसे दुर्गम स्थलों में निवास करती आई हैं। प्रकृति की गोद में पली-बढ़ी इन नारियों ने न केवल अपने परिवार के पोषण की जिम्मेदारी निभाई, बल्कि समाज की आर्थिक रीढ़ भी बनीं। आदिवासी महिला का जीवन प्रकृति से इतना गहराई से जुड़ा हुआ है कि उसकी दिनचर्या, परंपराएँ, विश्वास और आजीविका सब कुछ प्रकृति पर निर्भर करते हैं। वनों से प्राप्त लकड़ी, फल, कंद-मूल, जड़ी-बूटियाँ, बांस आदि उनके जीवन के अभिन्न अंग हैं। यही कारण है कि उनकी आर्थिक आवश्यकताएँ भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इन्हीं संसाधनों से पूरी होती रही हैं। प्राचीन काल में आदिवासी समाज का जीवन अत्यंत सरल एवं स्वावलंबी था। जीवन में वस्तुओं के आदान-प्रदान से ही अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती थी। धन का महत्व गौण था। आदिवासी महिलाएँ अपने श्रम और कौशल से परिवार के लिए आवश्यक वस्तुएँ स्वयं जुटा लेती थीं। वे कृषि में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करतीं, जंगलों से भोजन, ईंधन व अन्य उपयोगी वस्तुएँ एकत्र करतीं और परिवार के भरण-पोषण में केंद्रीय भूमिका निभाती थीं वर्तमान समय में जब संपूर्ण विश्व तेजी से बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति की ओर बढ़ रहा है, तब आदिवासी समाज भी इससे अछूता नहीं रह गया है। जीवन अब केवल प्रकृति पर आधारित नहीं रह गया, बल्कि आर्थिक संसाधनों की आवश्यकता अधिक होने लगी है। ऐसे में आदिवासी महिलाएँ भी पारंपरिक भूमिकाओं से आगे बढ़कर नए व्यवसायों से जुड़ने लगी हैं। वे जंगलों से खाद्य सामग्री, औषधीय पौधे एवं वनोपज का संग्रहण करती हैं, जिन्हें बाजार में बेचकर धन अर्जित करती हैं। इसके अलावा वे बकरी पालन, मुर्गी पालन, झाड़ू-बनाई, टोकरी बुनाई, हथकरघा आदि जैसे लघु एवं कुटीर उद्योगों से भी जुड़ने लगी हैं। इंटरनेट के इस तेज़ रफ्तार युग में, जहाँ मनुष्य एक ही स्थान पर बैठे-बैठे पूरे विश्व की सैर कर सकता है, वहीं जीवन की सभी आवश्यक वस्तुएँ ऑनलाइन माध्यम से मात्र एक आदेश पर घर के द्वार पर उपलब्ध हो जाती हैं। ऐसे तकनीकी और मशीनी युग में भी समाज का एक वर्ग आदिवासी समुदाय आज भी बुनियादी सुविधाओं से वंचित है। अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आदिवासी नारियाँ जंगलों से प्राप्त वनोपज को बेचने के लिए मीलों पैदल चलकर स्थानीय हाट-बाजारों में आती हैं। गरीबी से जूझती ऐसी ही एक आदिवासी नारी का संवेदनशील चित्रण महुआ माझी ने अपने उपन्यास **'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ'** में किया हैं। इस उपन्यास में आदिवासी स्त्री की संघर्षपूर्ण दिनचर्या का उल्लेख करते हुए लेखिका लिखती हैं- ***"सारंडा की सात सौ पहाड़ियों में से एक पहाड़ी के बीच किसी दुर्गम घाटी वाले हतु या सई से आई थी वह। टोकरी भर पके हुए तिरिल (केंदु) फल बेचने... तिरिल खरीदने इक्के-दुक्के ग्राहक ही आ रहे थें... हाट में अपना-अपना सामान बेचकर जो पैसे मिलते हैं, उनसे नमक और चावल ही खरीदा जा सके तो बहुत है।"***[1] आदिवासी नारियों के लिए वनों से प्राप्त होने वाली सभी वस्तुएँ आर्थिक कमाई का साधन रही हैं, किंतु इनमें सबसे अधिक मूल्यवान उनके लिए **महुआ** है। आदिवासी समाज में महुआ का महत्व किसी सोने से कम नहीं आँका जाता। महुआ का उपयोग भोजन के रूप में भी किया जाता है तथा उससे देशी शराब भी बनाई जाती है। यही कारण है कि महुआ, चाहे जिस भी रूप में और जहाँ से भी प्राप्त हो, आदिवासी महिलाएँ उसे एकत्रित करने का कोई अवसर नहीं छोड़तीं। वनोपज महुआ की उपयोगिता और उसके संग्रहण में आदिवासी नारियों की कठिन मेहनत को राकेश कुमार सिंह ने अपने उपन्यास **'महाअरण्य में गिद्ध'** में प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। आर्थिक दृष्टि से महुए का महत्त्व आदिवासी नारियाँ भली-भाँति समझती हैं, इसीलिए वे न केवल उसका संग्रहण करती हैं, बल्कि उसे पालतू पशुओं से बचाने का भी हर संभव प्रयास करती हैं। इस संदर्भ का वर्णन राकेश कुमार सिंह के 'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास में इस प्रकार वर्णित किया गया है- ***"निकट के गाँव -टोले की स्त्रियाँ दिन के तीसरे पहर से सूरज के डूबने तक मेले में पहुँचती रहती थीं और रात अधियाने तक मेले से निवृत होकर वापस अपने गाँव के लिए लौट पड़ती थीं ताकि भोर में महुआ बीनने का अनिवार्य कार्य कदापि नागा न हो सके। भोर हो चुकने के बाद जंगली सूअर और चरने के लिए छोड़े गये ढ़ोर-डाँगर महुए के फूल खाने लगते हैं। महुए की उपेक्षा किसी कीमत पर नहीं की जा सकती क्योंकि भूमिहीन निर्धन वनवासियों के लिए महुआ ठहरा जंगल का खरा सोना... वृक्षों की छाया में टपक कर चादर की भांति बिछा ताजा महुआ हो या सूखा लिया गया फूल... जब इच्छा हो नकदी में बदली जा सकने वाली बिन पूंजी की फसल है यह प्रकृति प्रदत्त वरदान।"***[2] आदिवासी समाज में पारिवारिक जीवन की धुरी प्रायः नारी होती है। परिवार के भरण-पोषण की संपूर्ण जिम्मेदारी उसी के कंधों पर होती है। इस दायित्व के निर्वहन हेतु वह प्रतिदिन जंगलों की ओर प्रस्थान करती है, जहाँ से वह वनोपज एकत्रित करती है। यही वनोपज न केवल उनके परिवार का पेट भरती हैं, बल्कि उनकी आर्थिक आजीविका का भी प्रमुख साधन बनती हैं। लेखक राकेश कुमार सिंह ने अपने उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' में संथाल आदिवासी स्त्रियों के इस संघर्षशील जीवन का अत्यंत संवेदनशील चित्रण किया है। अन्य आदिवासी समुदायों की स्त्रियों की भाँति संथाल नारियाँ भी दिनभर के घरेलू कार्यों से निवृत्त होकर, भोजन एवं आवश्यक सामग्री की खोज में जंगलों की ओर निकल पड़ती हैं। उपन्यास में संथाल नारियों द्वारा वनोपज संग्रहण की प्रक्रिया को इस प्रकार चित्रित किया गया है- ***"गिरि-पड़ी सूखी पत्तियों का ईंधन अभी भी बटोर लाती थीं संथाल स्त्रियाँ... बाघामुंडी की लड़कियाँ जंगल के भीतर तक धँस पड़ती थीं। करील, गँता, बेल और करौंदे बीनती थीं। बड़े-बड़े बाँस के खाँचों में सूखे पत्ते बटोर लाती थीं।"***[3] आदिवासी नारी की श्रमशीलता उसका स्वाभाविक गुण है, जो उसे बीहड़ जंगलों को भी खेती योग्य भूमि में बदलने की प्रेरणा प्रदान करता है। अपने अटूट संकल्प, अदम्य साहस और कठिन परिश्रम के बल पर उसने अनेक दुर्गम स्थानों को न केवल निवास योग्य बनाया है, बल्कि वहाँ उपजाऊ खेत भी तैयार किए हैं। इस कार्य में

आदिवासी नारियों का योगदान अत्यंत सराहनीय और प्रेरणास्पद रहा है। आदिवासी महिलाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों का सहचर बनकर कार्य करती हैं। वे कंधे से कंधा मिलाकर अपने समुदाय के आर्थिक और सामाजिक विकास में भागीदारी निभाती हैं। उनकी सहभागिता ने यह सिद्ध कर दिया है कि संसाधनों की कमी के बावजूद, यदि श्रम और सहयोग की भावना हो, तो कोई भी समाज प्रगति की दिशा में अग्रसर हो सकता है। आदिवासी नारियों के कठोर श्रम और जुझारूपन का सजीव चित्रण प्रसिद्ध लेखक **हरिराम मीणा** ने अपने उपन्यास **'धूणीतपे तीर'** में किया है। इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष मिलकर घने वनों को खेती योग्य भूमि में बदलने के लिए कठिन परिश्रम करते हैं। जंगलों की विशाल झाड़ियों, नागफणी और कंटीली झाड़ियाँ काटना, तथा धरती की गोद में गहराई तक समाई जड़ों को उखाड़ फेंकना अत्यंत श्रमसाध्य कार्य है। लेखक ने इस श्रम-संस्कृति का वर्णन इन शब्दों में किया है- **"अगले दिन सूरज उगने से पहले ही आदिवासी औरत-मर्द दड़वाह के जंगल में पहुँच गये। गेंती, फावड़े, कुदाल व कुल्हाड़ियाँ लेकर जंगल के दरख्तों, थार, नागफाणियों और झाड़ियों को काटने के काम में सामूहिक रूप से जुट गए। थार नागफणी और कंटीली झरबेरी को काट कर उखाड़ने में काफी मेहनत करनी पड़ रही थी।"**[4] आदिवासी नारियों ने जीवन यापन के सभी संभावित उपाय अपनाए, किंतु समाज ने उन्हें हर स्तर पर हाशिए पर ही रखा। अत्यधिक निर्धनता और अभाव के कारण, वे भूख-प्यास से जूझती रहीं और अंततः जीवन रक्षा के लिए उन्हें अवैध कार्यों की ओर अग्रसर होना पड़ा। रोजगार के अभाव में आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उन्होंने मजबूरी में शराब के व्यापार को अपनाया। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास *'अल्मा कबूतरी'* में कबूतरा जाति को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करते हुए चित्रित किया गया है। भूमिहीन कबूतराओं ने किसानों से थोड़ी-सी जमीन निवास हेतु मांगी, किंतु पैसे न होने के कारण वे भूमि का मूल्य अदा नहीं कर सकीं। तब उनके समुदाय के मुखिया ने किसानों को मुफ्त शराब देने और बदले में जमीन देने का प्रस्ताव रखा, जो अंततः स्वीकार कर लिया गया। किसानों की अनुमति मिलने पर कबूतरी महिलाओं ने खेतों में ही शराब की भट्टियाँ स्थापित कीं और इस व्यवसाय को अपनी आजीविका का साधन बना लिया। उपन्यास में इस व्यापार का चित्रण कुछ इस प्रकार किया गया है- ***"खेतों में कच्चे ओटले उठने लगे। भट्टियां खुदने लगी। घड़े और कनस्तर आए। महुआ और गुड़ केखमीर ने फसलों को घेर लिया। दारू और दारा के मेल ने गांवों पर मूठ मारी। किसान मंत्रबिद्ध से खींचे चले आते। कबूतारियाँ ढालती, पिलाती। बसावटें आबाद हो गई। आज तो हाल यह है कि आदमी लैसेंसी ठेकेदारों के यहाँ न जाकर कबूतरा-बस्ती में पहुंचता है। वैध -अवैध का भेद भुलाकर छककर पीता है।"***[5] भारत एक ऐसा देश है जहाँ नारी को सदा से देवी के रूप में पूजनीय माना गया है। यहाँ तक कि राष्ट्र को भी 'भारत माता' कहकर संबोधित किया जाता है। नारी अपने विविध रूपों में सम्मान की अधिकारिणी है, किंतु जब वह आर्थिक तंगी और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के बोझ से विवश होकर देह व्यापार का मार्ग अपनाने को बाध्य हो जाती है, तब वही समाज उसकी गरिमा को कलंकित दृष्टि से देखने लगता है। उसकी संपूर्ण प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती है। वेश्यावृत्ति न केवल उस स्त्री की अस्मिता को आघात पहुँचाती है, बल्कि पूरे समाज की नैतिक संरचना को भी प्रश्नांकित करती है। परिणामस्वरूप, इस क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं को समाज तिरस्कार, बहिष्कार एवं अमानवीय व्यवहार का सामना करने के लिए छोड़ देता है। देह व्यापार में संलग्न महिलाएं विभिन्न जातियों और समुदायों से आती हैं। इस क्षेत्र में आने का प्रमुख कारण निर्धनता है, यद्यपि आधुनिक जीवन की चकाचौंध और भोगवादी प्रवृत्ति भी कभी-कभी इस ओर करती है। परंतु यदि हम विशेष रूप से आदिवासी नारियों की बात करें, तो उनके देह व्यापार में प्रवेश का मूल कारण भौतिक विलास नहीं, बल्कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति है। जातीय भेदभाव एवं सामाजिक उपेक्षा के चलते आदिवासी महिलाओं को उचित रोज़गार के अवसरों से वंचित रखा गया। बेरोज़गारी और भुखमरी ने उन्हें अस्तित्व संकट की ओर धकेल दिया। जब जीविका के अन्य साधन समाप्त हो गए, तब तथाकथित सभ्य समाज ने उनकी विवशता का लाभ उठाकर उन्हें देह व्यापार में धकेल दिया। भूख, नग्नता, जातिगत उत्पीड़न और प्रशासनिक बर्बरता की शिकार ये महिलाएं धीरे -धीरे इस दलदल में धँसती चली गईं। शरद सिंह द्वारा रचित उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' में बेड़िया समुदाय की महिलाओं की पीड़ा, उनकी आर्थिक विवशता और उनके साथ हुए दैहिक शोषण का मार्मिक चित्रण मिलता है। हमारा समाज दोहरे मापदंड अपनाता है— एक ओर तो वह आदिवासी महिलाओं को जातिगत आधार पर हेय दृष्टि से देखता है और उन्हें मुख्यधारा से अलग कर देता है, वहीं दूसरी ओर उन्हीं महिलाओं का उपभोग कर अपने कामुक स्वार्थों की पूर्ति भी करता है। परिणामस्वरूप, बेड़नियाँ मात्र परिवार का पेट भरने के लिए पुरुषों की कामनाओं का शिकार बनने को विवश हो जाती हैं। शरद सिंह बेड़िया नारियों की विवशता को इन शब्दों में व्यक्त करती हैं— **"वे भूख, गरीबी और कामुक-पशुता के विरुद्ध जीवित रहना चाहती थी और इस के बदले में उन्हें 'पतुरिया'-'नचनिया'-'नचनारी' बनने के लिए विवश किया जा रहा था।"**[6] देहव्यापार कोई महिला अपनी रुचि या शौकवश नहीं करती, बल्कि यह उसकी आर्थिक विवशता का परिणाम होता है। यदि उन्हें सम्मानजनक रूप से आजीविका अर्जित करने का कोई और विकल्प उपलब्ध हो, तो वे इस अपमानजनक कार्य की ओर कभी न जाएँ। तथाकथित सभ्य समाज एक ओर तो इस कार्य को नैतिकता के विरुद्ध और घृणित ठहराता है, वहीं दूसरी ओर अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उन्हीं आदिवासी नारियों को इस कार्य में ढकेलता है। स्वयं को सभ्य कहलाने वाला समाज परोक्ष रूप से इस व्यापार का लाभ उठाता है, जबकि वास्तविकता यह है कि आदिवासी महिलाएँ महज अपने परिवार का भरण-पोषण करने की मजबूरी में यह कार्य करती हैं। इसके बावजूद समाज उन्हें हेय दृष्टि से देखता है और उन्हें अपराधी की तरह ठहराता है। शरद सिंह के उपन्यास *'पिछले पन्ने की औरतें'* में जब लेखिका को श्यामा के देहव्यापार में संलग्न होने की जानकारी मिलती है, तो वह श्यामा को यह कार्य छोड़ देने की सलाह देती है। इस पर श्यामा बड़ी स्पष्टता से अपनी सामाजिक-आर्थिक विवशता प्रकट करते हुए कहती है— **"छोड़ दूंगी तो खाऊँगी कहाँ से? अपना अपने बच्चों का, अपने परिवार का पेट पालने के लिए कुछ तो करना ही होगा।"**[7] आदिवासी समाज की स्त्रियाँ जब भयंकर आर्थिक संकटों से घिर जाती हैं, तो उनके समक्ष जीवन-निर्वाह की चुनौतियाँ केवल शारीरिक श्रम तक सीमित नहीं रह जातीं, बल्कि उन्हें सामाजिक मर्यादाओं और आत्मसम्मान की कीमत पर भी कठोर निर्णय लेने के लिए विवश होना पड़ता है। रणेंद्र द्वारा रचित बहुचर्चित उपन्यास *'ग्लोबल गाँव के देवता'* में आदिवासी समुदाय, विशेषतः असुर जनजाति की नारियों की इस त्रासदीपूर्ण स्थिति का अत्यंत यथार्थपूर्ण और संवेदनशील चित्रण किया गया है। उपन्यास में यह उजागर किया गया है कि किस प्रकार एक ओर तो प्राकृतिक संसाधनों पर बाहरी शक्तियों का कब्ज़ा है, और दूसरी ओर जीवन यापन के लिए बुनियादी साधनों की कमी ने आदिवासी स्त्रियों को देहव्यापार जैसे अमानवीय रास्ते पर चलने को विवश कर दिया है. उपन्यास में असुर नारियों के संदर्भ में उल्लेख किया गया है कि जब घर में महीनों का अन्न भंडार

नहीं होता, जब बाल-बच्चों को दो वक्त की रोटी नहीं मिलती, और जब पुरुषों को पलायन के लिए मजबूर होना पड़ता है, तब स्त्रियाँ ही अपने परिवार की आशा की अंतिम किरण बनकर सामने आती हैं। परंतु यह आशा स्वयं के आत्मबलिदान से जुड़ी होती है। ऐसी ही विवशताओं के बीच कई असुर युवतियाँ परिवार के भरण-पोषण हेतु समाज द्वारा कलंकित राह चुनने के लिए बाध्य होती हैं। उपन्यास में यह स्थिति अत्यंत मार्मिक रूप में इस कथन के माध्यम से प्रस्तुत की गई है– **"घर में तीन-चार माह से ज्यादा का अनाज नहीं हो तो कौन बेटों को गाँव छोड़ने और बेटियों को डेरा में काम के बहाने रखनी बनने से रोक सकता है।"**[8] आदिवासी समाज की आर्थिक संरचना में नारियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। परंपरागत रूप से आदिवासी महिलाएँ ही परिवार के भरण-पोषण और आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जिम्मेदार रही हैं। सदियों से जंगलों पर निर्भर यह समाज अपनी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति वनों से करता आया है। परंतु वन संरक्षण कानूनों के लागू होने के बाद आदिवासियों, विशेष रूप से आदिवासी महिलाओं, का वनों पर पारंपरिक अधिकार समाप्त हो गया। फलस्वरूप उन्हें आजीविका के लिए वैकल्पिक स्रोतों की ओर मुड़ना पड़ा।

शिक्षा, संसाधनों और व्यापारिक कौशल के अभाव में ये महिलाएँ धीरे-धीरे आर्थिक शोषण का शिकार बनने लगीं। आदिवासी समाज में हाट-बाजार की अवधारणा सामुदायिक स्वरूप की होती है, जहाँ महिलाओं का प्रमुख नियंत्रण रहता है। वे अपने उत्पादों का मोल-भाव स्वयं करती हैं और यह बाजार उनके आत्मनिर्भर आर्थिक जीवन का सशक्त माध्यम बनता है। किन्तु जब यही महिलाएँ गाँव से बाहर, मुख्यधारा के शहरी या गैर-आदिवासी बाजारों में जाती हैं, तो उन्हें वहाँ के व्यापारिक व्यवहार, मूल्य निर्धारण एवं मुनाफाखोरी की प्रवृत्तियों की समझ नहीं होती। इस कमजोरी का लाभ गैर-आदिवासी व्यापारी, बनिए तथा दलाल उठाते हैं, और उन्हें ठगकर या डराकर कम मूल्य पर उनकी वस्तुएँ खरीद लेते हैं। इस सामाजिक और आर्थिक विडंबना का मार्मिक चित्रण राकेश कुमार सिंह के उपन्यास *'पठार पर कोहरा'* में मिलता है। उपन्यास की प्रमुख पात्र **रंगेनी** सब्जियाँ बेचकर अपनी आजीविका चलाती है। स्थानीय बाजार में वह आत्मविश्वास से व्यापार करती है, किंतु जब वह शहर के बाजारों में पहुँचती है तो वहाँ की व्यापारिक चालबाजियों और मानसिकता से अनभिज्ञ होने के कारण ठगी जाती है। उपन्यासकार ने रंगेनी की स्थिति को रेखांकित करते हुए लिखा है- **"शहर बाज़ार की समझ न होने के कारण आदिवासी शहरों में प्रायः ठगे भी जाते हैं। कभी निमोहिये शहराती लौंडे भी धौंस-रौब दिखाकर सोने जैसी चीज़े कौड़ियों के मोल उठा लेते हैं। कुल मिलाकर जंगल के बाहर व्यापार करने जाने में हज़ार झमेले हैं।"**[9] आदिवासी महिलाएँ प्रारंभ से ही आत्मनिर्भर रही हैं। उनकी जीविका का आधार पारंपरिक रूप से वनों और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहा है, परंतु समय के साथ लागू वन-कानूनों ने उनके जीवन-यापन के प्राकृतिक स्रोतों को सीमित कर दिया। परिवार की आर्थिक ज़िम्मेदारी मुख्यतः उनके ही कंधों पर होती है, जिसके कारण उन्हें परिस्थितियों के अनुसार नए आय-साधनों की खोज करनी पड़ी। कुछ आदिवासी महिलाएँ ऐसी भी हैं जिन्हें जीवित रहने के लिए समाज द्वारा उपेक्षित और अवैध कार्यों की ओर प्रवृत्त होना पड़ा। जहाँ एक ओर आधुनिक समाज की महिलाएँ शिक्षा और सुविधाओं के सहारे आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हैं, वहीं आदिवासी महिलाएँ बिना इन साधनों के भी अपने श्रम और संकल्प से परिवार को सहारा देती आई हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि आदिवासी महिलाओं की आत्मनिर्भरता उनके सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग रही है।

****

सन्दर्भ सूची:-

1. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, महुआ माझी, पृ.25
2. महारण्य में गिद्ध, राकेश कुमार सिंह, पृ.44
3. जो इतिहास में नहीं है, राकेश कुमार सिंह, पृ.143
4. धूणी तपे तीर, महुआ माझी,पृ. 280
5. अल्मा कबूतरी, मैत्रेय पुष्पा, पृ.12
6. पिछले पन्ने की औरतें, शरद सिंह, पृ.92
7. पिछले पन्ने की औरते, पृ.24
8. ग्लोबल गावं के देवता, पृ.39
9. पठार पर कोहरा, पृ.18

राजू शर्मा के कथा साहित्य में आर्थिक स्थिति

उमा बणिचुल
शोधार्थी
हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय - हैदराबाद

समाज के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में अर्थ व्यवस्था को प्रमुख स्थान दिया जाता है। अर्थ के आधार पर ही मनुष्य का सामाजिक स्तर निर्धारित किया जाता है। राजू शर्मा के कथा साहित्य के अंतर्गत आर्थिक परिवेश एवं उसके विभिन्न पहलूओं को रूप प्रदान किया गया है। राजू शर्मा द्वारा रचित साहित्य में अर्थ के महत्त्व व आर्थिक परिवेश को यथार्थ रूप प्रदान करते हुए पाठक वर्ग एवं समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। इन्होंने आर्थिक रूप से मजबूत उच्चवर्ग एवं आर्थिक रूप से कमजोर निम्न वर्ग के साथ ही साथ मध्य वर्ग के विभाजन का एक प्रमुख आधार अर्थ को ही स्वीकार किया है।

आर्थिक रूप से मजबूत उच्च वर्ग जहाँ ऐशो आराम से युक्त जीवन जीता है वहीं आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग सुविधाहीन कमज़ोरी व लाचारी से युक्त जीवन यापन करने को बेबस व मजबूर नज़र आता है। स्वामीराम प्रसाद 'हलफनामे' उपन्यास का एक ऐसा गरीब किसान है जो अत्यंत गरीबी व कष्टपूर्ण जीवन जीता है तथा इसी आर्थिक कमजोरी के कारण साहूकार के कर्ज़ में दब जाता है।

'शब्दों का खाकरोब' कहानी संग्रह के अंतर्गत 'मारफत' कहानी का प्रमुख पात्र 'हरप्रसाद द्विवेदी' मध्यवर्गीय जीवन को दर्शाता है जो कि कम खर्च द्वारा तथा अपनी मेहनत कर्म द्वारा अपने परिवार का भरण-पोषणकर संघर्षमय जीवन यापन करते हुए अपनी संतान को पढ़ा लिखा कर योग्य बनाता है।

अर्थ कहने से हमारा अभिप्राय अथवा प्रयोजन, किसी बात या शब्द की व्याख्या, धन, संपदा, या संपत्ति आदि को निरूपित करना है । अर्थ से ही आर्थिक शब्द की सृष्टि हुई है। अर्थ व्यवस्था संबंधी (जहाँ पर संकट, लाभ को दर्शाया जाए) हीं आर्थिक है। आर्थिक स्थिति एक अर्थशास्त्र का हिस्सा है जिसमें यह कहा जाता है कि किसी भी चीज की आर्थिक स्थिति आर्थिक क्षेत्र सब कुछ आर्थिक से संबंधित है। आर्थिक स्थिति ही आर्थिक परिवेश को प्रभावित करती है। अर्थव्यवस्था समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है । वर्तमान युग अर्थ को महत्व देता है। अर्थ के बिना मनुष्य का जीवन निरर्थक है। अर्थ के आधार पर ही किसी का सामाजिक स्तर निर्धारित किया जाता है। उपन्यासकार राजू शर्मा के कथा साहित्य में आर्थिक परिवेश के विभिन्न पहलू दर्शाये गये है।

आर्थिक स्थिति- जीवन यापन करने के वे संसाधन है जो जीवन को सरलता प्रदान करते हैं यह संसाधन अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यदि संसाधन की प्राप्ति सुगमता से होती है तो आर्थिक स्थिति मजबूत मानी जाती है। वहीं विपरित अवस्था में यदि यह संसाधन सरलता से प्राप्त न हो सके या बहुत कम मात्रा में प्राप्त हो तो आर्थिक स्थिति को कमजोर माना जाता है। राजू शर्मा के कथा साहित्य में आर्थिक स्थिति को निम्नलिखित रूप में दर्शाया गया है- हलफनामे' उपन्यास का प्रमुख पात्र स्वामीराम प्रसाद है जिसका देहांत हो चूका था। वह सवेरा गाँव में रहने वाला था। उस गाँव के अधिकतर लोग कृषि अधारित व्यवसाय करते थे। कृषि ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था का केन्द्र थी। स्वतंत्रता से पहले जमींदारी एवं साहूकारी व्यवस्था मजबूत स्थिति में थी। स्वतंत्रता के बाद भी कुछ दिन तक यहीं स्थिति कायम रही। ज़मीन के लिए किसानों को लगान देना पड़ता था। किसान ज़मीन के उपज से ही अपना परिवार चलाते थे। उनके लिए और कोई रोजगार का रास्ता नहीं था। वे बहुत मुश्किल से जीवन यापन करते थे। पीढ़ी दर पीढ़ी सूत्र में आने से संतानों के बीच ज़मीन का बँटवारा हो जाता था तो ज़मीन का परिमाण घटता जाता था। जो परिवार की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करता था। इस बात की पुष्टी 'हलफनामे' उपन्यास के पुरूष पात्र स्वामीराम प्रसाद द्वारा इस प्रकार की गई है-

"स्वामीराम प्रसाद-एक किसान है सरकारी भाषा में एक 'लघु कृषक'। अट्ठराह पुश्तों से वे एक गाँव में रहते आए, पुरखों ने इसी ज़मीन की मुगलों को लगान दी। यह समझ तो अब आया है कि सरकार ने छोटे काश्तकारों की वसूली माफ कर दी, पर ज़मीन परिवार में बँटकर धीरे-धीरे घटती गई।" इस कथन के माध्यम से मकईराम अपने पिता स्वामीराम छोटे कृषक होने से सरकार ने कर माफ़ करने को दर्शाता है। इससे स्पष्ट रूप से देखने के लिए मिल रहा है कि स्वामीराम की ज़मीन बहुत कम, तथा लघु कृषक के रूप में परिचय हुआ तो इनकी आर्थिक स्थिति अच्छा न होना स्वाभाविक ही है।

'विसर्जन' उपन्यास में खलनायक के रूप में पी.वी.रंगराजन दर्शाया गया है। वह होनहार छात्र और वैज्ञानिक, एक मशहूर अर्थशास्त्री, मानद प्रोफेसर, मुक्त कंठ दार्शनिक, मनीषी एवं विचारक परोपकारी एवं दानवीर, व्यवसायी एवं बिलेनियर, उद्दमी एवं आविष्कारक, दिव्य दरदृष्टा, युग प्रवर्तक तथा आध्यात्मिक गुरू के रूप में प्रसिद्ध थे। इनकी आर्थिक स्थिति को इस प्रकार उद्घाटित किया गया है-

"रंगराजन के तमाम काम और कारोबार है, उसकी कम्पनियाँ और संस्थानों का साम्रज्य अंतराष्ट्रीय स्तर पर फैला हुआ है।" इस संवाद में कहा गया है पी.वी. रंगराजन का कंपनियाँ और संस्थानें सारे विश्व में फैला हुआ था, तो विश्व में इनकी ख्याति तथा प्रसिद्धि को दर्शाता है। इससे प्रतीत है कि रंगराजन विश्व भर अपना कारोबार को फैलाकर अपनी स्थिति को मजबूत रखा था।

पराधीन देश को आज़ाद करने में गाँधी जी की महत्वपूर्ण भूमिका है। ठीक उसी तरह आर्थिक समस्या की समय समस्या से उभरने के लिए पी.वी. का कार्य देश के लिए हितकर है। पी.वी. के तेज दिमाग को गाँधी जी के बुद्धि और विचार के साथ समानता देखते हुए कहा गया है कि-

"जिस तरह गांधी अधेड उम्र में अचानक दक्षिण आफ्रीका से लौटा था, पी.वी. अमरीका से खास समय लौटा है। बहुत जल्दी महात्मा ने कांग्रेस पार्टी और देश की जनता पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। पी.वी. ने तमाम संस्थाओं का नेटवर्क तैयार किया है, वह उनका नेतृत्व कर रहा है। मिडिल क्लास उसका नित्य अभिनन्दन कर रही है। महत्मा गांधी ने चरखा, धोती और खादी को अपने आन्दोलन का प्रतीक बनाया, पी.वी ने योग साधना की क्लट पैदा की, आर्थिक सुधार, अभिव्यंजना और अभिलाषा को खुशहाली का गुरूमंत्र बनाया और बचत, निवेश और विकाश का सदगुरू चक्र। गांधीजी ने आजादी के लिए अहिंसा और सत्याग्रह का अनोखा तरीका ईजाद किया, पी.वी.ने बाज़ारवाद और ग्लोबलाइजेशन का एक देशी संस्करण सामने रखा। महात्मा गांधी ने आत्मत्याग और सरल जीवन का पाठ पढ़ाया था, और पी.वी ने अनन्त अभिलाषा और लाभ के लिए उधारजनित उपभोग को दिव्य बोध की रोशनी दी।" इससे स्पष्ट होता है कि पी.वी. रंगराजन जैसे

व्यक्ति ने इतने सारे कारोबार देश-विदेश में फैलाकर अपनी आर्थिक स्थिति को ऊँचाई तक पहुँचाया।

'विसर्जन' उपन्यास में आदर्श दरबारी एक मुख्य पुरूष पात्र था। काजल दरबारी आदर्श दरबारी का बहन थी। अग्निवेश दरबारी उपन्यास का मुख्य नहीं सही लेकिन एक पुरूष पात्र था। अग्निवेश दरबारी का दो संतान थी एक लड़का जिसका नाम आदर्श दरबारी एवं एक लड़की जिसका नाम काजल दरबारी था। वह मध्यम वर्गीय व्यक्ति था। उनकी आर्थिक स्थिति मध्यम थी। अपनी नौकरी के साथ-साथ वह अपनी इच्छा पूर्ति के लिए भी दवाई देने का कार्य करता रहता था, जो उपन्यास में इस तरह वर्णित किया गया है-

"काजल दरबारी। उसका बाप किसी सरकारी दफ्ततर में काम करता था और शाम को घर से एक आयुर्वेद दवाखाना चलाता था।" इस संवाद में ऐसार ने काजल दरबारी की पारिवारिक, आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। इससे स्पष्ट होता है कि दरबारी परिवार का आर्थिक स्थिति मध्यम थी।

आज़ादी के कई दशक बाद भी भारत अनेक समस्याओं से घिरा रहा। गाँव के ज्यादातर लोगों की जिंदगी कृषि पर निर्भर करती है। ज्यादातर ग्रामीण किसान होते हैं। कुछ लोग पशुपालन और कृषि आधारित कुटीर शिल्पों, उद्योगों द्वारा भी जीविकापार्जन करते हैं। वे काफी मेहनती, नम्र एवं उदार होते हैं। इसके बावजूद भी अपने परिवार का गुज़ारा अच्छे से नहीं कर पाते अतः आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दूसरी जगह पर भी मेहनत-मजदूरी करने के लिए जाते हैं।

कहानी संग्रह 'शब्दों का खाकरोब' में 'मुकदमा' एक प्रमुख कहानी है। इस कहानी के प्रमुख पात्र पूरन की आर्थिक स्थिति के बारे में इस प्रकार कहा गया है- "पूरन एक सीमान्त कृषक है- सभ्यता के कगार पर खड़ा कुल मिलाकर डेढ़ बिघा पुख्ता खेत है। ले-देकर यही एक संपति है जिससे परिवार का गुज़ारा होता है। खाली समय में सुमति (पूरन की पत्नी) और पूरन फारम (फार्म) पर मजूरी करते हैं।" इस संदर्भ से पता चल रहा है कि पूरन की आर्थिक स्थिति सही नहीं लेकिन सामाजिक जीवन शैली में वह जैसे-तैसे अर्थात् कृषि मज़दूरी करके अपने परिवार को चलाने की कोशिश करता है उदाहरण निम्नलिखित है-

'शब्दों का खाकरोब में' 'चिट्ठी के मारफत' कहानी के अंतर्गत हरप्रसाद द्विवेदी को कहानी के मुख्य पात्र है। वह ऑफिस का जूनियर क्लर्क था। वह प्रति दिन ठीक समय में अपने ऑफिस आकर अपना काम करता था। केवल ऑफिस नहीं परिवार में भी सीमित रोजगार होने के बावजूद अपनी समस्त जिम्मेदारियाँ निभाता था। उसने अपनी प्रति होने की, पिता होने की जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया। अपनी संतान को पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाया। जिससे उसे अपने अंदर सुकून की अनुभूति होती जिसका उदघाटन कहानी में इस प्रकार हुआ है-

"घर की सब जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया। बड़ा लड़का शहर में ही वकील है, इस बात का उन्हें गर्व है।" इससे स्पष्ट होता है कि हरप्रसाद द्विवेदी ने अपनी आर्थिक स्थिति को सही रखते हुए अपने परिवार का निर्वाह सुचारू रूप से किया जो उनके लिए एक गर्व की बात है।

'शब्दों का खाकरोब' कहानी संग्रह में 'मोटी बातें' कहानी में मन्नीलाल गुप्ता मुख्य पात्र है। कहानी की ईर्द-गिर्द उनकी जीवन शैली, सोच आदि को रखा गया है। उनके परिवार में तीन पुत्र व चार पुत्रियाँ, पत्नी एवं पिता थे। इनकी बातचीत तथा सोच विचार से पता चलता हे कि वह खुश मिज़ाज आदमी था। एम.एस.गुप्ता नाम से इनका अपना एक उद्योग-धंधा था। उसके वह मालिक थे। जिसके बारे कहा गया है कि-

"जिस शख्स का जिक्र हो रहा है उसका नाम श्री मन्नीलाल गुप्ता है। एम.गुप्ता ग्रुप का मालिक। उद्योग और व्यापार की दुनिया में जाना-माना नाम।" इससे स्पष्ट होता है कि मन्नीलाल गुप्ता एक कंपनी के मलिक है जिससे इनकी आर्थिक स्थिति अच्छा होना स्वाभाविक था।

'समय के शरणार्थी' कहानी संग्रह में 'नोटिस' कहानी में समझावन मुख्य पात्र है। वह गाँव का रहने वाला था। माता-पिता के मृत्यू के बाद सोलह साल की उम्र में वह शहर आ गया था। वह गाँव में हाई स्कूल तक पढा था। जीवन को जीने की तलाश में कुछ साल व्यतित हो गए। तत्पश्चात उसकी दोस्ती सूरी भाई से हुई। समझावन का विवाह तुलसी से हुआ। समझावन की आर्थिक स्थिति के बारे में इस प्रकार वर्णन किया गया है-

"किसी सरकारी कार्यालय में प्रवेश पाने के लिए निकल, उसके हाथ में एक थैला होता था। चूँकि तेज गर्मी थे और बिना किसी पूर्व आहट के यदा-कदा मूसलधार बारिश हो जाया करती थी, वह एक छतरी अपने पास रखता था। सूरी भाई से उसने इन दिनों साईकिल माँग ली थी। साइकिल के पीछे कैरियर में उसका एक छोटा सा टिफिन लगा रहता था।" इस कथन के माध्यम से समझावन ने सरकारी कार्यालय में नौकरी पाने के लिए किये हुए संघर्ष को दर्शाता है। इससे स्पष्ट होता है कि समझावन की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। जीवन जीने के लिए रोजगार पाने के लिए उसे रोज भटकना पड़ती है।

कहानी संग्रह 'समय के शरणार्थी' में 'कान्ता' एक प्रमुख कहानी है। कहानी का शीर्षक कहानी के मुख्य नारी पात्र का नाम पर आधारित है 'कान्ता'। कान्ता आपनी माँ के साथ गाँव में रहती थी।

कान्ता के परिवार में और कोई नहीं थे इसलिए बहुत मुश्किल से अपना गुज़ारा करती थी। उसकी आर्थिक स्थिति का पता निम्नलिखित बातों से चलता है-

"कान्ता शहर से कोई सात मील दूर एक गाँव की रहने वाली है। पहले वह अपनी लंगड़ी माँ के साथ रहती थी। माँ-बेटी झाड़ू बनाने का काम करती थी। उसकी माँ को पागलपन का रोग हुआ और वह चल बसी।" इस संवाद के माध्यम से वकील ने कांता की लाचारी आर्थिक स्थिति के बारे में दर्शाता है। इससे लक्षित होता है कि कन्ता की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। यदि आर्थिक स्थिति सही रही होती तो शायद वह अपनी माँ को रोग से मुक्त कर पाती। कम से कम जीवन में अकेली न होती या बेसहरा न बनती। बेसहरापन बाद में जा कर उसको कलंकिनी बना देता है तथा समाज में उसे लांछित भी होना पड़ता है।

कहानी संग्रह 'नहर में बहती लाशें' के अंतर्गत 'आई.टी.ओ क्रॉसिंग' एक मुख्य कहानी है। इस कहानी का मुख्य पात्र एक बालक है। बालक की मनःस्थिति को कहानी में अभिव्यक्त किया गया है उस बालक का नाम लोबन था। लोबन पन्द्रह साल का था। उसका घर सहरानपुर जिले के एक गाँव में था। वह जब गाँव में माँ के साथ रह रहा था तो इनके जीवन में घर, ज़मीन, ढोर-डगर सब कुछ बेहतर था। एक दिन अचानक माता का स्वर्गवास हो गया। गाँव में किसी रिश्ते से एक मोटे मामा ने उसका जिम्मा ले लिया। मामा के साथ उसका मन न लगा तथा मामा के साथ एक साल रहने के बाद एक दिन उसने अपना स्कूल बैग उठाया और गाँव से दिल्ली शहर भागा गया। दिल्ली की सडकों को अपना घर बनाया। न उनके पास रहने के लिए घर न ही कुछ खाने के लिए था। आर्थिक स्थिति सही नहीं होने के कारण उसे जीने के लिए संघर्ष करना पड़ा। उसका जीवन खतरों से घिरा रहा, जिसके विषय में कहानी में इस प्रकार लिखा गया-

"लड़का अब करीब पन्द्रह साल का लगता है। तीन साल पहले वह घर से भागा और दिल्ली की सड़कों को अपना घर बनाया। नन्हा बालक ऐसे पाशविक खतरों से घिरा था जिनका उसे धुँधला अनुमान भर था।" इससे देखने को मिलता है कि लोबन का पास यदि पैसा होता तो कम से कम दिल्ली की सडकों को अपना घर न बनाना पड़ता। खाने के लिए नन्हें से बालक को पाशविक खतरों से न गुजरना पड़ता।

कहानी संग्रह 'नहर में बहती लाशें' में 'जलन' एक सामाजिक कहानी है। कहानी में शशिबाला और रजनीबाला नामक दो नारी पात्र हैं और जो बहने हैं। शशिबाला बड़ी और रजनीबाला छोटी। मनहरलाल और मदनलाल दो भाई है। बड़े भाई मनहरलाल ने शशिबाला से शादी की। कुछ साल बाद शशिबाला ने अपना छोटी बहन रजनीबाला का विवाह अपने देवर मदनलाल के साथ करवा दिया। शशिबाला के दो बेटे थे तथा रजनीबाला की तीन बेटे और एवं एक बेटी थी। शहर से थोड़े दूरी पर दोनों परिवार रह रहे थे। उनकी एक छोटी सी किराने की दुकान थी जिससे पूरे परिवार का गुज़ारा होता था। परिवार के सदस्य ज्यादा थे एवं रोजगार का स्रोत केवल वह दुकान थी। दिन भर परिश्रम करने पर भी गुज़ारा बहुत मुश्किल था। आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने के कारण, वे बहुत परेशान हो गये। आर्थिक स्थिति के अच्छे न होने के कारण छोटी बहन रजनीबाला ने अपनी बड़ी बहन शशिबाला से कुछ इस प्रकार कहा-"दीदी, क्या ये सब झेलने के लिए पैदा हुए थे। इससे तो कुकुर अच्छे हैं। अलग-अलग घर का भरपूर जूठन तो मिल जाता है कम-से-कम। हमारे तो ढाक के वही तीन पात। रोज एक ही राग, वही झमेले... मैं तो बाज आई दीदी... आँखें खोलो तो वही जंगाला, वही आँगन, रोज मशीन की तरह पिसो और रात को निकले वही धुन लागा गेहूँ... रोज चिल्लर गिनते रहो और बाचता है वही दो आना...।" इस कथन के माध्यम से रजनीबाला पारिवारिक जीवन की आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। इससे दृष्टिगत होता है कि उनकी आर्थिक स्थिति उनकी सामाजिक जीवन शैली को प्रभावित कर रही थी।

कहानी संग्रह 'नोटिस-2' में 'हम सैनिक फार्म्स की बदौलत' कहानी में जज साहब एक पुरूष पात्र है। उन्होंने जीवन के तीस बरस इन अदालत में बिताये। जज साहब के परिवार में पत्नी शीरी एवं एक बेटी थी। जज साहब की पत्नी शीरी ने रिटायरमेंट के बाद बंगले में न रहकर फ्लैट में रहने की माँग की जिसके लिए जज साहब ने मना कर दिया। पत्नी की जिद करने पर जज साहब अपनी आर्थिक स्थिति को खंगालने लगे। जो की इस प्रकार थी-

"जज ने बचत और खाते का हिसाब लगाया। कितने पेंशन होगी। पी एफ और ग्रैचुइटी। लीव का नकद। कितना कर्जा ई एम आई पर उठा सकता है। इतने से इस सफेद के जोड़ से, पूरा नहीं हो रहा था। पर और भी पैसा था।" इससे प्रतीत होता है कि जीवन को साधारण तौर से जीने के लिए आर्थिक स्थिति का ठीक होना आवश्यक है। जज साहब ने गलत तरीके से धन नही जूटाया जिसके कारण वह धनाढ्य एवं पूँजीपति न बन सके। जिसके कारण आज वे जिंदगी भर की कमाई को इकट्ठा करने के बावजूद एक फ्लॅट के लिए पैसे जुटाने में नाकामयाब रहें। पत्नी की इच्छा को पूरी नहीं कर पायी।

****

संदर्भ

1. राजू शर्मा- हलफनामे, पृ. – 07.
2. राजू शर्मा- विसर्जन, पृ. – 104.
3. राजू शर्मा- विसर्जन, पृ. – 110.
4. राजू शर्मा- विसर्जन, पृ. – 17.
5. राजू शर्मा- शब्दों का खाकरोब, पृ. – 72.
6. राजू शर्मा- शब्दों का खाकरोब (चिट्ठी के मारफत), पृ. – 18.
7. राजू शर्मा- शब्दों का खाकरोब (मोटी बातें), पृ. – 78.
8. राजू शर्मा- समय के सरणार्थी (नोटिस), पृ. – 14.
9. राजू शर्मा- समय के सरणार्थी (कान्ता), पृ.– 62.
10. राजू शर्मा- नहर में बहती लाशें (आई.टी.ओ क्रॉसिंग), पृ. – 42.
11. राजू शर्मा- नहर में बहती लाशें (जलन), पृ. – 87.
12. राजू शर्मा- नोटिस-२(हमसैनिक फार्म्स की बदौलत), पृ. – 141.

Effect of Industries on Future Animals and Plants in Singrauli District

Dr.Vishwanath Singh Kushram
Assistant Professor Botany
PMCOE Govt Rajnarayan Smriti P.G. College Waidhan Singrauli(M.P.)
Mail-id-drvskushram123@gmail.com

Abstract- Singrauli District, located in northeastern Madhya Pradesh, India, has emerged as a critical hub for coal mining and thermal power generation, contributing significantly to the nation's energy needs. However, this rapid industrialization has inflicted severe environmental degradation, particularly on local flora and fauna. This research paper examines the multifaceted impacts of industrial activities—primarily open-cast coal mining and coal-fired power plants—on biodiversity, with a forward-looking perspective on future scenarios influenced by climate change and resource depletion. Drawing from environmental profiles, pollution indices, and ecological studies, the analysis reveals deforestation rates exceeding 35% over recent decades, heavy metal contamination in soils and water bodies, and habitat fragmentation threatening species such as the Asian elephant and native dry deciduous forest trees like *Shorea robusta* (Sal). Current pollution levels, including fly ash spills and acid mine drainage, have led to biodiversity loss, with vascular flora on mine spoils limited to 197 species dominated by pioneer herbs. Projections indicate coal reserve exhaustion in 15-20 years, exacerbating climate-induced stressors like erratic rainfall and rising temperatures, potentially rendering 50% of remaining habitats uninhabitable for endemic species by 2050. Mitigation strategies, including phytoremediation and compensatory afforestation, are evaluated for their efficacy in restoring ecosystems. The paper concludes that sustainable transitions to renewables are imperative to safeguard Singrauli's biodiversity for future generations, emphasizing policy reforms for integrated environmental management. This study underscores the urgent need for balancing energy security with ecological preservation in industrial hotspots.

Keywords-Singrauli District; Coal Mining; Thermal Power Plants; Biodiversity Loss; Habitat Fragmentation; Climate Change; Phytoremediation; Acid Mine Drainage; Fly Ash Pollution; Dry Deciduous Forests

Introduction-Singrauli District, spanning approximately 5,673 square kilometers in the Son Valley of Madhya Pradesh, represents a paradoxical landscape: a verdant

expanse of dry tropical forests juxtaposed against sprawling industrial complexes. Historically, the region was characterized by dense Northern Tropical Dry Deciduous Forests, harboring rich biodiversity including Sal (*Shorea robusta*), Teak (*Tectona grandis*), and Bamboo (*Dendrocalamus strictus*), alongside wildlife corridors vital for species like the Asian elephant (*Elephas maximus*) and Bengal tiger (*Panthera tigris tigris*). However, since the 1960s, the discovery of vast coal reserves—estimated at over 2,000 million tonnes—has transformed Singrauli into India's "Energy Capital," hosting over 13 thermal power plants with a combined capacity exceeding 21 GW and open-cast mines operated by Northern Coalfields Limited (NCL). This industrial boom, driven by national energy demands, has accelerated land-use changes, with forest cover declining by 35.76% between 1986 and 2001 alone, while mining areas expanded sevenfold.

The environmental toll is profound: air pollution from particulate matter (PM10, PM2.5), sulfur dioxide (SO2), and nitrogen oxides (NOx); water contamination via acid mine drainage (AMD) and fly ash leachates; and soil degradation from overburden dumps. These stressors not only degrade current ecosystems but portend dire futures for animals and plants amid global climate change. Singrauli's Comprehensive Environmental Pollution Index (CEPI) score of 81.79 in 2009 classified it as critically polluted, ninth among India's 14 worst industrial clusters. With coal reserves projected to deplete in 15-20 years, future industrial expansions—such as Adani's Gondbahera Udaipur project—could intensify habitat loss, while climate projections forecast 20-30% reduced rainfall, amplifying drought vulnerability for flora and migration disruptions for fauna.

This paper synthesizes existing literature to delineate current impacts and extrapolate future trajectories, employing a review methodology informed by secondary data from peer-reviewed studies, government reports, and environmental assessments. The thesis posits that unchecked industrialization will precipitate irreversible biodiversity collapse by mid-century unless proactive restoration and policy interventions are enacted. Sections explore industrial overviews, impacts on flora and fauna, future projections, and mitigation pathways, culminating in recommendations for sustainable development.

Overview of Industrial Activities in Singrauli District-Singrauli's industrial landscape is dominated by coal extraction and power generation, forming an interconnected "coal cycle" that amplifies environmental pressures. Open-cast mining, preferred for its cost-sites like Jayant, Amlohri, and Singrauli, yielding 100-120 million tonnes annually. These operations involve overburden removal—up to 10-15 meters deep—exposing sulfur-rich pyrite to oxidation, generating AMD with pH as low as 3.5 and mobilizing heavy metals like mercury, arsenic, and lead.

Adjacent thermal power plants, including NTPC's Vindhyachal Super Thermal Power Station (4.76 GW capacity), consume vast coal quantities, producing 25 million tonnes of CO2 yearly and generating 10-12 million tonnes of fly ash. Fly ash disposal via ponds risks breaches, as seen in the 2020 Sasan Ultra Mega Power Project incident, where slurry inundated villages, contaminating reservoirs and farmlands. Cement factories and chemical units further compound pollution, with limestone quarrying exacerbating dust emissions.Land-use shifts are stark: from 1986 to 2001, mining land surged from 2.6 to 9.29 sq. km, built-up areas from 4.71 to 14.73 sq. km, at the expense of forests (down 35.76%) and agriculture (down 19.31%). This "resource curse" manifests in displacement of over 50,000 people since 1970s and ecosystem conversion from forests to savannas. Future expansions, like Adani's 1,320 MW addition despite non-compliance with 2023 environmental clearances, signal intensified pressures.

Current Impacts on Flora-Industrial activities in Singrauli have profoundly altered vegetative cover, reducing forest density and introducing invasive species. Pre-industrialization, the district boasted 2,219.65 sq. km of forests, primarily Sal-dominated dry deciduous types covering 14% of the area. Mining-induced deforestation has fragmented these habitats, with clearance for overburden dumps and haul roads eliminating canopy species like *Butea monosperma* and *Boswellia serrata*. On mine spoils—barren, nutrient-poor substrates—vascular flora is impoverished, comprising 197 species from 45 families, dominated by herbs (57.36%) from Poaceae (18.27%), Fabaceae (20.30%), and Asteraceae (7.10%). Pioneer trees like *Nyctanthes arbor-tristis* and *Woodfordia fruticosa* colonize edges, but exotics such as *Prosopis juliflora* proliferate, outcompeting natives and reducing restoration potential. Air pollution tolerance indices (APTI) reveal tolerant species like *Cassia fistula* accumulating heavy metals (e.g., 15-20 mg/kg lead in leaves), while sensitive plants exhibit chlorosis from SO2 exposure.

Water and soil contamination exacerbate floristic decline: AMD leaches aluminum and iron, acidifying soils (pH 4-5) and inhibiting root growth in crops and wild plants. Fly ash deposition, rich in boron and molybdenum, causes toxicity in 30-40% of roadside vegetation,

per studies near Sasan plant. Overall, biodiversity indices on spoils show 40% lower Shannon diversity than undisturbed forests, signaling long-term impoverishment.

Current Impacts on Fauna-Faunal assemblages in Singrauli face acute threats from habitat loss and pollution, disrupting food webs and migration patterns. The district's forests once supported 200+ bird species, leopards (*Panthera pardus*), and sloth bears (*Melursus ursinus*), with elephant corridors linking to Bandhavgarh Tiger Reserve. Mining has fragmented 60% of these corridors, increasing human-wildlife conflicts; elephant crop-raiding incidents rose 25% post-2010 due to forage scarcity.

Aquatic fauna suffers from river contamination: Rihand and Son rivers, vital for fish like *Tor putitora* (mahseer), exhibit bioaccumulation of mercury (up to 0.5 mg/kg in tissues) from fly ash, reducing populations by 50% in polluted stretches. Terrestrial mammals face respiratory issues from PM2.5 levels exceeding 100 µg/m³ near mines, with dust settling on foliage diminishing herbivore forage quality. Avifauna diversity has plummeted, with insectivorous birds declining 35% due to pesticide-like effects of heavy metals.Soil invertebrates, crucial for nutrient cycling, show 70% mortality in overburden areas from metal toxicity, cascading to reptile declines like the Indian rock python (*Python molurus*). Noise from blasting (80-100 dB) disrupts breeding in nocturnal species, while light pollution from plants affects pollinators, indirectly stressing entomophilous plants.

Future Projections: Industrial Expansion, Resource Depletion, and Climate Synergies-Looking ahead, Singrauli's ecosystems face compounded threats from industrial inertia and climate variability. Coal reserves, fueling 16% of India's production, are slated for exhaustion by 2040-2045, prompting shifts to deeper mines or imports, but planned expansions—like NTPC's 1,320 MW addition—will spike emissions 20-30% by 2030. Adani's projects threaten 500+ ha of forests, depleting aquifers and inducing water stress for vegetation, potentially desiccating 40% of riparian flora.

Climate models project 1.5-2°C warming by 2050, with 20% rainfall decline, exacerbating AMD and drought mortality in Sal forests (already regenerating poorly due to grazing). Synergistic effects could halve faunal ranges: elephants may abandon corridors amid forage loss, while heat-stressed pollinators reduce plant reproduction by 25%. Black carbon from plants, contributing 0.3% to global CO2, accelerates glacial melt upstream, flooding habitats intermittently.

By 2050, 50% of current biodiversity hotspots may become uninhabitable, with invasive flora dominating spoils and endemic species like *Haldina cordifolia* facing extinction risks. Transition to renewables offers hope, but without enforcement, "black future" looms for locals and wildlife alike.

Mitigation Strategies and Restoration Efforts-Restoration in Singrauli hinges on phytoremediation and afforestation. NCL's efforts include seeding spoils with native grasses and trees on 4,320 ha, costing Rs. 32.96 crores, yielding 60% survival rates for species like *Acacia catechu*. High-APTI plants (*Azadirachta indica*) capture 20-30% dust and metals, per bioaccumulation studies.Check dams and silt arrestors mitigate AMD, while CCUS trials at Vindhyachal capture 20 tonnes CO2 daily, though scaled-up renewables are advocated. Community rights under FRA 2006 could empower locals in monitoring, reducing conflicts. Future success requires GIS-based planning for corridors and strict EIA compliance.

Conclusion-The inexorable march of industries in Singrauli has cast a shadow over its once-thriving ecosystems, with flora impoverished to pioneer assemblages and fauna besieged by fragmentation and toxicity. Future vistas, marred by reserve depletion and climate exigencies, herald potential biodiversity Armageddon unless interventions pivot toward sustainability. Policymakers must prioritize renewable transitions, enforce pollution norms, and invest in resilient restoration to bequeath a verdant legacy. Singrauli's plight is a clarion call: energy without ecology is ephemeral.

****

References

1. Dubey, A. K., & Pal, A. (1995). Environmental profile of the Singrauli region, India. *Environmental Impact Assessment Review*, 15(3), 235-250.
2. Government of India. (2014). Report on Singrauli pollution. National Green Tribunal.
3. Greenpeace India. (2018). A fact-finding report on the impact of coal mining.
4. Mongabay India. (2020). Fly ash slurry in Singrauli.
5. New Research Journal. (2018). Environmental pollution and impact in Singrauli coal field.
6. ResearchGate. (2023). Controlling air and metal pollution in Singrauli.
7. Pulitzer Center. (2020). Coal plant endangers forests.
8. IJSRD. (2019). A case study of Singrauli coal mines.
9. ResearchGate. (2014). Vascular flora on coal mine spoils.
10. Frontline. (2024). Vindhyachal power plant pollution.
11. EPW. (2023). Dark and toxic under the lamp.
12. AdaniWatch. (2024). Forests threatened by Adani project.
13. ScienceDirect. (2023). Environmental impacts of Indian coal TPPs.
14. Environmental Conservation Journal. (Year). Forest status in Singrauli.
15. Additional sources from web searches: DownToEarth (2014) , Mongabay (2018) , etc.

मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' में चित्रित विभाजन का दर्द

डॉ. श्रीमाया सी.
सह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
पय्यन्नूर कॉलेज, पय्यन्नूर केरला - 670327
ईमेल : sreemaya2012@gmail.com मो : 9495868174

सारांश--मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' (1950 के दशक की नई कहानी आंदोलन की प्रमुख रचना) भारत-पाकिस्तान विभाजन (1947) की त्रासदी को एक सूक्ष्म, मानवीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रित करती है। विभाजन के 'दर्द' को कहानी के माध्यम से विश्लेषित करता है – घर-बार का नुकसान, परिवार की हत्या, पड़ोसी की विश्वासघात, स्मृति का बोझ, साम्प्रदायिक हिंसा, लालच और अंततः मानवीय मूल्यों का पतन। गनी मियाँ और रक्खे पहलवान के चरित्र के माध्यम से लेखक दिखाते हैं कि भौगोलिक विभाजन के साथ मानसिक और नैतिक विभाजन भी हुआ था।

बीज शब्द-- विभाजन साहित्य, मोहन राकेश, मलबे का मालिक, विभाजन का दर्द, साम्प्रदायिक हिंसा, विश्वासघात, स्मृति का बोझ, पंजाब विभाजन, नई कहानी आंदोलन, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, मलबा (प्रतीक), क्षमा और अपराधबोध, हिंद-मुस्लिम संबंध, 1947, मानवीय संवेदन।

प्रस्तावना-विभाजन भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे बड़ी मानवीय त्रासदी थी। 1947 में भारत और पाकिस्तान के बंटवारे ने लाखों लोगों को घर-बार, परिवार और पहचान से वंचित कर दिया। हिंसा, बलात्कार, लूट और आगजनी ने सामान्य जीवन को नरक बना दिया। इस त्रासदी को हिंदी साहित्य में भीष्म साहनी ('तमस'), ख्वाजा अहमद अब्बास, राजेंद्र सिंह बेदी, कृष्णा सोबती और मोहन राकेश ने गहराई से चित्रित किया है। मोहन राकेश 'नई कहानी' आंदोलन के प्रमुख हस्ताक्षर थे। उनकी कहानियाँ व्यक्ति-केन्द्रित हैं, लेकिन सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में गहरी अंतर्दृष्टि रखती हैं। 'मलबे का मालिक' उनकी सर्वश्रेष्ठ विभाजन-कहानियों में से एक है। यह कहानी साढ़े सात साल बाद (1955 के आसपास) लाहौर से अमृतसर आए मुसलमानों के माध्यम से विभाजन के दीर्घकालिक दर्द को उजागर करती है।

कहानी का शीर्षक ही प्रतीकात्मक है – 'मलबा' यह जलकर राख हुए मकान का, और टूटे हुए मानवीय संबंधों, विश्वास और मूल्यों का प्रतीक है। कहानी में चित्रित विभाजन के दर्द को चार आयामों में विश्लेषित किया गया है – भौतिक नुकसान, भावनात्मक आघात, नैतिक पतन और स्मृति का बोझ।

राकेश 'नई कहानी' के सिद्धांतकार थे – वे यथार्थवाद, मनोविश्लेषण और आधुनिक संवेदना पर जोर देते थे। उनके प्रमुख नाटक – 'आषाढ़ का एक दिन', 'आधे अधूरे', 'लहरों के राजहंस' – मध्यवर्गीय कुंठाओं और अस्तित्व-संघर्ष को चित्रित करते हैं। कहानी-संग्रहों में 'इंसान के खंडहर', 'नये बादल', 'फौलाद का आकाश' प्रमुख हैं। विभाजन ने राकेश को गहराई से प्रभावित किया क्योंकि वे अमृतसर (सीमा क्षेत्र) के रहने वाले थे। 'मलबे का मालिक' में वे विभाजन को 'राजनीतिक घटना' के साथ 'मानवीय त्रासदी' के रूप में देखते हैं।

विभाजन का ऐतिहासिक संदर्भ-1947 का विभाजन दो-राष्ट्र सिद्धांत (जिन्ना) और ब्रिटिश 'फूट डालो और राज करो' नीति का परिणाम था। 10-15 लाख लोग मारे गए, 1.5 करोड़ विस्थापित हुए। पंजाब सबसे प्रभावित क्षेत्र था। अमृतसर-लाहौर सीमा क्षेत्र में हिंसा चरम पर थी। राकेश इस ऐतिहासिक घटना को व्यक्तिगत स्तर पर चित्रित करते हैं। कहानी 1955 के संदर्भ में है – जब लोग 'साढ़े सात साल' बाद वापस आ रहे थे। यह 'दीर्घकालिक दर्द' दिखाती है।

कहानी का सारांश-'मलबे का मालिक' मोहन राकेश की प्रसिद्ध कहानी है जो 1947 के भारत-पाकिस्तान विभाजन की त्रासदी को साढ़े सात साल बाद के संदर्भ में चित्रित करती है। लाहौर से कुछ मुसलमान अमृतसर आए हैं। इनमें अब्दुल ग़नी मियाँ भी हैं, जिनका परिवार बाज़ार बांसां की गली में रहता था। विभाजन के समय उनके बेटे चिराग़दीन, बहू ज़ुबैदा और दोनों बेटियों किश्वर व सुल्ताना को उनके ही हिंदू पड़ोसी रक्खे पहलवान ने मकान हड़पने के लिए क्रूरता से मार डाला था। ग़नी मियाँ पुराने मकान को देखने आते हैं, लेकिन वहाँ अब सिर्फ़ मलबे का ढेर बचा है। वे मलबे पर बैठकर रोते हैं, लेकिन रक्खे पहलवान से कोई शिकायत नहीं करते। उल्टा वे रक्खे को "भाई" कहकर गले लगाते हुए क्षमा का भाव दिखाते हैं। रक्खे पहलवान के मन में अपराधबोध जागता है, लेकिन वह इसे दबाने की कोशिश करता है। कहानी अंत में एक कुत्ते के भौंकने से समाप्त होती है, जो रक्खे के विवेक को जगाने का प्रतीक है।इस कहानी के कथन जो विभाजन के दर्द, विश्वासघात, स्मृति और मानवीय संवेदना को सबसे गहराई से व्यक्त करते हैं:-"सब कुछ बदल गया, मगर बोलियाँ नहीं बदलीं!" "रोएगा तो तुझे वह मुसलमान पकड़कर ले जाएगा, मैं वारी जाऊँ, चुप कर!" "मलबा उसका कैसे है? मलबा हमारा है!" "मेरा चिराग़ साथ होता, तो और बात थी... रक्खे, मुझे तेरा बहुत भरोसा था।" "ख़ुदा नेक की नेकी रखे और बद की बदी माफ़ करे!" "जो होना था, सो हो गई। उसे कोई लौटा थोड़े ही सकता है?" कहानी विभाजन के भौतिक, भावनात्मक और नैतिक नुकसान को एक छोटी-सी गली और दो परिवारों के माध्यम से बहुत सूक्ष्मता से दिखाती है।

विभाजन की त्रासदी का चित्रण और कहानी की प्रासंगिकता- मोहन राकेश ने 'मलबे का मालिक' में विभाजन की त्रासदी को व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्रित किया है। वे इसे सिर्फ़ राजनीतिक घटना नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों के टूटने की कहानी बनाते हैं।

विभाजन की त्रासदी कैसे चित्रित की गई है?

भौतिक विनाश: "मलबा" शब्द पूरे घर, परिवार और स्मृतियों के नष्ट होने का प्रतीक है। नई इमारतों के बीच-बीच में बिखरे मलबे का ढेर विभाजन के बाद के खोखलेपन को दिखाता है।

पड़ोसी का विश्वासघात: रक्खे पहलवान (जिसे ग़नी "भाई" समझता था) का चिराग़दीन परिवार को मारना विभाजन की सबसे कटु सच्चाई है – साम्प्रदायिक हिंसा में सबसे करीबी लोग एक-दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं।

नई पीढ़ी में पैदा हुआ भय: लड़की का वाक्य "रोएगा तो तुझे वह मुसलमान पकड़कर ले जाएगा" दिखाता है कि विभाजन ने बच्चों के मन में भी घृणा और डर बो दिया।

क्षमा और अपराधबोध: ग़नी मियाँ की उदारता ("ख़ुदा नेक की नेकी रखे...") और रक्खे का चुप रहना विभाजन के बाद बचे अपराधबोध को उजागर करता है।

प्रतीकात्मक अंत: कुत्ते का भौंकना – यह विवेक और अंतर्मन की आवाज़ है जो अपराधी को चुप नहीं रहने देती।

कहानी की प्रासंगिकता- आज भी यह कहानी बेहद प्रासंगिक है क्योंकि:

साम्प्रदायिकता और घृणा की राजनीति अभी भी जारी है।

सीमा-विभाजन, विस्थापन और परिवारों के टूटने की घटनाएँ (जैसे कश्मीर, उत्तर-पूर्व आदि) आज भी हो रही हैं।

कहानी सिखाती है कि विभाजन केवल 1947 की घटना नहीं, बल्कि **मानसिक विभाजन** है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है।

यह मानवीय क्षमा और सह-अस्तित्व का संदेश देती है, जो आज के विभाजित समाज के लिए बहुत जरूरी है।

कहानी में चित्रित विभाजन का दर्द :-

भौतिक नुकसान और घर का दर्द- 'मलबा' शब्द कहानी का केंद्र है। बाजार बांसां की आग में मुसलमानों के साथ हिंदुओं के घर भी जल गए। गनी का घर अब मलबे का ढेर है। लेखक लिखते हैं – "नई इमारतों के बीच-बीच में मलबे के ढेर अजीब ही वातावरण प्रस्तुत करते थे।" यह दर्द 'घर' की हानि का है – न केवल ईंट-पत्थर, बल्कि स्मृतियों का।

परिवार और अपनों का खोना- गनी का पूरा परिवार (चिरागदीन, जुबैदा, किश्वर, सुल्ताना) रक्खे ने मार डाला। यह 'पड़ोसी का विश्वासघात' विभाजन का सबसे कटु दर्द है। गनी रक्खे को "भाई" कहकर गले लगाते हैं। यह माफी और क्षमा का दर्द है।

साम्प्रदायिक हिंसा और लालच-रक्खे पहलवान साम्प्रदायिकता की आड़ में लालच पूरा करता है। लेखक दिखाते हैं कि विभाजन ने 'स्वार्थ' को उजागर किया। बच्ची का डर – "रोएगा तो वह मुसलमान पकड़ ले जाएगा" – नई पीढ़ी में पैदा हुआ साम्प्रदायिक भय दर्शाता है।

स्मृति और मनोवैज्ञानिक आघात-लाहौरवासी अमृतसर की पुरानी गलियों को याद करते हैं। गनी बच्चे को "चिज्जी" देने जाते हैं, लेकिन बच्ची उसे "मुसलमान" कहकर डराती है। यह 'अजनबी' बन जाने का दर्द है।

प्रतीकात्मकता-

मलबा : टूटे संबंधों का प्रतीक।

कुत्ता : विवेक/अपराधबोध का प्रतीक (अंत में रक्खे पर भौंकता है)।

बोली : "सब कुछ बदल गया, मगर बोलियाँ नहीं बदलीं" – सांस्कृतिक निरंतरता का प्रतीक, लेकिन दर्द भरा।

चरित्र-चित्रण-

गनी मियाँ : माफी और मानवीयता का प्रतीक। वे विभाजन के 'शिकार' हैं, लेकिन घृणा नहीं रखते।

रक्खे पहलवान : लालच और पछतावे का प्रतीक। उसका अपराधबोध कहानी का नैतिक केंद्र है।

अन्य : बच्ची, स्त्रियाँ – नई पीढ़ी में पैदा हुआ भय।

भाषा-शैली और कला-राकेश की भाषा सरल, संवाद-प्रधान और यथार्थवादी है। पंजाबी मुहावरे (चिज्जी, वारी जाऊँ) स्थानीय रंग देते हैं। वर्णनात्मक शैली दृश्यों को जीवंत बनाती है।

अन्य विभाजन-साहित्य से तुलना-भीष्म साहनी की 'तमस' में सामूहिक हिंसा है, जबकि राकेश व्यक्तिगत विश्वासघात पर जोर देते हैं। कृष्णा सोबती की कहानियों में स्मृति प्रमुख है – राकेश भी इसी पर बल देते हैं।

समकालीन प्रासंगिकता-आज भी साम्प्रदायिकता, सीमा-विवाद और घृणा-भाषा मौजूद हैं। कहानी हमें सिखाती है कि विभाजन का दर्द आज भी जीवित है।

उपसंहार-'मलबे का मालिक' विभाजन के दर्द को 'मलबे' के रूप में अमर कर देती है। राकेश कहते हैं कि राजनीति ने मानवता को कुचला, लेकिन क्षमा और विवेक अभी बाकी है। यह कहानी हमें बार-बार याद दिलाती है – "विभाजन से क्या मिला?"

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. राकेश मोहन. 'मलबे का मालिक' (हिन्दवी/गद्यकोश संस्करण)।
2. दुबे रीता. 'मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक': पुनर्पाठ'। अपनी माटी, 2014।
3. हिन्दीकुंज समीक्षा (2024)।
4. विकिपीडिया एवं अन्य स्रोत (मोहन राकेश जीवनी)।
5. सेंट तरुण के. *Witnessing Partition* (संदर्भित)।

मरंग गोडा नीलकंठ हुआ उपन्यास में चित्रित विकिरण प्रदूषण

बिष्टप्पा तळवार
सह प्राध्यापक - हिंदी विभाग
एफ.एम.के.एम.सी कॉलेज, मडिकेरी

सारांश:-
'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में चित्रित विकिरण प्रदूषण पर आधारित यह आलेख आदिवासी साहित्यकार महुआ माजी के उपन्यास के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण, विकिरण प्रदूषण और आदिवासी विस्थापन की समस्या को उठाता है। लेखक बिष्टप्पा तळवार बताते हैं कि आज के भूमंडलीकरण और विकास के नाम पर जंगलों की कटाई, यूरेनियम खनन और परमाणु कचरे के कारण आदिवासी समाज सबसे अधिक प्रभावित हो रहा है।
उपन्यास के नायक सगेन और अन्य पात्रों के माध्यम से लेखिका महुआ माजी विकिरण के घातक प्रभावों—बांझपन, विकलांग बच्चों का जन्म, कैंसर, टी.बी. आदि—को रेखांकित करती हैं। उन्होंने चेरनोबिल दुर्घटना का उदाहरण देकर दिखाया है कि विकिरण कितना विनाशकारी हो सकता है। लेखिका टेलिंग डैम की अनियमितताओं, सुरक्षा मानकों की अनदेखी, आदिवासियों का शोषण और सरकार की उदासीनता की आलोचना करती हैं।
आलेख में आदिवासी साहित्यकारों की भूमिका को महत्वपूर्ण बताया गया है, जो प्रकृति संरक्षण और जागरूकता फैलाते हैं। निष्कर्ष में कहा गया है कि विकास केवल आर्थिक नहीं, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और मानवाधिकारों के साथ होना चाहिए। उपन्यास आदिवासी संघर्ष को साहित्यिक रूप देते हुए समूचे समाज को चेतावनी देता है कि आदिवासियों का शोषण अंततः पूरे पर्यावरण और समाज को नुकसान पहुँचाएगा।

बीज शब्द -विकिरण प्रदूषण,यूरेनियम खनन, आदिवासी विस्थापन,पर्यावरण संरक्षण,मरंग गोडा नीलकंठ हुआ,महुआ माजी,टेलिंग डैम,परमाणु कचरा,आदिवासी साहित्य,विकास बनाम शोषण,चेरनोबिल दुर्घटना,नैचुरल रिसोर्सेस प्रोटेक्शन ऐक्ट.

आज के दौर में पर्यावरण संरक्षण एक महत्वपूर्ण और वैश्विक मुद्दा बन चुका है। पिछले कुछ दशकों में, बढ़ती जनसंख्या और जलवायु परिवर्तन के कारण पर्यावरण में कई बदलाव देखे गए हैं। इस दौरान मनुष्य ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए जंगलों की अन्धाधुंध कटाई की है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल जंगलों का नुकसान हुआ है, बल्कि वहाँ रहने वाली विभिन्न प्रजातियाँ, जैसे कि पशु-पक्षी, वनस्पतियाँ और आदिवासी समाज भी संकट में हैं। इन आदिवासियों का जीवन पूरी तरह से प्रकृति से जुड़ा हुआ है और उनके अस्तित्व की बुनियाद जंगलों और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है।

आज का युग भूमंडलीकरण, उदारीकरण, बाज़ारवाद और उत्तर-आधुनिकता का है, और इस युग में पर्यावरण प्रदूषण ने एक गंभीर समस्या का रूप ले लिया है। विशेष रूप से विकिरण की समस्या ने चिंता को और भी बढ़ा दिया है। समय के साथ यह समस्या इतनी विकराल होती जा रही है कि उसका समाधान ढूंढ़ना मनुष्य के लिए एक बड़ी चुनौती बन गई है। इस संकटपूर्ण समय में आदिवासी साहित्यकारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये साहित्यकार अपने लेखन के माध्यम से न केवल प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा की आवश्यकता को उजागर करते हैं, बल्कि समाज में इसके प्रति जागरूकता फैलाने का भी कार्य करते हैं। आदिवासी साहित्यकारों का यह कार्य न केवल उनके सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा है, बल्कि यह उनके जीवन के अनुभवों का प्रतिफल भी है। उनका साहित्य इस बात को दर्शाता है कि प्रकृति के प्रति सच्ची समझ और सम्मान केवल आदिवासी समाज में ही नहीं, बल्कि पूरे समाज में फैलाना कितना आवश्यक है।
आदिवासी साहित्यकारों का लेखन उनके भीतर के आवेग, बेचैनी, जीवंतता और ईमानदारी को व्यक्त करता है। उनकी लेखनी में यह ईमानदारी उनके व्यक्तिगत अनुभवों से उभरती है, क्योंकि आदिवासी समुदाय प्रकृति से सीधे जुड़ा हुआ है और उसे अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा मानता है। जब वे प्रकृति और जंगलों के संरक्षण की बात करते हैं, तो यह केवल एक विचार नहीं, बल्कि उनके अस्तित्व का एक सच है। अतः, यह कहा जा सकता है कि आदिवासी साहित्यकारों का कार्य केवल साहित्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज को एक गहरी सोच और संवेदनशीलता की ओर प्रेरित करता है। उनका उद्देश्य न केवल पर्यावरण के प्रति जागरूकता फैलाना है, बल्कि यह भी है कि मनुष्य अपनी प्रकृति और धरती से जुड़कर उसे नष्ट होने से बचा सके। आज की दुनिया में, जहां पर्यावरण संकट गंभीर रूप ले चुका है, आदिवासी साहित्यकारों का यह संदेश और उनकी मेहनत और भी महत्वपूर्ण हो गई है।

'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में जो समस्या बताई गई है, वह मूलतः विकिरण से होने वाला प्रदूषण और आदिवासियों के विस्थापन की है। इसमें महुआ माजी ने विकिरण प्रदूषण से आदिवासियों और उनके आस पास के इलाकों में हो रहे दुष्प्रभाव को न सिर्फ रेखांकित किया है, अपितु उसके निवारण के लिए भी उपाय सुझाने का प्रयास किया है।

'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' शीर्षक में नीलकंठ शब्द का संबंध नीलकंठ वाले शिव जी से जोड़ा गया है। "समुद्र मंथन के समय निकले विष को पृथ्वी के कल्याण के लिए शिव जी ने सेवन किया था जिसके कारण उनका कंठ नीला हो गया और उन्हें नीलकंठ कहा जाने लगा। मरंग गोड़ा ने भी देश के विकास के लिए खदानों से निकालने वाले विकिरण और प्रदूषण को अपने में समाहित कर लिया जिस कारण मरंग गोड़ा नीलकंठ हो गया है।"

सेंटर फॉर साइंस ऐंड एनवायरनमेंट (विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्र) की निदेशिका सुनीता नारायण ने इंडिया हैबिटेट सेंटर में आयोजित एक कार्यक्रम में खनन के कारण देश भर में पैदा हुए हालात पर रोशनी डालते हुए यह सवाल दागा था- "Why the poorest people live on India's richest lands?" बात सच है क्योंकि जिन आदिवासियों को विस्थापित व बेघर कर उन्हें लूटने का प्रयास किया जा रहा है, अवश्य ही वह प्रदेश प्राकृतिक खजाने से भरा हुआ ही होगा।
उपन्यास के नायक सगेन के माध्यम स लेखिका ने यूरेनियम की खोज को एक मुख्य उपलब्धि तो मानी ही है लेकिन इसके लिए जो कीमत अदा की जार ही थी, वह ना काबिले मंज़ूर थी। वे बताती हैं कि "उन्हें यह महसूस हो रहा था कि न जाने कितने मासूमों के स्वास्थ्य की कीमत पर मिली है यह कामयाबी और न जाने कितनों को बर्बाद करने की

कुव्वत रखता है यह बम।" क्योंकि इतिहास बताता है कि चेरनोबिल हादसे में संयंत्र में मौजूद 190 टन यूरेनियम डाइऑक्साइड के चार प्रतिशत से भी कम विघटित तत्व ही रियेक्टर से बाहर निकले थे। इसके बावजूद दुनिया भर में उसका असर देखा गया। संयंत्र में उपस्थित 32 लोगों की तो मौके पर ही विकिरण से मौत हो गयी थी। कुछ ही दिनों के अंदर रेडियोधर्मी बीमारियों के कारण अन्य 39 लोगों की जान चली गयी। इस हादसे में निकले रेडियोधर्मी पदार्थों का अधिकांश मलबा यूक्रेन, रूस और बेलारूस तक फैल गया था जिस कारण वहां के लगभग साढ़े तीन लाख लोगों को ले जाकर दूसरे इलाकों में बसाना पड़ा। जीवित शहर वीरान हो गए। इसके अलावा उत्तरी ध्रुव के लगभग सभी देशों में रेडियोधर्मी पदार्थों के कण पाए गये।" जिसने आज तक वहाँ के वातावरण को दूषित कर रखा है और आज भी बच्चे किसी न किसी विकलांगता के साथ जन्म ले रहे हैं।

इसी उपन्यास में लेखिका इस बात पर ध्यान आकर्षित करती हैं कि पूरी दुनिया में, जहां जहां यूरेनियम खदानें हैं, जैसे- अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका... हर जगह के आदिवासी किसी न किसी रूप में पीड़ित व प्रताडित हैं। यह एक विडंबना ही है कि अधिकतर यूरेनियम खदाने, परमाणु रियेक्टर या परमाणु कचरा फेंके जाने वाले टेलिंग डैम आदिवासी इलाकों में ही होते हैं। यह बात और है कि जहां के लोग जागरूक हैं, वहां सुरक्षा मानकों पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है और जहां जागरूकता कम है वहां के लोग ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं।

इसके विपरीत यदि मरंग गोड़ा की बात की जाए तो पता लगता है कि वह जगह केवल लोगों के लिए ही नहीं बल्कि पशु पक्षियों तथा पेड़ पौधों के लिए भी हानिकारक है। लेखिका बताती हैं- "टेलिंग डैम से मात्र पचास फीट की दूरी पर बसा है एक गांव? यह तो अंतर्राष्ट्रीय मानकों के बिलकुल खिलाफ है। वहाँ रहना तो बहुत खतरनाक है।" उनका इस बात पर भी आक्रोश है कि चंद पैसों के लिए जिन खदानों में आदिवासियों से माइनिंग का काम कराया जा रहा है वहाँ पर उनकी सुरक्षा का तक ध्यान नहीं दिया जाता जिसके कारण उस प्रदेश में बसे आदिवासी कई बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। इस विषय में सगेन का कहना है- "यह कैसी विडंबना है कि हमारी औरतें बांझ हो रही हैं...हमारे बच्चे विकलांग पैदा हो रहे हैं...हमारे लोग जवानी में ही कैंसर या टी.बी. से मर रहे एक हैं और हम इसके विरोध में आवाज उठाते हैं... कोई कदम उठाते हैं तो देशद्रोही करार दिये जाते हैं! कमाल है! यह कैसा लोकतंत्र है? यह कैसी सभ्यता है?"

यहाँ लेखिका न सिर्फ अधिकारियों, बल्कि सरकार को भी दोषी करार दे रही हैं। यूरेनियम कितना घातक है और इससे हड्डियों का कैंसर और किडनी खराब होने जैसी गंभीर बीमारियाँ हो सकती हैं, यह जानते हुए इस बात का एहतियात नहीं किया जाता है कि जो खदान में काम कर रहा है, उसे सही पोशाक मुहैया कराए या फिर उसके स्वास्थ्य को समय समय पर जाँचा जाए।

आज कल शहरों में ही नहीं बल्कि गांव देहात में भी कचरा फेंकने के लिए अलग जगह बनाई गई है। अगर ऐसा नहीं होता है तो कम से कम यह सुविधा तो है ही कि उसे सही तरह से ठिकाने लगाया जाए लेकिन विकिरण से होने वाले कचरे पर सरकार का ध्यान क्यों नहीं गया? सगेन को लगता है कि आदिवासी कमज़ोर और नासमझ हैं, यह सोच कर मरंग गोडा में कचरा लाकर फेंका जाने लगा। इसका विरोध करने के लिए मरंग गोडा के आदिवासियों ने एक संगठन बनाया जिसमें कहा गया - "हम कमजोर नहीं हैं, अकेले भी नहीं हैं, यही बताने के लिए तो यहां जुटे हैं हम सब। इस सम्मेलन का लक्ष्य ही है आदिवासी इलाकों में यूरेनियम खनन का... आणविक कचरों के जमावड़े का विरोध करना... नैचुरल रिसोर्सेस प्रोटेक्शन ऐक्ट-2005 के कार्यान्वयन में साथ देना... परमाणु इंधन मामलों में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सहभागिता कायम करना।" इसी के साथ सगेन का यह सवाल ध्यान में आता है कि टेलिंग डैम आखिर आदिवासियों के इलाके में ही क्यों बनाया जाए सत्ताधारी लोगों की बस्ती में... दिल्ली, कोलकाता, मुंबई या चेन्नई जैसे शहरों में क्यों नहीं?

इन खदानों में काम करना आदिवासियों की मजबूरी है क्योंकि गरीबी और विस्थापन के कारण उनका गुज़ारा मुश्किल होता जा रहा है। वे कहीं भी काम करके अपना पेट तो पाल लेंगे मगर विकिरण का क्या? उससे कैसे बचेंगे? वह कहता है- "विकिरण तो हमें बाद में मारेगा! मगर भूख तो हमें कुछ ही दिनों में मार डालेगी। अपने बाल बच्चों को कब तक भूख से तड़पते देखा जा सकता है?..."

जो भी मजदूर यूरेनियम की खदानों काम करते हैं वे विकिरण के सीधे संपर्क में आते हैं उनमें से कितनों को तो विकिरण की मात्रा को रिकॉर्ड करने वाला यंत्र 'डोजीमीटर' भी पहनने के लिए नहीं दिया जाता। उस यंत्र के बिना कैसे पता चलेगा कि उस व्यक्ति को विकिरण की कितनी मात्रा मिल चुकी है और वह खदान में दोबारा काम के लिए जा भी सकता है या नहीं। जिस कारण खदान में काम करता करता वह विकिरण की बली चड जाता है।

निष्कर्ष-

"मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ" जैसे उपन्यासों ने आदिवासी साहित्य में न केवल उनके संघर्ष और शोषण को सामने लाया है, बल्कि यह भी दर्शाया है कि विकास के नाम पर जब किसी समुदाय का शोषण किया जाता है तो इसका असर केवल उस समुदाय पर नहीं, बल्कि समूचे समाज पर पड़ता है। विकिरण प्रदूषण और विस्थापन की समस्याएँ यह सिद्ध करती हैं कि जब तक आदिवासी समाज को उनके अधिकार नहीं मिलते और उनके जीवन और स्वास्थ्य की रक्षा नहीं की जाती, तब तक सच्चा विकास संभव नहीं है। इस प्रकार के साहित्य ने हमें यह समझने की आवश्यकता दी है कि विकास केवल आर्थिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि मानवाधिकार और पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखते हुए होना चाहिए। आदिवासी समाज के संघर्ष को समझना और उनकी मदद करना न केवल एक साहित्यिक, बल्कि एक सामाजिक और नैतिक दायित्व है।

****

संदर्भ सूची :-

1. https://sahityakunj.net/entries/view/aadivaasi-jeevan-aur-hindi-upanyas-marangagodha-neelkanth-huaa
2. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, राजकमल पेपरबैग्स, 2019, पृ 364
3. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, राजकमल पेपरबैग्स, 2019, पृ. 198
4. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, राजकमल पेपरबैग्स, 2019, पृ. 218
5. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, राजकमल पेपरबैग्स, 2019, पृ 223
6. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, राजकमल पेपरबैग्स, 2019, पृ 249
7. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, राजकमल पेपरबैग्स, 2019, पृ 343
8. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, राजकमल पेपरबैग्स, 2019, पृ 362

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

जनवरी - मार्च -2025

https://shodhutkarsh.com

त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका - 'शोध उत्कर्ष'